तिब्बत

दमन, मुक्ति-साधना और भारत का स्वधर्म

सम्पादक
राजीव वोरा

गांधी शांति प्रतिष्ठान

8/1

शारदा पुस्तकालय
(संजीवनी शा. दा. केंद्र)
क्रमांक ...2322...2

...232/2...
(संजीवनी शा. दा. केंद्र)
क्रमांक

तेरेश लोपर

तिब्बत

दमन, मुक्ति-साधना और भारत का स्वधर्म

शारदा पुस्तकालय
(संजीवनी शा. दु. केन्द्र)
क्रमांक 2321/2

सम्पादक
राजीव वोरा

गांधी शांति प्रतिष्ठान

तिब्बत : दमन, मुक्ति-साधना और भारत का स्वधर्म

प्रथम प्रकाशन : नवम्बर 1998

सम्पादक : राजीव वोरा

विशेष सम्पादन सहायता : डॉ. नीरू वोरा, शंकर शरण

संयोजन : मनोज कुमार झा

आवरण : दिलीप चिंचालकर

प्रकाशक : गांधी शांति प्रतिष्ठान
221-223 दीन दयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली - 110 002
फोन : 011-323 7491, 323 7493
फैक्स : 011-323 6734

मुद्रक : सिस्टम्स विज़न
ए-199 ओखला फेज़ - 1, नई दिल्ली - 110 019
फोन : 681 1195 फैक्स : 681 7017

मूल्य : 100 रुपये

विषय-सूची

	प्रस्तावना	सत्येन्द्र कुमार दे	1
	भूमिका : स्वधर्मे निधनं श्रेय	राजीव वोरा	3
1.	राष्ट्रीय विद्रोह की वार्षिक पर	परमपावन दलाई लामा	12
2.	तिब्बत की वर्तमान स्थिति	प्रो. सामदोंग रिंपोछे	17
3.	अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की रपट-1997 का सार		30
4.	अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की रपट; जिनेवा-1960 का सार		41
5.	तिब्बत में भारत की विफलता	गिरिलाल जैन	46
6.	हिन्दुस्तान और तिब्बत	रवीन्द्र वर्मा	57
7.	भारत सरकार पुनर्विचार करे	अटल बिहारी वाजपेयी	64
8.	अज्ञान, उपेक्षा व आशंका की त्रिकोण कब टूटेगा?	आनन्द कुमार	66
9.	भय-मुक्त नीति की आवश्यकता	जार्ज फर्नांडीस	77
10.	'लेफ्ट', 'राईट' या 'सेन्टर' लेकिन तिब्बत पर एकमत	संकलित	83
11.	विदेश मंत्रालय : किसके अधीन?	संकलित	88
12.	अहिंसा और हिंसा के बीच एक बहुत बड़ी जमीन है	निर्मल वर्मा	94
13.	बौद्धधर्म तथा हिन्दुधर्म का परस्पर सम्बन्ध	रामस्वरूप	106
14.	तिब्बत, चीन और हिन्दुस्तान	डॉ. राममनोहर लोहिया	120
15.	तिब्बत संस्कृति के प्रतीक-चिह्न		125
16.	दमन और साधना		128
17.	ज्योति और तमस	आचार्य रजनीश	132

18. तिब्बत मुक्ति-साधना — कृष्णनाथ — 136
19. सत्य परेशान किन्तु पराजित नहीं — प्रो. सामदोंग रिंपोछे — 144
20. तिब्बत विमेंस एसोसिएशन की मुख्य मांगें — 149
21. परिशिष्ट 1 : चीनियों और तिब्बतियों के बीच संधि — 150
22. परिशिष्ट 2 : केन्द्रीय जनवादी सरकार ... उपायों पर समझौता — 152
23. परिशिष्ट 3 : सरदार वल्लभभाई पटेल का पं. जवाहरलाल नेहरू के नाम पत्र — 156

भारत में तिब्बती बसाहतें — 93
तिब्बत और पड़ोसी देश : मानचित्र — 130
क्या आप जानते हैं — 131

□

प्रस्तावना

तिब्बत पर पिछले चार दशक से जो हो रहा है उसकी ठीक-ठीक जानकारी अगर भारतवासियों को हो तो यह समझते देर नहीं लगेगी कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शुरूआती दौर में जिस प्रकार के बर्बर दमन से भारत को गुजरना पड़ा था कुछ वैसा ही तिब्बत पर चीन द्वारा किया गया है। ऐसे में प्रथम तो हिंसक अत्याचार और दमन द्वारा प्रजा का मनोबल तोड़ा जाता है, बाद में पूरी जीवन शैली और समाज व्यवस्था को। ताकि न केवल राजनैतिक, किन्तु सांस्कृतिक रूप से भी एक प्रजा को लम्बे अर्से के लिए दमित रख कर आक्रमक राज्य अपनी शक्ति को बढ़ाता रह सके और भरपूर शोषण कर सके।

विश्व का कोई राष्ट्र मामूली नहीं होता, विशिष्ट होता है-किन्तु तिब्बती प्रजा की विशिष्टता का मूल्य इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि कम से कम दो हजार वर्षों से केवल अध्यात्म साधना में तन्मय रहने वाली एक मात्र प्रजा, एक मात्र राष्ट्र, तिब्बत ही रहा है। आज जब विश्व को शोषण-रहित और न्याय-युक्त शांति का मार्ग तलाशने से ही आत्मघात से बचना संभव रहा है तब सत्य, प्रेम और करुणा की संस्कृति का दमन और विनाश समस्त मानव जाति के प्रति द्रोह है। चीन का तिब्बत पर आक्रमण तथा भारत समेत समस्त दुनिया की अकर्मण्यता इस मानव अधिकार के द्रोह में हमें भागी बनाती है।

सामान्य भारतवासी के मन में तिब्बती प्रजा के लिए परायेपन का भाव नहीं है किन्तु साथ ही यह भी सही है कि न केवल सामान्य लोगों में बल्कि पढ़े-लिखे लोगों में भी तिब्बत की विकट स्थिति के विषय में गैर-जानकारी है। प्रजातंत्र में अपना दायित्व कोई भी राष्ट्र तभी तक ठीक से निभा पाता है जब तक प्रजामत जागरूक हो। इस दृष्टि से गांधी शांति प्रतिष्ठान ने अपनी पत्रिका गांधी-मार्ग का तिब्बत विशेषांक प्रकाशित किया। इस पुस्तक को आपके हाथों में रख रहे हैं। तिब्बत के प्रति हमारा कर्तव्य राजनैतिक ही नहीं, धार्मिक और सांस्कृतिक भी है- क्योंकि तिब्बत से हमारा सम्बन्ध जीवन मूल्यों के स्तर का है, एक साझी अध्यात्म-चेतना का है। इस पुस्तक में समस्या को संदर्भ में रखने का प्रयास किया गया है।

18. तिब्बत मुक्ति-साधना — कृष्णनाथ — 136

19. सत्य परेशान किन्तु पराजित नहीं — प्रो. सामदोंग रिंपोछे — 144

20. तिब्बत विमेंस एसोसिएशन की मुख्य मांगें — 149

21. परिशिष्ट 1 : चीनियों और तिब्बतियों के बीच संधि — 150

22. परिशिष्ट 2 : केन्द्रीय जनवादी सरकार ... उपायों पर समझौता — 152

23. परिशिष्ट 3 : सरदार वल्लभभाई पटेल का पं. जवाहरलाल नेहरू के नाम पत्र — 156

भारत में तिब्बती बसाहतें — 93

तिब्बत और पड़ोसी देश : मानचित्र — 130

क्या आप जानते हैं — 131

□

प्रस्तावना

तिब्बत पर पिछले चार दशक से जो हो रहा है उसकी ठीक-ठीक जानकारी अगर भारतवासियों को हो तो यह समझते देर नहीं लगेगी कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शुरूआती दौर में जिस प्रकार के बर्बर दमन से भारत को गुजरना पड़ा था कुछ वैसा ही तिब्बत पर चीन द्वारा किया गया है। ऐसे में प्रथम तो हिंसक अत्याचार और दमन द्वारा प्रजा का मनोबल तोड़ा जाता है, बाद में पूरी जीवन शैली और समाज व्यवस्था को। ताकि न केवल राजनैतिक, किन्तु सांस्कृतिक रूप से भी एक प्रजा को लम्बे अर्से के लिए दमित रख कर आक्रमक राज्य अपनी शक्ति को बढ़ाता रह सके और भरपूर शोषण कर सके।

विश्व का कोई राष्ट्र मामूली नहीं होता, विशिष्ट होता है-किन्तु तिब्बती प्रजा की विशिष्टता का मूल्य इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि कम से कम दो हजार वर्षों से केवल अध्यात्म साधना में तन्मय रहने वाली एक मात्र प्रजा, एक मात्र राष्ट्र, तिब्बत ही रहा है। आज जब विश्व को शोषण-रहित और न्याय-युक्त शांति का मार्ग तलाशने से ही आत्मघात से बचना संभव रहा है तब सत्य, प्रेम और करुणा की संस्कृति का दमन और विनाश समस्त मानव जाति के प्रति द्रोह है। चीन का तिब्बत पर आक्रमण तथा भारत समेत समस्त दुनिया की अकर्मण्यता इस मानव अधिकार के द्रोह में हमें भागी बनाती है।

सामान्य भारतवासी के मन में तिब्बती प्रजा के लिए परायेपन का भाव नहीं है किन्तु साथ ही यह भी सही है कि न केवल सामान्य लोगों में बल्कि पढ़े-लिखे लोगों में भी तिब्बत की विकट स्थिति के विषय में गैर-जानकारी है। प्रजातंत्र में अपना दायित्व कोई भी राष्ट्र तभी तक ठीक से निभा पाता है जब तक प्रजामत जागरूक हो। इस दृष्टि से गांधी शांति प्रतिष्ठान ने अपनी पत्रिका गांधी-मार्ग का तिब्बत विशेषांक प्रकाशित किया। इस पुस्तक को आपके हाथों में रख रहे हैं। तिब्बत के प्रति हमारा कर्तव्य राजनैतिक ही नहीं, धार्मिक और सांस्कृतिक भी है- क्योंकि तिब्बत से हमारा सम्बन्ध जीवन मूल्यों के स्तर का है, एक साझी अध्यात्म-चेतना का है। इस पुस्तक में समस्या को संदर्भ में रखने का प्रयास किया गया है।

इस विनम्र प्रयास के अतिरिक्त भी गांधी शांति प्रतिष्ठान तिब्बत मुक्ति-साधना के प्रति लोक-जागृति के कार्यों में सम्मिलित रहा है। तिब्बती प्रजा के प्रति न्याय और उनके शांतिमय जीवन के प्रति जिनके भी मन में दायित्व भाव है उनके साथ गांधी शांति प्रतिष्ठान है।

परमपावन दलाई लामा ने जिस प्रकार तिब्बत की मुक्ति के लिए न्याय और शांति की स्थापना का अहिंसक मार्ग अपना कर अहिंसा में विश्व की आस्था बढ़ाई है, उसके लिए मानव जाति उनके प्रति हमेशा कृतज्ञ रहेगी।

2 अक्तूबर, 1998
नई दिल्ली

सत्येन्द्र कुमार दे
मंत्री, गांधी शांति प्रतिष्ठान

□

भूमिका

स्वधर्मे निधनं श्रेय

यद्यपि जग दारुन दु:ख नाना।
सब तें कठिन जाति अवमाना।।

गोस्वामी तुलसीदासजी की ये पंक्तियां तिब्बती प्रजा के दु:ख का सटीक निरूपण करतीं हैं। जब तक देह और संसार है, दु:खों से मुक्ति नहीं मिल सकती। दु:खों में रहते हुए मनुष्य के ऊर्ध्वीकरण, दैवीकरण, के लिए अभय की साधना का विधान सनातनधर्म तथा बौद्धधर्म में है। अपमान के दु:ख से मुक्ति पाना सर्वोपरि स्वधर्म है क्योंकि अपमान आत्मतत्व का क्षय करता है, दीव्यता के प्रति अपराध है। अपमानों में भी घोरतम् अपमान जाति-अपमान है।

हिंसा की पराकाष्ठा, सूक्ष्मतम् हिंसा, आध्यात्मिक हिंसा में है अर्थात् आत्महनन में है; और सबसे उग्र प्रकार का, व्यापक और परिपूर्ण आत्महनन जाति-अपमान में निहित है, क्योंकि मनुष्य की आत्मा तभी कुचली जाती है जब उसकी जीवन-दृष्टि, जीवन-आस्था और निष्ठा को कुचल दिया जाय। दृष्टि, आस्था और निष्ठा का आधार जाति-मूलक होता है किन्तु कक्षा व्यक्ति-मूलक होती है। अर्थात् किसी की दृष्टि-आस्था-निष्ठा कम तो किसी की अधिक विकसित होती है। जाति की दृष्टि-आस्था-निष्ठा तत्वत: एक होती है जिसे सामान्य भाषा में सांस्कृतिक रूप से एक होना कहते हैं; किन्तु विभिन्न लोगों की उसमें अवस्था न्यूनाधिक हो सकती है।

जहां आध्यात्मिक (सांस्कृतिक) हिंसा हिंसा की पराकाष्ठा है, वहीं जाति-अपमान आध्यात्मिक हिंसा अर्थात् आत्महनन का विराट और उग्रतम् रूप है। यह हिंसा शारीरिक और मानसिक हिंसा का कारण बनती है, उसे उचित ठहराती है इतना ही नहीं, उसे आवश्यक मानती है। तिब्बत में सामान्य नागरिकों के अतिरिक्त भिक्षुणीओं, भिक्षुओं, मठों-मंदिरों पर ढ़ाएं गये और ढ़ाए जा रहे अत्याचार तिब्बती प्रजा की जीवन-दृष्टि, आस्था और निष्ठा को नष्ट करने के लिए किये जा रहे हैं।

पाश्चात्य सभ्यता-जो हमारे पुराणों में वर्णित राक्षसी-आसूरी-दानवी राज्य के तद्रूप है- के प्रभाव से जिनका भिन्न-भिन्न प्रकार से आसूरीकरण हो रहा है ऐसे दो महान् राष्ट्रों, चीन और भारत, के बीच दुनिया की एक मात्र ऐसी भूमि, एक मात्र प्रजा पीस रही है जिसने दीव्य विचारों के अनुरूप जीवन व्यवस्था, जहां सांसारिक और आध्यात्मिक के बीच अभेद और सुमेल स्थापित किया था ऐसी संस्कृति

---

* गोस्वामी तुलसीदास जी; रामचरित मानस, बालकाण्ड-62.4

अपनी मातृ-संस्कृति सनातनधर्म, जिसमें मानव के दैवीकरण की अकूट संभावनाएं भरी पड़ी हैं- के साथ मिलकर विश्व को इस विकट अंधेरे से निकाल सकती है। यह वह बीज है जो घोर ह्रास के समय में बचाया जाना चाहिए। तिब्बत पर हो रहा अत्याचार मानव जाति के भविष्य की उज्जवल राह को ही अंधकारमय बनाने का पापाचार हैं। इसलिए भारत पर तिब्बत के प्रति विशेष दायित्व का होना उसके स्वधर्म की ही नियति है। इस दायित्व बोध को थोड़े से शब्द देने हेतु इस पुस्तक का संकलन किया है।

सांस्कृतिक दृष्टि से अर्थात् धर्म दृष्टि से तिब्बत ने अपने समग्र जीवन में धर्म-चेतना को जो स्थान दिया है उसे मान्य करते हुए हमें इस तथ्य को पहचानना चाहिए कि सनातन धर्म तथा भारतीय संस्कृति के ही एक रूप को जीवन्त रखकर तिब्बत ने हमारी ही अध्यात्म-चेतना के एक महति अंश के ट्रस्टी होने की भूमिका निभाई है।

हिंसा पर टिकी वर्तमान विश्व व्यवस्था और आधुनिक सभ्यता जब अपने ही इन दोषों से त्रस्त है तब अहिंसा का रास्ता दिखाने वाले भारत को विश्व ने भविष्य का मार्गदर्शक मान लिया था। किन्तु पिछले पचास वर्ष में न केवल हमने अपनी संचित पूंजी गंवा दी, तिब्बत के साथ हमने धोखा किया, अपनी सुरक्षा की किसी भयभीत रणनीति के तहत एक पूरी प्रजा, देश और संस्कृति की बलि चढ़ाई, और अन्त में जब इस भूल का एहसास हुआ तब परमपावन दलाई लामा की सरकार तथा तिब्बतियों को 'शरण' देकर प्रायश्चित करने का थोड़ा-सा साहस तो दिखाया किन्तु तिब्बत की निर्वासित सरकार को मान्यता और मुक्ति के संघर्ष में उनका साथ न देकर उस प्रायश्चित को अधूरा भी छोड़ दिया। अधूरा प्रायश्चित प्रायश्चित नहीं होता। हालांकि जवाहरलाल नेहरू अपने हाथों इससे अधिक नहीं कर सकते थे, क्योंकि तिब्बत को चीन के हवाले उन्होंने खुद ने ही किया था–चीन के प्रति मित्रता के धोखे में न आने की सरदार पटेल की स्पष्ट चेतावनी के बावजूद। अपनी गलती का एहसास जब नेहरू को हुआ, काफी देर हो चुकी थी।

जितना बड़ा दोष हुआ है उसके अनुपात में प्रायश्चित तो संभव नहीं है। उसके अनुपात का तो प्रायश्चित यह होता कि तिब्बत को चीन के चंगुल से छुड़ाकर वापस तिब्बतियों को सौंप देते। लेकिन अपनी भूमि भी चीन से छुड़वाने में असमर्थ रहा भारत का राजतंत्र इतनी शक्ति दिखा दे यह इस समय तो चमत्कार ही कहा जायेगा। किन्तु सत्य का और धर्म का तकाजा यही है कि इससे कम प्रायश्चित हमें अपने दोष से मुक्त नहीं कर सकता।

इसलिए कम से कम हमें वह सब तो करना ही चाहिए जिससे तिब्बत की मुक्ति के अहिंसक संघर्ष को बल मिल सके और इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम होगा परमपावन

दलाई लामा की निर्वासित सरकार को मान्यता देना। ऐसा करने से न केवल हम तिब्बत मुक्ति-साधना को उचित बल दे पायेंगे किन्तु साथ ही कुछ अन्य अति महत्त्वपूर्ण हेतु भी सिद्ध होंगे। उदाहरणार्थ :

पूरे राष्ट्र के आत्मसम्मान में जितनी वृद्धि इस एक कदम से होगी, उतनी अन्य किसी कदम से इस समय नहीं हो सकती। अपने स्व-परिचय तथा निःस्वार्थ आत्मबल का परिचायक कदम और कौन-सा हो सकता है? परमाणु बम तो पाकिस्तान ने भी बनाकर दिखा दिया। लेकिन जिसमें विध्वंस की संभावना की बू नहीं किन्तु स्वाधीनता की खुशबू हो ऐसा कदम केवल यही हो सकता है।

कुछ दलों के लिए यह धार्मिक दायित्व है। भारतीय जनता पार्टी का तो दावा है कि वह धर्म-चेतना को ही राष्ट्र-चेतना मानती है। जो ऐसा नहीं मानते उन्हें 'सूडो सेकुलरिस्ट' कहकर उनकी राष्ट्रभक्ति के ऊपर प्रश्न भी खड़ा करते हैं। भारतीय जनता पार्टी अगर धर्म-चेतना को राष्ट्रभक्ति का आधार मानती है तो उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि हिन्दूधर्म तथा बौद्धधर्म की अध्यात्म-चेतना एक ही है। धर्म-चेतना के मूल में एकरूप होना तिब्बत और भारत के बीच आध्यात्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध का आधार है। भारतीय जनता पार्टी का यह नैष्ठिक दायित्व है, क्योंकि इस समय वह सत्ता में है, कि तिब्बत के साथ परायेपन का भाव दूर करें तथा उन्हें मान्यता देकर यह सिद्ध करें कि हमारी सांस्कृतिक निष्ठा राजनैतिक निष्ठा से भिन्न नहीं है, तथा संकीर्ण भी नहीं है।

सांस्कृतिक दृष्टि से अर्थात् धर्म-दृष्टि से तिब्बत ने अपने समग्र जीवन में धर्म-चेतना को जो स्थान दिया है उसे मान्य करते हुए हमें इस तथ्य को पहचानना चाहिए कि सनातन धर्म तथा भारतीय संस्कृति के ही एक रूप को जीवन्त रखकर तिब्बत ने हमारी ही अध्यात्म-चेतना के एक महति अंश के ट्रस्टी होने की भूमिका निभाई है। जबकि पिछले पचास वर्षों से हम धर्म-दृष्टि को अपने समग्र जीवन से अलग-थलग करते गये हैं तथा उसे गौण बनाते गये हैं, तब परमपावन दलाईलामा के नेतृत्व में तिब्बत मुक्ति-साधना ने उसी अध्यात्म-चेतना को न केवल जीवन्त बनाये रखा है किन्तु विश्व भर में उसकी प्रतिष्ठा भी की है। वे हमेशा कहते रहे हैं कि भारत हमारा परापूर्व से गुरु है तथा वर्तमान में हमारा संघर्ष गांधीजी से प्रेरित है। इसके बावजूद भी हम इन्हें न अपनाएं, और न मान्यता दें, तो आने वाली पीढ़ियां हमें स्वजन-द्रोही, भीरू, लोलुप और संकीर्ण कहेंगी।

चीन के प्रति हम भयभीत नहीं हैं यह आश्वासन जितना अपने ही देशवासियों को देना भारत सरकार के लिए जरूरी है उतना ही जरूरी चीन के मन से भी यह ख्याल दूर करना है। इसका सर्वोत्तम नैतिक और राजनैतिक रास्ता यही है कि तिब्बत की निर्वासित सरकार को मान्यता दी जाय।

चीन के प्रति भय से प्रेरित भारत की विदेश नीति के कुछ उदाहरण यहां प्रकाशित लेखों में तथा अलग से भी दिये गये हैं। इसका सीधा नतीजा यह भी निकल रहा है कि विश्व में जब तिब्बत एक ऐसा प्रसिद्ध दृष्टान्त बन गया है कि जिसके साथ होने न होने से राष्ट्र की मानवाधिकार-निष्ठा की ही कसौटी नहीं हो रही है, किन्तु उनकी नैतिक आवाज भी कितनी बुलन्द है यह भी देखा जा रहा है, तब विश्व में नैतिक बल की दृष्टि से कमजोर हो चले भारत के लिए यह एक अवसर है कि वह अपनी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित करे।

... अपराध की सजा तो हम भोग ही रहे हैं। अन्यथा इस तथ्य का हमारे पास क्या जवाब है कि हिंसक क्रान्ति से बना चीन अहिंसक क्रान्ति से बने भारत से अधिक ताकतवर सिद्ध हो रहा है। अगर अहिंसा की शक्ति हिंसा की शक्ति से बड़ी है तो होना तो उससे उल्टा चाहिए था। यह सोचकर आत्मिक पीड़ा होती है कि इसी शताब्दी में चीन और भारत दोनों में क्रान्ति हुई, भारत की क्रान्ति के नेता के समक्ष विश्व झुक गया, उसे इस युग की त्रासदी में से निकालने वाला मार्गदर्शक माना, फिर भी आज भारत कमजोर राष्ट्र बनकर खड़ा है और चीन ताकतवर।

तिब्बत के मसले पर आज सबसे अधिक पहल करने वाले राष्ट्रों में अमेरिका और यूरोप के देश हैं। वे मानव अधिकार की बात उठा रहे हैं। हमारे लिए यह शर्म की बात है कि अमेरिका और यूरोप तिब्बत के उद्धारक की भूमिका में रहें जबकि भारत उसका दमन और नाश करने वालों का सहायक बना रहे। भारत कभी भी नैतिक रूप से अपना सर नहीं उठा पायेगा अगर तिब्बत के मसले में भारत की भूमिका गौण और स्वधर्म से विपरीत रही। विश्वस्तर पर एक नैतिक पहल अपने हाथ में लेने की दृष्टि से भी भारत सरकार को चाहिए कि कम से कम तिब्बत की निर्वासित सरकार को मान्यता देकर ऐतिहासिक सत्य की पुष्टि करे। क्या भारत के राज्यतंत्र तथा राजनेताओं ने अमेरिका को विश्व की नैतिक सत्ता भी मान लिया है ?

परित्राणाय साधुनाम् . . .

आज़ादी के पचास वर्ष, गांधीजी के निर्वाण के भी पचास वर्ष तथा विश्व को अंहिसा का सामर्थ्य दिखाने वाली इसाई शताब्दी के अन्त पर सर्वाधिक उचित श्रद्धांजलि देने का अवसर भारत को मिला हुआ है। इसे खोकर हम वह सब नकार देंगे, जिसने भारत को पिछले हजार साल के बाद गौरव से मस्तक ऊंचा करने का बल दिया।

हमने स्वाधीनता संग्राम केवल भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्ति दिलाने के लिए ही नहीं लड़ा था। विश्व में भारत का नैतिक और वैचारिक नेतृत्व स्थापित करने का स्वप्न

देखा था। नाना प्रकार की हिंसा और जाति-दमन पर खड़ी हो रही पाश्चात्य विश्व-व्यवस्था को तो भारत ने चुनौती दी ही थी, किन्तु मानव की गरिमा पर खड़ी संस्कृति की विश्व भर में प्रतिष्ठा करने की तथा विभिन्न प्रजाओं, जातियों तथा समुदायों की आत्म-प्रतिष्ठा तथा स्वाधीनता की आवाज भी भारत बना था। विश्व ने भी भारत के इस रूप का स्वागत किया था। विश्व के पटल पर स्वाधीन होने का अर्थ भारत लिख रहा था। नैतिक सत्ता के एक अनोखे केन्द्र के रूप में भारत उभर रहा था।

इस परिदृश्य में तिब्बत को असहाय स्थिति में छोड़कर जिस प्रकार न केवल हमने पड़ोसी-धर्म भी नहीं निभाया किन्तु उल्टे तिब्बत के साथ विश्वासघात करके उसे चीन के हवाले कर दिया, इस कायरतापूर्ण अपराध को हम कहां रखेंगे ? अधर्म, अनैतिकता, कायरता और लोहियाजी के शब्दों में शिशु-हत्या, वास्तव में तो साधु-हत्या के इस बोझ से हमें भारत की आत्मा को मुक्त कराना ही चाहिए।

इस अपराध की सजा तो हम भोग ही रहे हैं। अन्यथा इस तथ्य का हमारे पास क्या जवाब है कि हिंसक क्रान्ति से बना चीन अहिंसक क्रान्ति से बने भारत से अधिक ताकतवर सिद्ध हो रहा है। अगर अहिंसा की शक्ति हिंसा की शक्ति से बड़ी है तो होना तो उससे उल्टा चाहिए था। यह सोचकर आत्मिक पीड़ा होती है कि इसी शताब्दी में चीन और भारत दोनों में क्रान्ति हुई; भारत की क्रान्ति के नेता के समक्ष विश्व झुक गया, उसे इस युग की त्रासदी में से निकालने वाला मार्गदर्शक माना, फिर भी आज भारत कमजोर राष्ट्र बनकर खड़ा है और चीन ताकतवर।

अहिंसा के रास्ते चलकर अगर कमजोर हुए होते तो आधुनिक इतिहास में सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्य के अस्त का हम कारण और प्रेरणा नहीं बने होते। प्रश्न तो यही है कि क्या कारण है कि 1947 में सर्वोच्च शक्तिशाली बना भारत अगले ही कुछ वर्षों में, आज़ादी का युद्ध समाप्त होने के साथ ही मार खाने लगा ? न केवल हम अपने पड़ोसी तिब्बत को बचा ही नहीं पाये, उसे समझ भी नहीं पाये-कि ये हमारे हैं या पराये हैं। क्या हो गया हमारी बुद्धि को कि हमारी शक्ति भी क्षीण हो गई ?

हो यह गया कि आज़ादी के बाद हम न तो रहे अहिंसा में, और न ही रहे हिंसा में। हमने पौरुष का त्याग कर दिया। चीन जो था वही रहा। हमने आज़ादी तो दुनिया में कुछ करने के लिए पाई थी। गांधीजी का वह ताबीज राष्ट्र के गले में भी लटका हुआ था। कमजोर से कमजोर राष्ट्र के हित में खड़ा होना साम्राज्यवाद के खिलाफ अहिंसक राज्यवाद को लेकर खड़े हुए भारत का स्वधर्म था। लेकिन इसके लिए समर्थ और शक्तिशाली होना जरूरी था। हमारी स्थिति तो यह हुई कि जब संयुक्त राष्ट्र संघ में छोटा-सा देश अल-साल्वादोर तिब्बत का सवाल उठाने लगा तो हमारे प्रतिनिधि नवानगर के जामसाहिब ने उसे चुप कर दिया। जब भारत ही तिब्बत को बचाने के लिए आगे नहीं आ सका

तो और किसी के आने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी आज स्थिति तो यह है कि मानवाधिकार और स्वायत्तता के प्रश्न पर जहां विश्व के अधिकतर राष्ट्र चुप नहीं हैं, वहीं भारत चुप है।

अगर हम अपने आत्मसम्मान को नहीं पहचान सकते तो हमने आज़ादी क्यों पाई थी? आज़ादी के युद्ध के दरम्यान हमने जो पाया वह आज़ाद होते हुए कैसे गंवा दिया? विश्व में सम्मानहीनता की हमारी आज की स्थिति की नींव कहां पड़ी है? आत्मसम्मान का प्रश्न हमारे आत्मबोध के साथ जुड़ा हुआ है। तिब्बत का प्रश्न आज़ाद भारत के आत्मबोध और आत्मसम्मान की कसौटी का प्रश्न है। इसलिए इस प्रश्न को हमें बार-बार पूछना पड़ेगा कि क्या हो गया है हमारी बुद्धि को और हमारी शक्ति को? न साधु के परित्राण की शक्ति न दुष्टता के नाश की ही।

क्या तिब्बत के प्रश्न को अपनी आने-जाने वाली सरकारों द्वारा गम्भीरता से उठाने का औचित्य सिद्ध नहीं हुआ है? समर्थन की व्यापकता अगर औचित्य स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है, तो लोकतांत्रिक व्यवस्था में दूसरा कौन-सा रास्ता है?

लोकमत के स्तर पर तिब्बत के मुद्दे को अगर परखेंगे तो हमें केवल विस्मय होगा कि व्यापक लोकमत तिब्बत के समर्थन में ही पाया जायेगा। हालांकि तिब्बत के मुद्दे पर लोकमत का दबाव महसूस हो नहीं रहा है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यापक लोकमत तिब्बत के समर्थन में नहीं है। नागरिकों के जिस भी स्तर पर बात कही जाय, समर्थन ही मिलेगा क्योंकि सामान्य नागरिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की सौदेबाजी को न तो स्वीकार करता है और न उसके मन में चीन के प्रति श्रद्धा है और न भय ही है। उन्हें बौद्धधर्म और तिब्बती लोग अपनी ही धरती के दिखते हैं; अपने ही व्यापक परिवार के दिखते हैं। लेकिन यह दु:ख की बात है कि तिब्बत के दु:ख में इस व्यापक भारतीय परिवार की हिस्सेदारी नहींवत् है।

बौद्धिकों और राजनैतिकों में भी घोषित रूप से तिब्बत की आज़ादी के विरोधी केवल वे ही हैं जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट परिवार की सदस्यता उनकी भारतीय सांस्कृतिक परिवार की सदस्यता से अधिक बढ़-चढ़ कर बोलती है। हालांकि उनके अंदर भी चीनी साम्राज्यवाद के विरोधी और तिब्बत समर्थक हैं। कुछ चीन विशेषज्ञ बौद्धिक भी हैं जिनकी चीन विशेषज्ञता भारत से अधिक चीन के हित में पल रही है। न्याय का सामान्य सिद्धांत इन बौद्धिकों की निष्ठा को आकर्षित नहीं कर सकता। कूटनीति और किताबी राजनीति शास्त्र के जटिल और उलझे हुए सिद्धांत उनकी बुद्धि को चमत्कृत करते हैं। बहुधा बौद्धिक पाण्डित्य – मौजूदा संदर्भ में विदेश-नीति शास्त्र का पाण्डित्य – राष्ट्रीय-हित की श्रेष्ठता की तो बात करता है किन्तु श्रेष्ठ राष्ट्रीय-हित किसमें है यह देखने की दृष्टि हर लेता है।

हालांकि पंचशील तथा सुरक्षा परिषद में अपनी सदस्यता को दरकिनार कर पहले चीन को सदस्य बनवाने के हमारे अनुभवों के द्वारा चीन ने कठोरतम तरीके से बता दिया कि अपना राष्ट्रीय-हित सर्वोपरि होता है, न कि विश्वास और मित्रता। जवाहरलाल नेहरू को खुद आगे चलकर यह स्वीकार करना पड़ा कि वे इस मायने में सीधे-सादे ही सिद्ध हुए। 8 नवम्बर 1962 को लोकसभा में बोलते हुए उन्होंने कहा–

''. . . यह सोचकर दुःख होता है कि हमने तो दुनियाभर में शांति स्थापना के लिए कोशिश की और चीन से मित्रता की तथा उसके साथ शिष्टता एवं सद्भाव का बर्ताव किया और दुनिया की परिषदों में उसकी पैरवी की, पर आज हम एक ऐसे देश के नए साम्राज्यवाद और विस्तारवाद का शिकार हो रहे हैं, जो अपने को साम्राज्यवाद-विरोधी कहता है। इतिहास के इस अजीब मोड़ ने हमारा सामना एक ऐसी बात से करा दिया है, जिसका अनुभव हमें पिछले सौ वर्षों से भी अधिक समय से नहीं हुआ था। . . . दुरंगी चाल मेरे जैसे सीधे-सादे आदमी के लिए समझ सकना मुश्किल है . . . ।''

हमें तिब्बत के साथ का वह सम्बन्ध नहीं दिखता जो न केवल मूलभूत है बल्कि संस्कृति का एक सुंदर अध्याय भी है। यह अध्याय कितना सुन्दर है, कितना मार्मिक है इसका प्रमाण निर्वासित तिब्बती संसद के अध्यक्ष प्रो. सामदोंग रिंपोछे का वह कथन है जिसमें उन्होंने सहज रूप से कहा है कि भारतीय संस्कृति का विश्व में बचे रहना इतना आवश्यक है कि अगर भारतीय संस्कृति के बचाव के लिए तिब्बत का बलिदान भी देना पड़े तो उसके लिए वे सहर्ष तैयार हैं। प्रो. रिंपोछे की यह बात पूरी तिब्बती चेतना का प्रतीक है। इससे श्रेष्ठ सांस्कृतिक निष्ठा, धर्म-चेतना या सत्यनिष्ठा का उदाहरण और क्या हो सकता है ? भारत के प्रति इस भाव को क्या हम राष्ट्र-भक्ति कहेंगे? यह राष्ट्र-भक्ति तो नहीं है। यह तो उससे ऊंची भावना है, जो खुद के राष्ट्र के बलिदान का भी आह्वान कर सकती है। इस तिब्बती मुक्ति-चेतना की तुलना में हमारा तिब्बत समर्थन संकीर्ण राष्ट्रवादी समर्थन ही दिखता है।

जवाहरलाल नेहरू के इस एहसास को, तथा अपनी भूल को सुधारने के एक छोटे-से प्रयास के रूप में तिब्बत की निर्वासित सरकार को भारत में शरण देने के उनके कदम की ऐतिहासिक निरन्तरता में अगर कांग्रेस सोचेगी तो इन्हें स्पष्ट दिखेगा कि उनका कर्त्तव्य क्या है। एक दल के रूप में इनकी जिम्मेदारी किसी भी अन्य दल से अधिक है कि वे अपने भी इतिहास की भूल को सुधारने की और नेहरूजी द्वारा शुरू की गई प्रक्रिया को आगे बढ़ायें।

राजनैतिक क्षेत्र में तिब्बत का समर्थन अघोषित रूप से सभी दलों के भीतर है और था भी। सरदार पटेल से लेकर राजगोपालाचारी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, बाबा साहेब आम्बेडकर, जयप्रकाश नारायण, आचार्य कृपालानी, आचार्य नरेन्द्र देव, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, राममनोहर लोहिया, ज्ञानी जैल सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी इत्यादि महत्त्वपूर्ण स्थान पर रहे नेता भी तिब्बत समर्थक रहे हैं और हैं। यही स्थिति देश के बौद्धिकों और पत्रकारों के बीच भी है। इसके बावजूद तिब्बत पर भारत की शर्मनाक और कायरतापूर्ण भूमिका का कारण समझ में नहीं आता। चीन से हमारा राजतंत्र किस प्रकार भय ग्रस्त रहता है उसके कुछ प्रमाण यहां मौजूद हैं। इस भय से मुक्त होने की बात उठाकर हमारी इस दुविधा के कारण पर उंगली भी यहां रखी गई है। हमारे नेतृत्व की विरोधाभास पूर्ण और शर्मनाक स्थिति का मार्मिक चित्र खींचकर भारत की नीति की विसंगतियों तथा भारत-तिब्बत की अंतरंगता पर भी यहां प्रकाश डाला गया है।

भारत में तिब्बत समर्थकों की मनोभूमिका में थोड़ा परिष्कार करने की आवश्यकता पर भी कुछ बात कर लेना जरूरी है। तिब्बत को हमें क्यों समर्थन देना है? केवल जयप्रकाश जी को छोड़कर शायद ही कोई समर्थक ऐसा है जिसने इसे एक धार्मिक अर्थात् नैतिक दायित्व माना हो। सबकी दृष्टि उपयुक्ततावादी–अर्थात् अपने हित की प्राथमिकता की दृष्टि है यह खेद का विषय होना चाहिए। जिन कारणों को गिनवाया जाता है उनमें भारत की सीमा-सुरक्षा; चीन और भारत की सीमाओं के बीच दूरी की आवश्यकता; हिमालय के पर्यावरण का सवाल; चीन द्वारा तिब्बत में डाले जा रहे परमाणु कचरे के कारण भारत के समक्ष आण्विक प्रदूषण का मामला; हिमालय से निकलती और भारत में बहती नदियों का प्रश्न; इत्यादि अनिवार्य रूप से गिनवाये जाते हैं। अर्थात्, एक या दूसरे किस्म की भारत की सुरक्षा ही एकमात्र ऐसा कारण है जिसकी वजह से तिब्बत की आज़ादी की बात इन तिब्बत मित्रों में होती है। यह उपयुक्ततावाद है; अर्थात् स्वार्थ के कारण ही हम तिब्बत की आज़ादी के समर्थक हैं, किसी सिद्धांत या आदर्श-निष्ठा के कारण नहीं। दूसरा दृष्टिकोण मानवाधिकारवादी है। अर्थात् तिब्बतियों का दुःख-दर्द हमसे देखा नहीं जाता क्योंकि हमारा मन खराब होता है- मन को व्यथा होती है, इसलिए हम उसके समर्थक हैं। यह दृष्टिकोण भी अनात्मिय है। अगर सीधा स्वार्थ प्रेरित नहीं है तो भी यह कोई बहुत उदात्त दृष्टिकोण नहीं है, दया प्रेरित है। दोनों दृष्टियां तिब्बतियों के साथ आत्मीयता प्रेरित नहीं कर सकतीं। इन दोनों अनात्मिय दृष्टियों से भिन्न, क्या हम तिब्बत के समर्थक इसलिए हैं, कि तिब्बती लोगों की जीवन-दृष्टि को कुचला गया है, उनकी श्रद्धा को दमित किया गया है, उनकी निष्ठा को तोड़ा जा रहा है? उन पर किये जा रहे शारीरिक और राजनैतिक अत्याचार मूल में आध्यात्मिक हिंसा के लिए ही है, उनके शरीर को और आत्मा को-दोनों को कुचला जा रहा है। प्रश्न यह है कि तिब्बत की व्यथा से हमारे भीतर किस स्तर की व्यथा पैदा हुई है ?–हमारे स्वार्थ में

हानि होने की व्यथा, हमारे सैद्धांतिक 'मानवतावाद' को पहुंची व्यथा या हमारी आत्मा को व्यथा हुई है?

इन सबका आधार इस बात पर है कि तिब्बत के साथ अपने सम्बन्ध को हम कहां रखते हैं, तिब्बत को कैसे देखते हैं। लेकिन मुश्किल तो यह है कि हमने खुद ही अपनी दृष्टि गंवा दी है। भारत को भी हमारा आधुनिक बौद्धिक वर्ग एक जनसंख्या, एक भूगोल, एक राज्य के रूप में अर्थात् भौतिक दृष्टि से ही देखता है। सांस्कृतिक दृष्टि क्षीण हो चुकी है। इसलिए हमें तिब्बत के साथ का वह सम्बन्ध नहीं दिखता जो न केवल मूलभूत है, बल्कि संस्कृति का एक सुंदर अध्याय भी है। यह अध्याय कितना सुन्दर है, कितना मार्मिक है इसका प्रमाण निर्वासित तिब्बती संसद के अध्यक्ष प्रो. सामदोंग रिंपोछे का वह कथन है जिसमें उन्होंने सहज रूप से कहा है कि भारतीय संस्कृति का विश्व में बचे रहना इतना आवश्यक है कि अगर भारतीय संस्कृति के बचाव के लिए तिब्बत का बलिदान भी देना पड़े तो उसके लिए वे सहर्ष तैयार हैं। प्रो. रिंपोछे की यह बात पूरी तिब्बती चेतना का प्रतीक है। इससे श्रेष्ठ सांस्कृतिक निष्ठा, धर्म-चेतना या सत्यनिष्ठा का उदाहरण और क्या हो सकता है ? भारत के प्रति इस भाव को क्या हम राष्ट्र-भक्ति कहेंगे ? यह राष्ट्र-भक्ति तो नहीं है। यह तो उससे ऊंची भावना है, जो खुद के राष्ट्र के बलिदान का भी आह्वान कर सकती है। इस तिब्बती मुक्ति-चेतना की तुलना में हमारा तिब्बत समर्थन संकीर्ण राष्ट्रवादी समर्थन ही दिखता है। इस समर्थन का उदात्तीकरण करने से ही इसमें इच्छित शक्ति आयेगी।

भारत जिस संस्कृति का प्रतीक रहा है और जिसे स्पष्ट करने हेतु गांधीजी ने भी यह कहा कि मैं देश को छोड़ सकता हूँ लेकिन सत्य को नहीं, उसी संस्कृति की चेतना तिब्बत मुक्ति-साधना में झलकती है। यही वह सुन्दरतम् अध्याय है जिसका हिस्सा हम हैं तो सही किन्तु वह बोध हममें क्षीण हो गया है।

परमपावन दलाई लामा तथा उनके अनुयायी हमारी ही संस्कृति की चेतना से हमें फिर से परिचित करवा रहे हैं–बहुत ऊंची और दारुण कीमत चुका कर। हमारा कर्त्तव्य है कि तिब्बत के प्रति अपने स्वधर्म का पालन कर हम एक राष्ट्र के रूप में कभी कृतघ्न और स्वार्थी न कहलायें।

राजीव वोरा

नई दिल्ली
15 अगस्त, 1998

□

परमपावन दलाई लामा का
वक्तव्य

राष्ट्रीय विद्रोह की वार्षिकी पर

नए युग के उदय-काल में समस्त विश्व में महान परिवर्तन घटित हो रहे हैं। यद्यपि एक ओर कहीं-कहीं नए झगड़े उठ रहे हैं तो दूसरी ओर संसार के कई विवाद-ग्रस्त इलाकों में पारस्परिक वार्तालाप तथा सुलह-सफाई की भावना भी जन्म ले रही है जो कि एक उत्साहवर्द्धक संकेत है। एक प्रकार से हम इस बीसवीं शताब्दी को युद्ध एवं खून-खराबे की शताब्दी भी कह सकते हैं। मेरा विश्वास है कि वर्तमान शताब्दी की समाप्ति तक के अपने अनुभवों से सामान्यत: मानवता ने कुछ शिक्षाएं ग्रहण करने का प्रयास किया है। फलत: मेरा मत है कि मानव समाज में परिपक्वता का उदय हुआ है। अत: यह आशा की जा सकती है कि पक्के इरादे तथा प्रतिबद्धता द्वारा विवादों के समाधान हेतु हम आगामी शताब्दी को वार्तालाप एवं अहिंसा-मय शताब्दी की संज्ञा दे सकते हैं।

आज जब हम अपने स्वतंत्रता संग्राम की 39 वीं वर्षगांठ मना रहे हैं, मैं अभूतपूर्व बाधाओं के समक्ष तिब्बत के लोगों द्वारा प्रदर्शित प्रबल इच्छा-शक्ति तथा धैर्य के लिए उनके प्रति अपने हार्दिक भाव तथा सराहना की अभिव्यक्ति करता हूँ। तिब्बत की वर्तमान परिस्थिति तथा तिब्बत के प्रश्न के किसी ठोस समाधान की अनुपस्थिति में निस्सन्देह अनेक तिब्बती जनों में निराशा का भाव बढ़ रहा है। मेरे लिए यह चिन्ता का विषय है कि हो न हो कुछ लोग शान्तिपूर्ण समाधान की बजाय कोई और मार्ग अपनाने के लिए बाध्य हो जाएं। मैं उनकी दुविधा समझता हूं, परन्तु फिर भी मैं अपने स्वतंत्रता संग्राम के अहिंसात्मक पक्ष के महत्व पर ही बल देना चाहता हूँ। स्वतंत्रता प्राप्ति की लम्बी तथा कठिन यात्रा में अहिंसा का मार्ग सिद्धान्त रूप में हमारे साथ रहना चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अन्ततोगत्वा यह अहिंसा मार्ग ही हितकर तथा व्यावहारिक है। हमारे इस शान्तिपूर्ण संघर्ष के प्रति आज तक अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने सहानुभूति तथा सराहना व्यक्त की है। अपने शान्तिपूर्ण संघर्ष द्वारा हम एक उदाहरण कायम कर रहे हैं तथा अहिंसा और वार्तालाप की राजनीतिक संस्कृति को बढ़ावा देने में योगदान कर रहे हैं।

विश्व भर में तेजी से हुए परिवर्तनों ने चीन को भी छुआ है। देंग शियाओ पिंग द्वारा शुरू किये गए सुधारों से न केवल चीन की अर्थव्यवस्था बदली है बल्कि उसकी राजनीतिक प्रणाली भी, जिस में सिद्धान्तवाद की कमी हुई है, जनता को सार्वजनिक रूप में हांकने

की निर्भरता घटी है, साधारण नागरिक के प्रति ज़ोर-ज़बरदस्ती भरी तथा दम घोंटू व्यवस्था पहले से कुछ नरम हुई है, सरकारी तंत्र भी अब कम केन्द्री-भूत दिखता है। इसके अतिरिक्त चीन का देंगोत्तर नेतृत्व भी अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों में अधिक लचीला नजर आता है। अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर चीन की अधिकाधिक उपस्थिति तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं आदि के साथ चीन का बढ़ता हुआ सहयोग इसी ओर संकेत करते हैं। गत वर्ष चीनी प्रभुसत्ता को हांगकांग का हस्तान्तरण तथा तत्पश्चात् हांगकांग की समस्याओं के प्रति चीन का व्यावहारिक एवं लचीला रवैया बहुत ही महत्वपूर्ण और उत्साहवर्द्धक घटनाएं हैं। जल-डमरू पार ताईवान के साथ पुन: वार्ताएं शुरू करने सम्बन्धी बीजिंग के वक्तव्यों से प्रकट होता है कि चीन के रुख में कुछ नरमी आई है। आज का चीन निस्सन्देह पन्द्रह-बीस वर्ष पुराने चीन की तुलना में रहने हेतु एक बेहतर जगह है। यह ऐतिहासिक परिवर्तन सराहनीय है। अपितु चीन अभी मानवाधिकार सम्बन्धी गम्भीर समस्याओं तथा विराट् चुनौतियां से घिरा है। मैं आशा करता हूँ कि चीन का नया नेतृत्व अपने नवोदित विश्वास के बूते पर चीनी जनता को अधिक स्वतंत्रता दे पाने के लिए दूरदर्शिता तथा साहस से काम लेगा। इतिहास हमें शिक्षा देता है कि किसी भी मानव समाज की आवश्यकताओं की पूर्णतया: पूर्ति मात्र भौतिक प्रगति एवं सुख सुविधाओं द्वारा सम्भव नहीं होती।

बड़े दु:ख की बात है कि स्वयं चीन में घटित इन सकारात्मक परिवर्तनों की साक्षात तुलना में हाल ही के वर्षों में तिब्बत में स्थिति अधिक बिगड़ी है। स्पष्ट है कि चीन तिब्बत में जान-बूझ कर ऐसी नीतियों का अनुसरण कर रहा है जिनका उद्देश्य है तिब्बत का सांस्कृतिक सर्वनाश। तिब्बत के धर्म तथा राष्ट्रवाद के विरुद्ध चीन द्वारा चलाई गई 'कुचल डालो' की निन्दनीय मुहिम प्रतिवर्ष क्रूर से क्रूरतम हुई है। यह दमनचक्र है, जो कि शुरू में भिक्षु-भिक्षुणियों के मठों तक सीमित था, अब तिब्बती समाज के प्रत्येक अंग पर लागू कर दिया गया है। आज तिब्बत में जीवन के अनेक अंगों में डराने धमकाने, ज़ोर-ज़बरदस्ती तथा भय का वातावरण फिर लौट आया है जो कि 'सांस्कृतिक क्रान्ति' के दिनों की याद ताज़ा कर देता है।

तिब्बत में मानवाधिकारों का हनन चरम सीमा तक पहुंच चुका है। इस हनन की प्रक्रिया अपने आप में एक विशिष्ट संरचना है जिस का ध्येय है तिब्बती लोगों को एक क़ौम के नाते अपनी अस्मिता एवं संस्कृति को अभिव्यक्त करने तथा उसके संरक्षण से रोकना। यह संस्कृति तिब्बती लोगों को प्रेम तथा करुणा के मूल्यों एवं सिद्धान्तों की ओर प्रेरित करती है जो कि व्यावहारिक जीवन में लाभदायक है; इनके संरक्षण की इच्छा की यही पृष्ठभूमि है। तिब्बत में मानवाधिकारों का हनन प्राय: जातीय तथा सांस्कृतिक भेदभाव की ही परिणति है तथा यह एक गम्भीर समस्या का लक्षण भी है और परिणाम भी। इसीलिए तिब्बत में किंचित आर्थिक प्रगति के बावजूद मानवाधिकारों की स्थिति में कोई

बदलाव नहीं आया है। तिब्बत के मौलिक प्रश्न का समाधान ढूंढने से मानवाधिकारों की समस्या का समाधान सम्भव हो सकता है।

साफ जाहिर है कि तिब्बत की शोचनीय स्थिति न तो तिब्बत के हित में है और न ही चीन के। वर्तमान नीतियों से तिब्बती जनता के कष्टों में कोई कमी होने वाली नहीं तथा वह स्थिरता और एकता भी, जिसकी बीजिंग के चीनी नेतृत्व को अत्याधिक आवश्यकता है, सम्भव न होगी। चीनी नेतृत्व की एक प्रमुख चिन्ता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी छवि व साख सुधारने की भी रही है। परन्तु तिब्बत के प्रश्न को शान्तिपूर्ण ढंग से न सुलझा पाने के कारण चीन जैसे महान राष्ट्र की अन्तर्राष्ट्रीय छवि धूमिल होती रही है। मेरा विश्वास है कि तिब्बत के प्रश्न का समाधान होने के फलस्वरूप हांगकांग तथा ताईवान के साथ उसके सम्बन्धों के अतिरिक्त चीन की अन्तर्राष्ट्रीय छवि के प्रति भी विश्व की बड़ी सकारात्मक प्रतिक्रिया होगी।

जहां तक तिब्बत प्रश्न के परस्पर मान्य समाधान की बात है, मेरी स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। मैं स्वतंत्रता की मांग नहीं कर रहा हूँ। जैसा कि मैं पहले भी कई बार कह चुका हूं, मैं चाहता हूं कि तिब्बत के लोगों को अर्थपूर्ण स्वशासन प्रदान करके उन्हें अपनी सभ्यता के संरक्षण का तथा विशिष्ट तिब्बती संस्कृति, धर्म, भाषा और जीवन पद्धति को विकसित एवं प्रफुल्लित करने का अवसर दिया जाए। तिब्बती क़ौम तथा उसकी विशिष्ट बौद्ध सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा ही मेरी प्रमुख चिन्ता है। इस ध्येय की पूर्ति हेतु यह आवश्यक है कि जैसा गत दशकों में सिद्ध हो चुका है, तिब्बती जनता अपने समस्त घरेलू मामलों का स्वयं संचालन करे तथा स्वतंत्र रूप से सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का निर्णय करे। मैं नहीं समझता कि इस प्रकार के दृष्टिकोण पर चीनी नेतृत्व को कोई मूलभूत आपत्ति हो सकती है। एक के बाद एक चीनी नेताओं ने यही आश्वासन दिया है कि चीनी लोग तिब्बती जनता का हित करने की इच्छा से ही तिब्बत में हैं तथा वे तिब्बत के विकास में सहायता करना चाहते हैं। अत: राजनीतिक इच्छा-शक्ति के रहते कोई कारण नहीं कि चीनी नेतृत्व तिब्बत के प्रश्न पर हमारे साथ वार्तालाप का सिलसिला शुरू कर के उसके समाधान की ओर ध्यान न दे। जिस स्थिरता और एकता को चीन के नेता अपनी प्राथमिकता मानते हैं उसे प्राप्त करने का यही उपयुक्त मार्ग है।

मैं इस अवसर पर फिर एक बार चीनी नेतृत्व पर ज़ोर देना चाहता हूँ कि वे मेरे सुझावों पर गम्भीरता-पूर्वक एवं अर्थपूर्ण ढंग से विचार करें। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपसी बातचीत तथा तिब्बत प्रश्न पर सही संदर्भ में ईमानदारी और स्पष्टरूप से विचार के द्वारा ही उस का कोई व्यावहारिक समाधान सम्भव हो सकता है। हम सब के लिए समय आ गया है कि हम 'तथ्यों द्वारा सत्य की खोज' करें; भूत काल का शान्त मन तथा बिना पूर्वाग्रह के अध्ययन करके शिक्षा ग्रहण करें तथा साहस, दूरदर्शिता और विवेक से काम लें।

समझौता वार्ता का लक्ष्य होना चाहिए तिब्बती तथा चीनी लोगों के बीच मैत्री तथा पारस्परिक हितों पर आधारित सम्बन्धों की स्थापना; स्थिरता तथा एकता सुनिश्चित करना तथा स्वतंत्र एवं प्रजातांत्रिक ढंग से तिब्बत के लोगों को सुचारु स्वशासन हित अधिकृत करना ताकि उन्हें अपनी विशिष्ट संस्कृति के संरक्षण-संवर्द्धन की छूट हो तथा वे तिब्बती पठार के नाजुक पर्यावरण की रक्षा कर सकें। ये हैं मुख्य मुद्दे। परन्तु चीनी प्रशासन इन उपयुक्त प्रश्नों को लगातार भ्रम में डालने की कोशिश कर रहा है। उनका आरोप है कि हमारी चेष्टा तिब्बत की पुरानी सामाजिक पद्धति तथा दलाई लामा की स्थिति एवं विशेषाधिकारों को पुनर्जीवित करने की है। जहाँ तक दलाई लामा की गद्दी का प्रश्न है मैंने 1969 में ही सार्वजनिक रूप से घोषणा की थी कि यह तिब्बत के लोगों को निर्णय करना है कि यह पद जारी रहे या न रहे। 1992 में एक अन्य सार्वजनिक वक्तव्य में मैंने यह स्पष्ट कहा था कि तिब्बत लौटने पर मैं भविष्य की किसी सरकार में कोई पद ग्रहण नहीं करूंगा। इसके अतिरिक्त, कोई भी तिब्बती, चाहे वह तिब्बत में है या तिब्बत के बाहर, तिब्बत की पुरानी सामाजिक प्रणाली लागू करने की इच्छा नहीं रखता। अत: यह बड़ी निराशाजनक बात है कि चीनी प्रशासन इस प्रकार के निराधार तथा विकृत प्रचार में संलग्न है। बातचीत हेतु उपयुक्त वातावरण के निर्माण में यह सहायक नहीं। अत: मैं आशा करता हूँ कि बीजिंग इस प्रकार के दोषारोपण से परहेज़ करेगा।

अनेक सरकारों, संसदों, गैर सरकारी संस्थाओं, तिब्बत समर्थक संगठनों तथा व्यक्ति विशेषों के प्रति मैं अपनी सराहना तथा कृतज्ञता की भावना प्रकट करना चाहता हूं जो तिब्बत में चल रहे दमन-चक्र के प्रति अपनी चिन्ता व्यक्त करते रहते हैं तथा तिब्बत प्रश्न के शान्तिपूर्ण समाधान के पक्षधर हैं। हम तिब्बती लोगों तथा चीनी प्रशासन के बीच परस्पर वार्तालाप की प्रक्रिया में सहायता देने हेतु अमेरिका ने 'तिब्बती मामलों के विशेष समन्वयक' की नियुक्ति कर के मानो एक प्रकार की सराहनीय पहल की है। यूरोपीय तथा आस्ट्रेलियाई संसदों ने भी इसी प्रकार का कदम उठाने का समर्थन किया है। गत दिसम्बर में 'अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग' ने तिब्बत सम्बन्धी अपनी तीसरी रिपोर्ट 'तिब्बत: मानवाधिकार तथा कानूनी प्रशासन' पेश की है। ये सब उपयुक्त कदम तथा उत्साहजनक घटनाएं हैं। इसके अतिरिक्त, चीन में तथा चीन से बाहर रह रहे हमारे चीनी भाई-बहनों की तिब्बती लोगों की दुर्दशा तथा उनके मौलिक अधिकारों और मेरे 'मध्यमार्गीय दृष्टिकोण' के प्रति बढ़ रही संवेदनशीलता, समर्थन और एक-जुटता की भावना हमारे लिए विशेष रूप से प्रेरणादायक तथा उत्साह-वर्द्धक हैं।

भारत की स्वतंत्रता की 50वीं वर्षगांठ के इस अवसर पर मैं तिब्बती समुदाय की ओर से अपनी हार्दिक बधाई देता हूँ तथा भारत की जनता और सरकार के प्रति पुन: अत्यन्त आभार एवं साधुवाद प्रकट करना चाहता हूँ, क्योंकि अधिकांश निर्वासित तिब्बतियों के लिए यह देश एक दूसरा घर बन गया है। भारत न केवल हम तिब्बतवासियों के लिए

एक सुरक्षित शरण-स्थल है बल्कि एक ऐसा राष्ट्र भी है जिसके अहिंसा के प्राचीन दर्शन तथा संस्कार-गत प्रजातांत्रिक मूल्यों ने हमारी मान्यताओं एवं आकांक्षाओं को आकार दिया है। इसके अतिरिक्त मेरा विश्वास है कि तिब्बत की समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए भारत एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है जो उसे निभानी भी चाहिए। तिब्बत-चीन सम्बन्धों के सन्दर्भ में मेरा 'मध्यमार्गीय दृष्टिकोण' भारत की मूल नीति के अनुरूप है। कोई कारण नहीं कि भारत, तिब्बत और चीन सरकारों के बीच वार्तालाप को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित तथा प्रचारित न करे। इतना तो स्पष्ट ही है कि तिब्बती पठार में शान्ति और स्थिरता की अनुपस्थिति में भारत-चीन सम्बन्धों में सच्चे विश्वास और भरोसे की स्थिति का स्थापित होना कठिन है।

उस जनमत संग्रह के बारे में, जिस के द्वारा तिब्बत के लोग अपनी पूर्ण इच्छा के अनुरूप अपने स्वतंत्रता संघर्ष का लक्ष्य निश्चित करेंगे, गत वर्ष हमने एक जनमत लेने की प्रक्रिया की थी तथा निष्कासन में रह रहे तिब्बतियों और यथासम्भव तिब्बत में रह रहे लोगों की राय एकत्र की थी। उक्त जनमत के निष्कर्षों तथा तिब्बत से प्राप्त हुए सुझावों के आधार पर हमारी निर्वासित तिब्बती संसद ने एक प्रस्ताव पारित करके मुझे अधिकार दिया कि मैं जनमत संग्रह का कदम न उठाकर अपने विवेकानुसार इस कार्य का संचालन करता रहूँ। मेरे प्रति तिब्बती जनों की असीम श्रद्धा, विश्वास एवं आशा की भावना व्यक्त करने हेतु मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहता हूँ। मेरा अब भी विश्वास है कि मेरा 'मध्यमार्गीय दृष्टिकोण' तिब्बत की समस्या के समाधान हेतु एक व्यावहारिक तथा यथार्थ दृष्टिकोण है। इसके द्वारा तिब्बत के लोगों की आकांक्षाएं पूरी होंगी तथा चीनी गणराज्य की एकता और स्थिरता बनी रहेगी। इसलिए मैं पूर्ण प्रतिबद्धता द्वारा इस मार्ग पर चलता रहूंगा और चीनी नेतृत्व तक पहुंचने का भरसक प्रयत्न करता रहूंगा।

तिब्बत के उन वीर पुरुषों और महिलाओं को, जो हमारी स्वाधीनता के लिए शहीद हो गए हैं, मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ तथा प्रार्थना करता हूँ कि मेरे देशवासियों के कष्टों का शीघ्र निवारण हो तथा समस्त सत्वों का कल्याण हो।

धर्मशाला

10 मार्च 1998

□

तिब्बत की वर्तमान स्थिति

प्रो. सामदोंग रिंपोछे

हम 'मुक्त' और 'स्वतंत्र' जैसे शब्दों को राजनैतिक शब्दावली में ठीक-ठीक परिभाषित नहीं कर सकते। लेकिन वास्तविक जीवन में, अपने बचपन में हमने अपने देश में स्वतंत्रता का अनुभव किया था, जब कोई बाहरी हस्तक्षेप नहीं था। राजनीतिक, आर्थिक, देशी-विदेशी सभी मुद्दों पर हम स्वतंत्रता से निर्णय लेते थे, कार्य करते थे। फिर हमने देखा कि हमारे लोगों, हमारे देश पर दूसरे देश की सेना द्वारा बलपूर्वक अधिकार कर लिया गया। और तब हमने अनुभव किया कि स्वतंत्रता का अभाव क्या होता है। फिर हमें अपने ही देश से निर्वासित कर दिया गया तो हमने जाना कि बिना किसी अधिकार के रहना क्या होता है और क्या होता है एक शरणार्थी बनकर रहना। इन अनुभवों में तर्क ढूंढने की कोई आवश्यकता नहीं है, हमने इन्हें प्रत्यक्ष महसूस किया है। यदि कोई इन अनुभवों को झुठलाना चाहे तो भी हम इन्हें नहीं भुला सकते, क्योंकि हमने उन्हें महसूस किया है। तिब्बत एक देश है और एक समुदाय है। चूँकि तिब्बत को चीन ने अवैधानिक रूप से अधिकृत कर लिया है, तिब्बती जनता को आत्मनिर्णय का पूरा अधिकार है।

इतिहास

तिब्बत की वर्तमान स्थिति एवं उसके भविष्य की संभावनाओं पर विचार के लिए उसके इतिहास का भी संक्षेप में अवलोकन करना अपेक्षित है। भोट या 'बोद' जो आज तिब्बत के नाम से प्रसिद्ध है उसका केवल दो हजार वर्ष पुराना इतिहास है। 127 ई.पू. में अठी चनपो तिब्बत के प्रथम सम्राट बने। उस काल से लेकर 836 ई. तक इकतालीस राजवंशजों ने तिब्बत में राज्य किया। उन्होंने अपने राज्य की सीमाएँ चतुर्दिक बढ़ाकर चीन, तुर्किस्तान, नेपाल, मंगोलिया आदि के पर्याप्त भूभाग को अपने अधीन किया। चीन के साथ अनेक

---

* 1990 के व्याख्यान के आधार पर।

* इस लेख में परिशिष्टों के संदर्भ सम्पादक द्वारा दिये गये हैं।

बार युद्ध और सन्धियाँ हुईं। 841 ई. में लङ् दरमा की हत्या के बाद तिब्बत अनेक भागों में बंट गया। 1220 ई. में चंगेज खान का आक्रमण हुआ और 1240 ई. तक सभी छोटे तिब्बती राज्य उसके अधीन हो गये। उनके पौत्र कुबलाई खान ने सम्पूर्ण तिब्बत को एक राष्ट्र के रूप में गठित करके अपने गुरु स-स्क्य पण्डित के भतीजे फग्सपा को गुरुदक्षिणा के रूप में उसे अर्पित कर दिया। उस समय से लेकर छियानवें वर्ष तक स-स्क्य शासन रहा। तत्पश्चात् डेसी फग्मों डुब पा, डेसी रिङ् पोङ् पा और डेसी चङ्पा ने क्रमशः राज्य करते हुए 1642 ई. तक शासन को आगे बढ़ाया। मंगोल सेनापति गुस्री खान ने डेसी चङ्पा को अधीन बनाकर तिब्बत के शासन को अपने हाथ में लिया और पुनः अपने गुरु पाँचवें दलाई लामा को गुरु-दक्षिणा के रूप में दिया। उस काल से गदेन फोङ्ग नामक जो सरकार बनी वह 1959 तक अनेक उतार-चढ़ाव के साथ चलती रही।

इस बीच मंगोलिया के सेनापति जुङ्गर ने 1717 में तिब्बत पर आक्रमण कर तीन वर्ष स्वयं वहाँ शासन किया। उसे भगाने के लिये चीन से चार हजार सैनिक तिब्बत आये जो चीनी शक्ति द्वारा तिब्बत में प्रवेश पाने का प्रारम्भ था। कुछ महीनों के बाद चीनी सेना वापस चली गई और शासन की बागडोर पुनः सातवें दलाई लामा के हाथ में आई।

1728 में तत्कालीन मंत्रिपरिषद् में विभाजन और गृह-युद्ध के कारण फुलावा ने चीन से सैनिक सहायता माँगी जिसके पश्चात् चीन के स्थायी प्रतिनिधि 'अम्बन' की स्थापना तिब्बत में हुई और वहाँ चीनी हस्तक्षेप का दौर प्रारम्भ हो गया।

द्वितीय महायुद्ध के समय एक तटस्थ राष्ट्र के रूप में तिब्बत ने अपनी भूमि से शस्त्रास्त्र के यातायात पर प्रतिबंध लगा दिया। इसे ब्रिटेन और चीन दोनों को मानना पड़ा। बौद्धधर्म को राष्ट्र का धर्म एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति को अपनी संस्कृति मानकर अपनी अत्यन्त संपन्न परम्पराओं के साथ यह देश शेष दुनिया से अलग-थलग सुख-शान्ति से जीवन बिताता रहा।

चीन की दुर्भावपूर्ण राजनीति के कारण 9वें से लेकर 12वें तक सभी दलाई लामा अल्पायु होते गए और तिब्बत का शासन लड़खड़ाता गया।

अठारवीं शती के अन्त में ब्रिटिश भारत ने कई बार चीन के साथ तिब्बत संबंधी संधियां कीं जिनके कार्यान्वित न होने पर 1904 ई. में यंग हसबैण्ड एक्सपीडिशन के नाम से ब्रिटिश द्वारा ल्हासा पर सैनिक आक्रमण किया गया और तिब्बत से सीधे संधि हुई। 1912 में तेरहवें दलाई लामा ने तिब्बत से अम्बन तथा उसके सहयोगियों को निष्कासित कर तिब्बत की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा को पुनः दोहराया। अगले वर्ष मंगोलिया के साथ उलनवतोर सन्धि तथा 1914 में ब्रिटिश के साथ 'शिमला समझौता' हुआ। इस प्रकार तिब्बत 127 ई. पू. से लेकर 1728 ई. तक बराबर स्वतंत्र राष्ट्र रहा। 1728 से 1911

तक विदेशी हस्तक्षेप विभिन्न रूपों में बना रहा फिर भी अपने आन्तरिक शासन पर कोई प्रभाव नहीं रहा। जिसे पश्चिमी विद्वानों ने *de facto* स्वतंत्रता की संज्ञा दी। 1912 से 1950 तक विदेशी हस्तक्षेप पूर्णतया समाप्त हुआ और एक *de jure* स्वतंत्र देश के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखा।

द्वितीय महायुद्ध के समय एक तटस्थ राष्ट्र के रूप में तिब्बत ने अपनी भूमि से शस्त्रास्त्र के यातायात पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसे ब्रिटेन और चीन दोनों को मानना पड़ा। बौद्ध धर्म को राष्ट्र का धर्म एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति को अपनी संस्कृति मानकर अपनी अत्यन्त संपन्न परम्पराओं के साथ यह देश शेष दुनिया से अलग-थलग सुख-शान्ति से जीवन बिताता रहा।

वर्तमान

विचारणीय क्षेत्र

तिब्बत की वर्तमान परिस्थिति को चित्रांकित करने के लिए सन् 1949 से लेकर आज तक के विगत चालीस वर्ष के घटना-क्रम को समग्र रूप में देखना होगा जिसमें चीन-अधिकृत तिब्बत में एक स्वायत्त प्रान्त के रूप में आठ वर्ष के कार्यकाल, 1959 के पश्चात् अधिकृत तिब्बत और प्रवासी शरणार्थी तिब्बती-जन के बीच घटित घटनाओं और अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में तिब्बत विषयक सारी गतिविधियों को सम्मिलित करना होगा।

पृष्ठभूमि

उक्त चालीस वर्षों की परिस्थितियों के बीज तिब्बत में सन् 1728 में ही पड़ चुके थे। उस समय से लेकर 1912 ई. तक की प्राय: दो सौ वर्षों की राजनीतिक घटनाएँ वर्तमान परिस्थिति की पृष्ठभूमि है जिनका संक्षेप में पहले उल्लेख किया जा चुका है।

अवसर खो दिया

सन 1912 ई. में तेरहवें दलाई लामा ने तिब्बत में उपस्थित चीन की सारी शक्तियों को निष्कासित करके तिब्बत की संप्रभुता एवं स्वतंत्रता का पुन: उद्घोष किया[1]। उस समय से 1933 तक का युग तिब्बत के इतिहास में एक स्वर्ण-युग रहा। वह एक ऐसा अवसर तिब्बतवासियों को मिला जब वे विश्व के विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के मंचों पर अपनी स्वाधीनता की स्थिति को साधिकार प्रवेश करा सकते थे परन्तु तत्कालीन स्वार्थप्रेरित और अदूरदर्शी तिब्बती अफसरशाही ने सरल तिब्बती समुदाय के साथ उस अवसर को खो दिया जिसका परिणाम आज प्रत्यक्ष हमारे सामने है।

---

1. परिशिष्ट-1 देखें पृष्ट 150

तेरहवें दलाई लामा की चेतावनी

तेरहवें दलाई लामा ने अपने अन्तिम उपदेश में स्पष्ट रूप से कहा है कि यदि तिब्बती शासक-वर्ग स्वार्थनिहित कार्यों का परित्याग नहीं करेगा तो कुछ दशकों में ही तिब्बत चीन के अधीन हो जायेगा और सम्पूर्ण तिब्बतवासी ऐसी यातनाएँ भोगने के लिए विवश हो जायेंगे जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि समय से सब लोग अपने को परिवर्तित करके राष्ट्र के हित में जुट कर नि:स्वार्थ भाव से कार्य करें तो पचास-सौ वर्ष और स्वाधीन तिब्बत के वैभव को अक्षुण्ण बना सकेंगे। परन्तु तेरहवें दलाई लामा के उपदेश की अवहेलना होती रही और उनके निर्वाण के बाद लोग अपने निहित स्वार्थों में लग गए। परिणामत: 1949-50 ई. में तथाकथित साम्यवादी चीन ने तिब्बत पर अचानक आक्रमण कर दिया। तिब्बत के लोगों द्वारा किए गए अपने राष्ट्र को बचाने के सभी प्रयत्न विफल रहे। तिब्बतवासियों के लिए यह शर्म की बात थी। इतिहास इसके लिए उन्हें कभी क्षमा नहीं करेगा।

साम्यवादी चीनियों का आक्रमण

साम्यवादी चीनियों की दृष्टि तिब्बत पर प्रारम्भ से ही रही है। माओ के नेतृत्व में साम्यवादी संगठन का ऐतिहासिक 'लांग मार्च' भी तिब्बत को लक्ष्य कर ही संचालित हुआ था। तिब्बत को मुख्य केन्द्र बनाकर वहाँ से चीन पर अधिकार करने का विचार था। परन्तु तत्कालीन तिब्बती सीमावर्ती जनता और सुरक्षा-बलों ने मिलजुल कर उन्हें पराजित कर तिब्बत में प्रविष्ट नहीं होने दिया।

1950-51 में तिब्बत ने विश्व भर से सहायता की प्रार्थना की कि वे चीन के क्रूर आक्रमण से उन्हें बचाएँ। राष्ट्र-संघ में भी तिब्बत ने आवेदन-पत्र भेजा। परन्तु तिब्बत का राष्ट्र-संघ का सदस्य न होना और उसके किसी सदस्य द्वारा अग्रसारित न होने के कारण निर्देश के साथ उसे वापस कर दिया गया। तिब्बत ने अपने को संपूर्ण विश्व में नितान्त अकेला एवं असहाय पाया। परन्तु इसके उत्तरदायी स्वयं तिब्बत के ही लोग हैं।

अत: 1949 में चीन में सत्ता परिवर्तन होते ही तिब्बत पर आक्रमण करने के कारणों में 'लांग मार्च' की विफलता-जनित प्रतिशोध की भावना भी एक कारण बनी। इसके अतिरिक्त तिब्बत की भौगोलिक संरचना और उसके प्राकृतिक संसाधन चीन के तिब्बत पर सत्ताधिग्रहण के कारण रहे। साम्यवादी चीन ने 1949 के अक्तूबर मास में अपनी सरकार के कायम होते ही अविलम्ब तिब्बत को विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों से मुक्ति दिलाने के लिए मुक्ति-सेना भेजने की घोषणा की और तिब्बत पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया।

तथाकथित सत्रह-सूत्रीय समझौता

तिब्बत की पूर्वी सीमा पर चीन के आक्रमण से लगभग छम्दो तक उनका अधिकार हो जाने पर देश की सुरक्षा असंभव देखकर तिब्बत के रीजेण्ट ने सत्ता चौदहवें दलाई लामा जी को सौंप दी। परमपावन उस समय मात्र 15 वर्ष के थे। सुरक्षा की दृष्टि से वे भारतीय सीमा डोल्मो में जाकर निवास करने लगे। छम्दो के प्रान्तीय शासक को युद्ध-बन्दी बनाकर पेकिंग ले जाया गया। उनसे 1951 में बन्दूक की नोक पर बलपूर्वक चीन द्वारा तैयार किये गए सत्रह-सूत्रीय समझौता-पत्र[2] पर हस्ताक्षर करा लिये गए। वह तिब्बत सरकार के अधिकृत प्रतिनिधि नहीं थे,[3] फिर भी उन्हें चीन ने प्रतिनिधि मान लिया और संसार भर में इसका प्रचार किया गया तथा नेहरूजी को आश्वस्त किया गया कि उस समझौते में उल्लिखित प्रावधानों का पालन करते हुए वे तिब्बत में विकास कार्य करेंगे। और पूर्वी सीमा से बढ़ते हुए चीनी दस्ते आगे बढ़ते रहे। भारत से होकर चीन के कुछ असैनिक अधिकारी डोल्मो में दलाई लामा जी के पास पहुंचे। इस प्रकार संपूर्ण तिब्बत कुछ ही समय में चीन के अधीन हो गया।

विश्व में अकेलापन

1950-51 में तिब्बत ने विश्व भर से सहायता की प्रार्थना की कि वे चीन के क्रूर आक्रमण से उन्हें बचाएँ। राष्ट्र-संघ में भी तिब्बत ने आवेदन-पत्र भेजा। परन्तु तिब्बत का राष्ट्र-संघ का सदस्य न होना और उसके किसी सदस्य द्वारा अग्रसारित न होने के कारण निर्देश के साथ उसे वापस कर दिया गया। तिब्बत ने अपने को संपूर्ण विश्व में नितान्त अकेला एवं असहाय पाया। परन्तु इसके उत्तरदायी स्वयं तिब्बत के ही लोग हैं।

इस प्रकार तिब्बत-भारत की सभी पुरानी संधियाँ समयच्युत हो गईं और कोई नई संधि नहीं हो सकी। कुल मिलाकर तिब्बत की सरकार भारत के सामने एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अपने को प्रस्तुत करने में अक्षम रही। इन सबकी तह में ब्रिटिश द्वारा तिब्बत के शासकों को दिए गए दुर्भावपूर्ण भ्रामक परामर्श थे।

इतिहास में काले दाग

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मानव ने चन्द्रमा पर विजय पाने का गौरव प्राप्त किया है, ज्ञान और सभ्यता के विकास की चरम सीमा तक पहुँचने का दावा प्रस्तुत किया जाता ही है और मानवाधिकार, समता, न्याय, विश्वबन्धुत्व आदि की चर्चा चतुर्दिक फैली हुई है। उसी समय तिब्बत को विस्तारवादी चीन निगल गया और वहां अपूर्व नरसंहार एवं

2. परिशिष्ट-2 देखें पृष्ट 152
3. परिशिष्ट-2 देखें पृष्ट 152

सांस्कृतिक संहार द्वारा मानवाधिकारों का खुलकर हनन हुआ, परन्तु संपूर्ण विश्व मूक दर्शक बनकर मौन रहा। यही मानव इतिहास में अवर्णनीय काला दाग है जो कभी मिट नहीं सकता।

नेहरुजी की विवशता

यह एक साधारण मान्यता बन गई है कि तिब्बत को चीन के एक स्वायत्तशासी प्रान्त के रूप में मान्यता देकर नेहरुजी ने ऐतिहासिक गलती की। परन्तु मैं इसे नेहरुजी की गलती नहीं, अपितु विवशता मानता हूँ।

भारत के स्वतंत्र होने के पहले से ही तत्कालीन भारतीय नेतागण तिब्बत को एक स्वतंत्र देश के रूप में देखना चाहते थे। सन् 1947 के प्रारम्भ में हुए एशियाई संबंधों के अधिवेशन में चीन के कड़े विरोधों के बावजूद तिब्बत को एक स्वतंत्र देश का स्थान देकर आमंत्रित किया गया। उसके प्रतिनिधिमंडल को नेहरु आदि नेताओं ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपने राजनीतिक संबंधों को विकसित करने की सलाह भी दी, परन्तु तिब्बती शासक इसे समझ नहीं पाए। भारत के स्वतंत्र होने पर तिब्बतवासियों ने जून 1948 तक उसे मान्यता ही नहीं दी। व्यापार आयोग के अध्यक्ष श्री शकव-पा को नेहरुजी ने सलाह दी कि ब्रिटिश भारत के साथ हुई सभी तिब्बती संधियों का नवीनीकरण होना चाहिए तथा नई संधियों की प्रक्रिया प्रारम्भ करनी चाहिए जिससे स्वंतत्र भारत के साथ तिब्बत के वैधानिक संबंध सुदृढ़ हो सकें। इस आशय का तार ल्हासा 'कशग' (मंत्रिपरिषद) को देने पर शकव-पा को उत्तर आया कि ''तुम्हें जिस कार्य के लिए भेजा गया है उसके अतिरिक्त किसी अन्य कार्य में रुचि लेने की आवश्यकता नहीं है''।

नेहरुजी ने दलाई लामा और पन्चेन लामा को भारत में 25सौंवी बुद्धजयन्ती के अवसर पर आमंत्रित किया। उस समय दलाई लामाजी ने भारत में रह जाने की इच्छा व्यक्ति की थी, परन्तु नेहरुजी ने यह परामर्श दिया कि ''मैंने चाऊ-एन-लाई से वार्तालाप किया है-तिब्बत को संपूर्ण स्वायत्तता देने में चीनी कभी पीछे नहीं हटेंगे, वे आपके आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इसलिए आपको वापस जाना चाहिए। यदि चीन अपना वचन पूरा नहीं करता है तो मैं स्वयं तिब्बत आकर देखूँगा।''

इस प्रकार तिब्बत-भारत की सभी पुरानी संधियाँ समयच्युत हो गईं और कोई नई संधि नहीं हो सकी। कुल मिलाकर तिब्बत की सरकार भारत के सामने एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अपने को प्रस्तुत करने में अक्षम रही। इन सबकी तह में ब्रिटिश द्वारा तिब्बत शासकों को दिए गए दुर्भावपूर्ण भ्रामक परामर्श थे।

इन सब घटनाओं के बाद नेहरुजी को ब्रिटिश से विरासत में प्राप्त तिब्बत के सम्बन्ध

में घिसीपिटी नीतियों को जारी रखने के सिवाय कोई विकल्प नहीं रहा। अत: नवम्बर, 1949 में नेहरुजी ने लंदन में एक वक्तव्य दिया जो संभवत: तिब्बत के सम्बन्ध में स्वतंत्र भारत का प्रथम वक्तव्य था। उसमें यह कहा गया कि 'शिमला समझौते' में माना गया है कि तिब्बत एक स्वायत्त प्रान्त है जिस पर चीन का आधिपत्य *(Suzerainty)* स्थापित है, वह हमें मान्य है; फिर भी हम तिब्बत के साथ विशेष सम्बन्ध रखने के इच्छुक हैं, क्योंकि भारत और तिब्बत के बीच धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक सम्बन्धों की सुदीर्घ एवं दृढ़ परम्परा रही है।

तनाव के आठ वर्ष

सन् 1951 से 1959 तक चीन के सैन्य-बल की उपस्थिति में तिब्बत की सरकार के वैधानिक कार्य चलते रहे। तिब्बत पर चीन का अधिकार होते ही पेकिंग-ल्हासा मार्ग के निर्माण को प्राथमिकता दी गई और 1955 में पेकिंग से ल्हासा तक भारी सैनिक वाहनों, टैंकों आदि के यातायात का मार्ग बन गया। उस समय से बराबर सेनाओं का संचालन जारी रहा। उसके साथ तथाकथित 'प्रिपरेटरी कमेटी फार टिबेट्स आटोनॉमस रीजन' का गठन हुआ। 1954-55 में दलाई लामा और पन्चेन लामा आदि को पेकिंग ले जाकर शक्ति प्रदर्शन द्वारा उन्हें प्रभावित करने और उनका विचार-परिवर्तन (ब्रेनवाश) करने का प्रयास किया गया। 1956-57 में नेहरुजी ने दलाई लामा और पन्चेन लामा को भारत में 25सौंवी बुद्धजयन्ती के अवसर पर आमंत्रित किया। उस समय दलाई लामाजी ने भारत में रह जाने की इच्छा व्यक्ति की थी, परन्तु नेहरु जी ने यह परामर्श दिया कि "मैंने चाऊ-एन-लाई से वार्तालाप किया है-तिब्बत को संपूर्ण स्वायत्तता देने में चीनी कभी पीछे नहीं हटेंगे, वे आपके आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इसलिए आपको वापस जाना चाहिए। यदि चीन अपना वचन पूरा नहीं करता है तो मैं स्वयं तिब्बत आकर देखूँगा।"

उक्त आश्वासन पर दलाई लामाजी तिब्बत वापस लौट गए और 10 मार्च, 1959 तक किसी प्रकार शासन चलाते रहे।

जनक्रान्ति का उदय

चीन के निर्मम अत्याचार से संत्रस्त तिब्बत वासियों में जनक्रान्ति का उदय खम् प्रान्त में 1954 के प्रारम्भ से ही हो चुका था। परन्तु इस जनक्रान्ति की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित करने में कोई भी माध्यम समर्थ नहीं हुआ।

संघर्ष चलता रहा और 1958 तक उसने संगठित होकर दक्षिण प्रान्त के अधिकांश भू-भाग को समावृत कर लिया जिससे परमपावन दलाई लामाजी को भारत में शरण लेने का मार्ग मिल सका।

चीन जैसे असंख्य सैन्य बल वाले राष्ट्र के विरोध में मुट्ठी भर लोगों का बिना किसी

आधुनिक शस्त्रास्त्र के संघर्षरत रहना और कोई पाँच बरस तक अपना अस्तित्व बनाकर एक विशाल भूखण्ड को बचाए रखना विश्व इतिहास में एक अद्वितीय घटना है।

संघर्ष के हिंसात्मक होने के कारण मैं उसका अनुमोदन तो नहीं कर सकता, फिर भी उस संघर्ष में अपना जीवनोत्सर्ग करने वालों का साहस और राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा प्रशंसा का विषय है।

सम्पूर्ण विनाश

ल्हासा में चीन के साथ स्वायत्त शासन चलाने के समस्त प्रयासों की विफलता 10 मार्च, 1959 को अपने चरम रूप में परिलक्षित हुई। अत्यन्त विवश जन-समुदाय ने दलाई लामा जी की प्राण रक्षा तथा देश की स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए इसी दिन अपना आक्रोश प्रदर्शित किया। जनता ने समवेत होकर चीन की अधीनता को अस्वीकार कर दिया। 18 मार्च को दलाई लामाजी भारत के लिए प्रस्थान करने में सफल हुए। 19-20 मार्च की रात्रि में सम्पूर्ण ल्हासा जनपद तोपों और बमों के अन्धाधुन्ध प्रहार से झुलस कर रह गया जिससे असंख्य निहत्थे लोग अपने वतन के लिए शहीद हो गए।

अधिकृत तिब्बत में

तत्पश्चात् संपूर्ण अधिकृत तिब्बत में जनक्रान्ति को दबाने में चीन की सारी शक्ति लग गई। फिर भी क्रान्ति को संपूर्ण रूप से दबाने में चीनी असफल रहे। मार्च, 1959 से तिब्बत में चीनी सैनिक शासन सत्तारूढ़ हुआ। उस समय से 1965 तक लाखों निर्दोष व्यक्तियों को (जिनकी अनुमानित संख्या दस लाख है, जो पूर्ण जनसंख्या का 16 प्रतिशत से भी अधिक है) जनक्रान्ति में भाग लेने के अपराध में अमानवीय यातनाएँ देकर मार डाला गया। 1965 से 1976 तक तथाकथित सांस्कृतिक आंदोलन (कल्चरल रिवाल्यूशन) में तिब्बती संस्कृति को समूल नष्ट करने का अभियान चलाया गया। इस अभियान के क्रम में हजारों विहारों (गोनपा) और उनमें अवस्थित ग्रन्थों और कलाकृतियों को नष्ट किया गया। इस तरह कितनी ही पुरातात्विक संपत्तियों को क्षति पहुंची।

तथाकथित उदार नीति

1976 से चीनी सरकार ने सांस्कृतिक क्रान्ति को अपनी भूल के रूप में स्वीकार करते हुए तथाकथित 'उदार नीति' अपनाई। 1979 में चीन में फैले भयंकर आर्थिक संकट के कारण अन्य देशों के साथ वह एक 'खुली नीति' अपनाने के लिए बाध्य हुआ। उसने इसी परिप्रेक्ष्य में दलाई लामा तथा उनके प्रवासी अनुयायियों को स्वदेश लौट आने के आमंत्रण भी दिए जिसमें निहित उसकी दुरभिसन्धिपूर्ण चालें और कपटनीतियाँ शीघ्र पहचान में आ गईं। 1979 से लेकर 1983 तक चार बार दलाई लामाजी की ओर से तिब्बत में तथ्यान्वेषक शिष्टमंडल भेजे गये और अनेक बार दलाई लामाजी से वार्ता प्रारंभ करने

की अर्थहीन चर्चा भी हुई। 1983 के बाद विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के उद्देश्य से तिब्बत में कुछ सीमित स्थान विदेशी पर्यटकों के लिए खोल दिये गये।

इस तथाकथित 'उदार-नीति' के काल में भी तिब्बत की पहचान को समाप्त करने की नीति का त्याग नहीं किया गया। चीनी मूल के लोगों को तिब्बत में लाकर बसाने का कार्य अविच्छिन्न रूप से चलता रहा। चीनी आँकड़ों के अनुसार 1986 के अन्त तक पचहत्तर लाख चीनी मूल के लोग तिब्बत के विभिन्न भागों में बसाए जा चुके हैं जबकि तिब्बत की अपनी संपूर्ण जनसंख्या साठ लाख है।

निर्वासित तिब्बतियों ने क्रमशः 1959, '61 तथा '65 में संयुक्त राष्ट्र संघ में स्मृति-पत्र दिए। उनमें तिब्बत में मानवाधिकार हनन की समाप्ति सम्बन्धी प्रस्ताव पारित हुए। दो प्रस्तावों में भारतीय प्रतिनिधि मत-विभाजन में अनुपस्थित रहे। परन्तु '65 के तीसरे प्रस्ताव में भारतीय प्रतिनिधि श्री जकारिया ने ऐतिहासिक भाषण देकर तिब्बती प्रश्न की वकालत की जो भारत सरकार की ओर से तिब्बती प्रश्न के विषय में एक रचनात्मक परिवर्तन था।

चीन की असलियत सामने आई

चीन की समस्त तथाकथित उदारनीतियों के रहते भी तिब्बत की जनाकांक्षा को कभी परितोष नहीं मिला। इसके फलस्वरूप अक्टूबर, 1987 को चीन के विरोध में विशाल शान्तिपूर्ण प्रदर्शन हुआ। उस समय से लेकर अठारह मास में इक्कीस और प्रदर्शन हुए जिनमें सौ से अधिक लोग मार दिए गए और दो हजार से अधिक लोग जेलों में यातनायें झेलते रहे। फिर भी दमन के कार्यों से जनता का मुंह नहीं बांधा जा सका। 1989 ई. में 5 मार्च को पुनः हजारों शान्तिपूर्वक प्रदर्शन करने वाले नागरिकों पर गोलियां बरसाई गईं। जब स्थिति नियंत्रण से बाहर पाई गई तो 'मार्शल-ला' की घोषणा कर सारे देश को सेना के अधीन कर दिया गया। इस प्रदर्शन के बीच में, चीनी सूत्रों के अनुसार 256 लोग मारे गए और कुछ हजार गिरफ्तार किए गए। परन्तु ये वास्तविक आँकड़ों से बहुत कम हैं। समस्त विदेशी राजनयिकों, पत्रकारों और पर्यटकों को जबर्दस्ती अधिकृत तिब्बत से निष्कासित कर दिया गया है। उस समय से तिब्बत और बाकी विश्व के बीच एक अभेद्य दिवार (आयरन कर्टेन) खड़ी कर दी गई है। इस समय वहाँ क्या हो रहा है इसकी कोई अधिकृत सूचना उपलब्ध नहीं है।

1987 और 1989 के दो वर्ष के बीच के इन जनान्दोलनों को विश्वभर के माध्यमों में समुचित प्रचार मिला जो हम लोगों के लिए एक नई घटना है। पत्रकार स्वयं किसी घटना में फंसते हैं तो उस घटना का सही मूल्यांकन करते हैं। तिब्बत में पत्रकारों के साथ ऐसा ही हुआ है।

प्रवासी शरणार्थी

मार्च 1959 में परमपावन दलाई लामा के साथ अस्सी हजार के लगभग तिब्बती शरणार्थी भारत आये। भारतीय जनता एवं भारत सरकार ने अत्यन्त आत्मीयता और सहानुभूति के साथ इन्हें शरण दी। सभी शरणार्थियों को कृषि, लघु उद्योग एवं छोटे स्तर के व्यापारों में लगाकर लगभग दो दशक में उनके पुनर्वास के कार्य को संपन्न किया गया। आज वे भारत के विभिन्न प्रान्तों में काफी सुख-सुविधा से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके पाँचों धार्मिक सम्प्रदायों की मुख्य पीठों और अधिकांश विहारों का पुनःस्थापन कर दिया गया है जिससे परम्परागत संस्कृति के संवर्द्धन और संरक्षण के कार्य व्यापक रूप से चलते रहें।

उनके बच्चों के लिए शिक्षा की व्यापक व्यवस्था की गई है। केन्द्रीय तिब्बती स्कूल प्रशासन द्वारा सम्बन्धित पचासों स्कूलों में पचीस हजार के लगभग छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। सैकड़ों की संख्या में विभिन्न विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा के भी अवसर प्राप्त हैं। लद्दाख संस्थान, लेह; सिक्किम रिसर्च इंस्टीट्यूट, गंगटोक; केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ आदि में विशेष अध्यापन एवं अनुसंधान के कार्य चल रहे हैं और लुप्त प्राचीन बौद्ध संस्कृत ग्रंथों के पुनरुद्धार कार्य से भारतीय संस्कृत परम्परा को, जो हजारों वर्षों से तिब्बत में सुरक्षित थी, भारत को सौंपे जाने का कार्य भी चल रहा है। उसके साथ अपनी स्वाधीनता के आंदोलन में भी तिब्बती जन लगे हुए हैं।

भारतीय सहयोग

जब से तिब्बत का प्रश्न हमारे समक्ष आया, उस काल से चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, डा. राजेन्द्रप्रसाद, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्रदेव, अच्युत पटवर्धन, श्यामाप्रसाद मुखर्जी आदि बड़े राष्ट्रीय नेताओं का इस दिशा में विशेष सहयोग रहा है। आचार्य जे.बी. कृपलानी ने सेण्ट्रल रिलीफ कमेटी स्थापित करके शरणार्थियों को विशेष सहायता दिलवाई। जयप्रकाश नारायण ने 1960 में ऐफ्रो-एशिया कन्वेन्शन बुलाकर तिब्बती प्रश्न के लिए विश्व जनमत संग्रह की चेष्टा की। इसी तरह कई जन आन्दोलन चलाए जाते रहे जिन सबका उल्लेख यहाँ संभव नहीं है।

संयुक्त राष्ट्र संघ

निर्वासित तिब्बतियों ने क्रमशः 1959, '61 तथा '65 में संयुक्त राष्ट्र संघ में स्मृति-पत्र दिए। उनमें तिब्बत में मानवाधिकार हनन की समाप्ति सम्बन्धी प्रस्ताव पारित हुए। दो प्रस्तावों में भारतीय प्रतिनिधि मत-विभाजन में अनुपस्थित रहे। परन्तु '65 के तीसरे प्रस्ताव

में भारतीय प्रतिनिधि श्री जकारिया ने ऐतिहासिक भाषण देकर तिब्बती प्रश्न की वकालत की जो भारत सरकार की ओर से तिब्बती प्रश्न के विषय में एक रचनात्मक परिवर्तन था।

अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग

1959 में ही अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग (International Commission of Jurists) ने तिब्बत में मानवाधिकारों के गंभीर हनन की सूचना दी।*

भावी संविधान का प्रारूप

परमपावन दलाई लामाजी ने 1961 में सूत्ररूप में तथा 1963 में भावी तिब्बत राष्ट्र के एक संपूर्ण संविधान का प्रारूप–जो आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित है–प्रस्तुत किया, जिसमें राष्ट्रीय संसद को दलाई लामा को भी शासन से हटाने के अधिकार का प्रावधान है। संविधान के उक्त प्रारूप के अनुकूल धर्मशाला के प्रशासन को पुनर्गठित किया गया है और निर्वाचित सदस्यों की परिषद् को शासन के सूत्र सौंपे गए हैं।

भारत सरकार की मान्यता

नेहरूजी ने तिब्बत को चीन के स्वायत्तशासी प्रान्त की मान्यता देते हुए भी तिब्बत के भविष्य का निर्णय तिब्बतियों द्वारा ही किए जाने का समर्थन किया। संसद में अथवा उसके बाहर कहीं पर भी तिब्बत देश के विषय में बोलते हुए आत्म-निर्णय (सेल्फ डिटर्मिनेशन) के अधिकार का उल्लेख वे अवश्य करते थे। श्री लालबहादुर शास्त्रीजी उनसे भी आगे बढ़कर तिब्बत की प्रवासी-सरकार को मान्यता देने पर भी विचार करने लग गए थे परन्तु उन्हें इसका अवसर नहीं मिला। साठ के दशक के अन्त से भारत सरकार के तिब्बत विषयक वक्तव्यों में आत्म-निर्णय वाले अंश निकल गए। अब वे कब जुड़ते हैं, देखने की बात है।

'सत्य-आन्दोलन'

साठ के दशक के अन्त में तिब्बती शरणार्थियों के पुनर्वास की प्रक्रिया के संपन्न हो जाने से लोगों में कुछ शिथिलता आई दिखाई दी। इसी तरह धर्मशाला प्रशासन में भी वित्त के अभाव से कार्यों में गिरावट आई। इसे देखते हुए सारनाथ से मेरे कुछ छात्रों और लामा थुपस्तन जुगनेस की पहल से 'सत्य-आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ जिसने प्रवास में रहने वाले सभी तिब्बतियों को धर्मशाला प्रशासन को स्वेच्छा से मौलिक-कर, आयकर तथा

---

* देखें 1. 'दमन : न्याय, समाज और संस्कृति का': अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की रपट – 1997; तथा
2. अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की रपट–1960.

लाभांश-दान देने के लिए प्रतिबद्धता विषयक प्रस्ताव पारित कराए। इससे धर्मशाला प्रशासन की वित्तीय व्यवस्था कुछ जमी और हर तिब्बती पुनर्वास क्षेत्र में 'सत्य आन्दोलन' की उपसमितियाँ गठित हुईं। इस प्रकार तिब्बती स्वाधीनता आन्दोलन को जीवित रखने का निश्चित और सराहनीय प्रयास किया गया है।

शिक्षा और संस्कृति का विस्तार

तिब्बत से आकस्मिक रूप से भारी संख्या में विद्वानों के बाह्य जगत् में आ जाने से प्राचीन भारतीय शिक्षा और संस्कति की धारा जो तिब्बत में सुरक्षित थी, का प्रचार और प्रसार सम्पूर्ण विश्व में हुआ जिससे सभी देशों को-विशेष रूप से 'विकसित' देशों को-लाभ मिला। आज विश्व में छः सौ से अधिक तिब्बती धार्मिक और शिक्षा विषयक केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। साठ से अधिक विश्वविद्यालयों में तिब्बती या बौद्ध अध्ययन और शोध विभाग खोले गए हैं। भारत में तिब्बती अध्ययन, बौद्ध अध्ययन, दर्शन तथा इतिहास विषयक अध्ययनों में पिछले तीन दशकों में एक नये युग का आरम्भ हुआ है। दलाई लामाजी के कार्यक्षेत्र का सम्पूर्ण विश्व में विस्तार हुआ है जिससे बहुजन-हित सम्पादित हुआ है। इन सबको अभिशाप में छिपा वरदान मानना चाहिए।

चीन से वार्ता

सन् 1978 के अंत से ही चीन ने दलाई लामाजी से वार्ता की इच्छा व्यक्त की और इसी संदर्भ में चार बार तिब्बती शिष्ट मंडलों ने तिब्बत और चीन की यात्राएं कीं। काफी भाग-दौड़ हुई, परन्तु उसका परिणाम आज तक कुछ भी सामने नहीं आया।

पंचसूत्रीय शान्ति योजना

चीन से की गई वार्ताओं के विफल परिणामों के उपरान्त और तिब्बत में सैनिकों और शस्त्रों के जमाव, वहाँ चीनी मूल की जनवृद्धि तथा तिब्बतवासियों के मानवधिकारों के हनन और परमाणु शस्त्रों के निर्माण-परीक्षण आदि गतिविधियों से उत्पन्न पर्यावरण के असन्तुलन आदि के तीव्र गति से प्रभावी होते जाने के क्रम को रोके जाने के उद्देश्य से दलाई लामा जी ने 21 सितम्बर, 1987 को एक पञ्चसूत्रीय शान्ति योजना अमेरिकी कांग्रेस में रखी। पुनः 1988 के 15 जून को स्ट्रासबर्ग में यूरोपीय पार्लियामेंट में तिब्बत वार्ता का आधार-प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया जिसमें तिब्बत के विदेशी और सुरक्षा के अधिकार चीन को देते हुए सम्पूर्ण तिब्बत को एक संवैधानिक स्वायत्तशासी देश बनाने की संयोजना उपनिहित है। इन दोनों प्रस्तावों को चीन के अतिरिक्त विश्व के अधिकांश देशों की जनता ने समर्थन दिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

पञ्चसूत्रीय शान्ति प्रस्ताव को अमेरिकी कांग्रेस, पश्चिम जर्मनी के पार्लियामेंट के प्रस्ताव तथा ग्रीन पार्टी आदि संगठनों के समर्थन मिले। इससे अधिक महत्त्व इसका यह है कि इस पर विश्व के जन-साधारण का आशातीत समर्थन प्राप्त हुआ जिससे समस्त तिब्बतवासियों को एक नया मनोबल मिला है।

परिवर्तन की लहर

पूर्वी यूरोप में परिवर्तन की एक शान्तिपूर्ण लहर आई जो मानव इतिहास में असाधारण है। इससे तिब्बत जैसे देश के पराधीन जन को उल्लेखनीय प्रेरणा मिली है। विशेषत: चीन में युवा छात्र-वर्ग ने शान्तिपूर्ण परिवर्तन की जो मांग की है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। जन-समूह का निर्मम संहार कर तात्कालिक रूप से उन्हें भले ही दबा दिया गया हो, परन्तु उन हजारों तरुणों का बलिदान कभी निष्फल नहीं जा सकता।

नोबेल शान्ति-पुरस्कार

1989 में परमपावन दलाई लामाजी को नोबेल शान्ति-पुरस्कार से सम्मानित किए जाने के कारण शान्ति-प्रिय विश्व के जन-समुदाय को-विशेष रूप से तिब्बतवासियों को-एक सान्त्वना और विश्वास की संप्राप्ति हुई है।

उपसंहार

उपर्युक्त तथ्यों से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि अधिकृत तिब्बती जन-समुदाय जिस प्रकार विषम परिस्थितियों में मानव के मौलिक अधिकारों से वञ्चित रह कर क्रूर यातनाओं को झेलने के लिए विवश हो गया है उससे अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में तिब्बत का प्रश्न तीव्रतर रूप से जीवन्त होकर हमारे समक्ष आ खड़ा हुआ है और उसके पक्ष में निरन्तर विवेकशील जन का समर्थन बढ़ता जा रहा है।

□

अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की रपट–1997 का सार

दमन : न्याय, समाज और संस्कृति का–I

इस रिपोर्ट में तिब्बत[1] में कानून के शासन और मानवाधिकारों की स्थिति की जांच की गई है। जांच में आत्म-निर्णय और अन्य सामूहिक अधिकारों, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों, नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों की स्थिति को भी शामिल किया गया है। यद्यपि रिपोर्ट में मध्य तिब्बत पर चीन द्वारा 1950 में किये गये अतिक्रमण से अब तक की अवधि पर चर्चा की गई है, लेकिन हाल के वर्षों की घटनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है।

रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि 1994 में तिब्बत मामलों पर तृतीय राष्ट्रीय फोरम के बाद से तिब्बत का निरंतर दमन किया जा रहा है। इस फोरम के वरिष्ठ अधिकारियों की एक गुप्त बैठक में निष्कर्ष निकाला गया कि तिब्बत की अस्थिरता का मूल कारण तिब्बतियों पर तिब्बती बौद्धधर्म के शीर्षस्थ व्यक्ति, निर्वासित दलाई लामा, के बहुत अधिक प्रभाव का होना है। और तब इस क्षेत्र के लिए एक नई रणनीति बनाई गई। फोरम ने क्षेत्र में आर्थिक विकास में गति लाने, तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र–तिबेट ओटोनामस रीजन ('टार') में चीनियों को अधिक बसाने, दलाई लामा का प्रभाव कम करने तथा विरोधियों का सफाया करने के उपायों की सिफारिश भी की। इसके फलस्वरूप धार्मिक गतिविधियों पर नियंत्रण बढ़ा दिया गया, दलाई लामा के विरुद्ध चरित्र-हनन का ऐसा महा-अभियान छेड़ा गया जो कि सांस्कृतिक क्रांति के बाद के समय में अद्वितीय था, राजनैतिक गिरफ्तारियों में वृद्धि हुई, संभावित विरोधियों पर सख्त नजर रखी गई और यहां तक कि गैर-राजनैतिक प्रदर्शनों पर भी शिकंजा कसा गया।

1996 के आरंभ से ही तिब्बत में इस दमन चक्र को और जोर से लागू किया गया, मठों की शिक्षा पद्धति में व्यापक फेरबदल किया गया और भिक्षुओं को निष्कासन की धमकी दे कर निष्ठा की शपथ पर हस्ताक्षर कराए गए, तिब्बत से आने वाली सूचनाओं पर शिकंजा कसा गया, एक वरिष्ठ धार्मिक नेता को जेल भेजा गया तथा सार्वजनिक स्थलों पर दलाई लामा का चित्र लगाने पर पाबंदी लगा दी गई। आठ वर्षीय जिस बालक को दलाई लामा ने तिब्बती बौद्ध समाज में दूसरे सबसे बड़े पद पंचेन लामा के रूप में अधिष्ठित किया, उसे नजरबंद कर लिया गया। इस दौरान चीनी नेताओं ने पारंपरिक

---

1. इस रिपोर्ट में 'तिब्बत' से अभिप्राय: 'तिब्बती जाति' के तिब्बत से है जो पूरे तिब्बती पठार को घेरे हुए है। इसमें तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र (टी ए आर) के रूप में ज्ञात क्षेत्र तथा चीन के पड़ोसी प्रांत किंगाई, सीचुआन, गांसू और युन्नान के तिब्बती-प्रवास वाले भाग भी शामिल हैं। चीन 'तिब्बत' का उपयोग केवल 'तिब्बती जाति' वाले तिब्बत से करता है जो अब टार (टी ए आर) में है।

तिब्बती संस्कृति के कुछ पहलुओं का सम्बन्ध तिब्बती राष्ट्रवाद से जोड़ते हुए उन्हें विकास में रुकावट करार दिया और उनके विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। 1997 में तो बौद्ध धर्म को विदेशी संस्कृति घोषित कर दिया गया।

मानवाधिकारों पर इस प्रकार का जुल्म और तिब्बत की संस्कृति पर किया हमला, तिब्बती लोगों के सबसे महत्वपूर्ण मूल अधिकार–आत्म निर्णय के अधिकार–के हनन के साथ हुआ। वहां विदेशी और अलोकप्रिय शासन को बनाए रखने के लिए ही चीन तिब्बती राष्ट्रवादी लोगों को कुचल रहा है और तिब्बत की संस्कृति को नष्ट कर रहा है। अनिच्छुक जनता को उपनिवेश बनाने के लिए चीन ने तिब्बत में चीनी लोगों की गतिविधियों को बढ़ावा और सुविधाएं दीं। आज वे वहां राजनीति, सुरक्षा और अर्थव्यवस्था पर कब्जा किये हुए हैं।

स्वायत्तता

चीन के संविधान और कानून के अंतर्गत तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र और अन्य स्वायत्त तिब्बती क्षेत्रों को जो आंशिक स्वायत्तता प्रदान की गई है वह बहुत सीमित है, क्योंकि अधिकतर स्थानीय सत्ता केन्द्रों के लिए केन्द्रीय अनुमोदन जरूरी होता है। तिब्बती लोग अपने मामलों की व्यवस्था भी बहुत सीमित दायरे में ही कर सकते हैं। इसका कारण है चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का केन्द्रीय प्रभुत्व तथा क्षेत्रीय और स्थानीय प्रशासन में तिब्बती लोगों को सार्थक भागीदारी से वंचित रखना। जहां तिब्बतियों के पास आंशिक सत्ता है वहां भी प्राय: अधिक शक्तिशाली चीनी अधिकारी उन पर हावी रहते हैं। प्रत्येक स्थानीय निकाय पर कम्युनिस्ट पार्टी की समिति अथवा 'नेतृत्व गुट' का दबदबा होता है, इससे वह स्वायत्त रूप में कार्य नहीं कर सकती। सेना और पुलिस में भी चीनी लोगों का प्रभुत्व है। इतिहास में प्राय: तिब्बत विभाजित होता ही रहा है, तिब्बत क्षेत्र के वर्तमान बंटवारे से भी तिब्बत के स्व-शासन को धक्का लगा है क्योंकि अधिकतर तिब्बतवासी स्वायत्त क्षेत्र के बाहर चार चीनी प्रांतों में हैं, जहां वे अल्प संख्यक हैं।

तिब्बत की पहचान और संस्कृति को खतरा

1959 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 'तिब्बत के लोगों के मौलिक मानव अधिकारों और उनकी विशिष्ट संस्कृति तथा धार्मिक जीवन के सम्मान' के लिए आह्वान किया। 1961 और 1965 में महासभा ने दुबारा तिब्बत वासियों की विशिष्ट संस्कृति और धार्मिक जीवन के दमन पर दु:ख प्रकट किया। 1991 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग के 'अल्पसंख्यक संरक्षण और भेदभाव निवारक उप-आयोग' ने उल्लेख किया कि वह मौलिक मानवाधिकारों और स्वतंत्रता पर निरंतर हो रहे आघात के फलस्वरूप तिब्बत के लोगों की विशिष्ट संस्कृति, धार्मिक और राष्ट्रीय पहचान के विरुद्ध खतरे के प्रति अब भी चिंतित है।

आज की बहुत सी चीनी नीतियां तिब्बत की पहचान और संस्कृति के विशिष्ट तत्वों को या तो लगातार नष्ट करने में लगी हैं, या खतरा बनी हुई हैं। ये नीतियां इस प्रकार हैं–

जनसंख्या स्थानांतरण

1950 से तिब्बत में भारी संख्या में चीनी आ रहे हैं। इसके पीछे मुख्य कारण हैं–चीनियों को, विशेषकर पेशेवर और संगठन के लोगों को, तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र तथा अन्दरूनी तिब्बती इलाकों में लाकर बसाने की सरकारी नीति और कार्यक्रम; सरकार द्वारा स्वैच्छिक पलायन को प्रोत्साहन; निर्माण कार्यों के लिए सामान्य श्रमिकों को तिब्बत में लाना तथा सामान्य चीनियों का जीवन-यापन और रोजी रोटी के लिए तिब्बत में आकर बसना। तिब्बत में नये चीनी कस्बे बनाये जा रहे हैं। तिब्बत के शहरी केन्द्रों को चीनी बनाया जा चुका है। पूर्वी तिब्बत में तिब्बतियों की भूमि को कृषि के लिए हथिया लिया गया है। जहां चीनी बस गये हैं, उन्होंने व्यापार पर कब्जा कर लिया है तथा समस्त विकास योजनाएं उन्हीं को केन्द्र में रख कर बनाई गयी हैं। 1994 के तृतीय कार्य फोरम ('थर्ड वर्क फोरम') ने तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में चीनियों के आवागमन तथा गतिविधियों को बढ़ाया। जो अंदाज लगाये गये हैं उनसे पता चलता है कि इस समय तिब्बत स्वायत्त स्तर के सभी क्षेत्रों में चीनियों की जनसंख्या लगभग एक तिहाई है (जबकि 1949 में यह मात्र 6 से 10 प्रतिशत थी) तथा तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में 12 से 14 प्रतिशत लोग चीनी हैं (1949 में 0.1 प्रतिशत)।

तिब्बत की सांस्कृतिक धरोहर

चीनी प्रशासन के आरंभिक वर्षों में ही मठ व्यवस्था को ध्वस्त कर तिब्बती संस्कृति के एक विशेष पहलू को नष्ट कर दिया गया। सांस्कृतिक क्रांति के दौर में भी यह कार्य जारी रहा तथा तिब्बतियों के अद्वितीय धार्मिक भवनों और स्मारकों का विध्वंस किया गया। यही नहीं, तिब्बती लोगों की व्यक्तिगत सांस्कृतिक पहचान पर भी हमले किये गये। अंत में, तिब्बत की भौतिक और प्रचलित संस्कृति का वास्तविक रूप में नाश कर दिया गया, तिब्बत के हजारों मठों में से कुछ ही बच सके। 1979 से चीन सरकार ने तिब्बत में कुछ सांस्कृतिक स्वतंत्रता की अनुमति दी है तथा बहुत से मठ आंशिक रूप से पुनः कार्य करने लगे हैं। लेकिन जिन सांस्कृतिक गतिविधियों की छूट दी गई है, वे नियंत्रित हैं और उनमें किसी प्रकार की राष्ट्रीय भावना का नामो-निशान नहीं रहने दिया गया है। 1979 से चीन के आधुनिकीकरण ने शहरी इलाकों में पारंपरिक तिब्बती धर्मनिरपेक्ष संरचना को नष्ट कर दिया है। ल्हासा में, तिब्बतियों के हजारों घरों को ध्वस्त कर दिया गया तथा समूचे आस-पड़ौस को तहस-नहस कर जमींदोज कर दिया गया है।

भाषा

शिक्षा, व्यापार और प्रशासन में चीनी भाषा के प्रभुत्व तथा विश्वव्यापी आधुनिकीकरण से तिब्बती लोग मजबूर होकर चीनी भाषा सीख रहे हैं और अपनी छोड़ रहे हैं। तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में लगभग माध्यमिक और उच्च शिक्षा की सभी कक्षाओं में सभी विषयों की पढ़ाई चीनी भाषा में होती है। यहां तक कि तिब्बती कला जैसे विषय भी चीनी भाषा में पढ़ाये जाते हैं। हाल ही में कम्युनिस्ट पार्टी के निर्णय के फलस्वरूप ऐसे कदम उठाये गये हैं जिनके अंतर्गत तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र के तिब्बती भाषा के प्रायोगिक मिडिल स्कूलों को बंद किया जा रहा है तथा साथ ही शिक्षा में तिब्बती भाषा के उपयोग को घटाया जा रहा है, क्योंकि तिब्बती भाषा तिब्बतियों को अपनी स्वाधीन अवस्था के समय के विचारों से जोड़ती है।

विकास

तिब्बत के विकास कार्यों के अन्तर्गत स्वास्थ्य, परिवहन और संचार जैसी आधुनिक प्रौद्योगिकियां तिब्बत में पहुंची तो हैं लेकिन इन सब में तिब्बतियों को प्रभावी भागेदारी से दूर रखा गया है। इससे विकास के मूलभूत तत्व का कोई अर्थ ही नहीं रहा। अधिकतर तिब्बती छोटे ग्रामीण समुदायों में रहते हैं। उनके जीवन-निर्वाह और रोजी-रोटी की समस्या को अनदेखा किया गया है। चीन के निवेश का उनको किंचित भी लाभ नहीं पहुंचा है। तिब्बती समाज पर तिब्बतियों की गरीबी, चीन के विकास के लिए तिब्बती साधनों के दोहन तथा नये शहरी क्षेत्रों में चीनी नागरिकों की बसावट से उल्टा प्रभाव पड़ा है।

पर्यावरण

चालीस वर्ष के दौरान अधिकांश तिब्बती वन्य जीवों को नष्ट कर दिया गया है। वनों को काट डाला गया है। जलागमन क्षेत्र और पहाड़ी ढलानों का विनाश किया गया है, जिसके चलते नीचे के इलाकों में बाढ़ का प्रकोप बढ़ गया है। चीन के इन कार्यों का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव चरागाह भूमि पर तथा वनों पर पड़ा है जो अभी तक पालतू एवं जंगली जानवरों के जीवन-निर्वाह के काम आता था। उसे बंजर बना दिया गया है। चरागाहों का विनाश उस चरम बिन्दु पर पहुंच गया है कि यदि इसे बचाने के उपाय नहीं किये गये तो खानाबदोश तिब्बती समाज का अस्तित्व ज्यादा देर तक बना नहीं रह पाएगा।

व्यक्ति के अधिकार

न्याय पालिका की भूमिका

तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में कार्यरत न्यायिक प्रणाली का मूलभूत लक्ष्य चीनी शासन के प्रति तिब्बतियों के विरोध को कुचलना है। वैसे तो कम्युनिस्ट पार्टी की गोद में बैठी न्यायपालिका के कारण पूरे चीन में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, लेकिन तिब्बत

का मामला और गंभीर है। इसका कारण है–तिब्बती राष्ट्रवाद के विरुद्ध चीन का निरंतर दमन अभियान। हाल ही में शुरू किये गये अपराध विरोधी अभियान 'कुचल डालो' ने न्यायपालिका को 'अलगाववाद' के विरुद्ध और अधिक अधिकार दे दिये हैं। बहुत से तिब्बतियों, विशेषकर राजनैतिक नजरबंदियों को तो न्यायिक प्रक्रिया को सुरक्षित करने वाले प्राथमिक किस्म के अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया है।

शिक्षा का अधिकार

चीन सरकार ने तिब्बती बच्चों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने के लिए बड़े कदम उठाये हैं। लेकिन तिब्बत की शिक्षा प्रणाली में चीनी बच्चों की तुलना में तिब्बती बच्चों को कमजोर स्थिति में रखा गया है। तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में मिडिल और माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम सिर्फ चीनी भाषा है। तिब्बती बच्चे कम भर्ती होते हैं और काफी संख्या में पढ़ाई अधूरी छोड़ जाते हैं। तिब्बतियों की शिक्षा के क्षेत्र में पहुंच बहुत कम है तथा तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में अशिक्षा की दर राष्ट्रीय औसत से तिगुनी है। इन तथ्यों से भेदभाव पूर्ण नीति उजागर होती है। ऐसी शिक्षा पद्धति से तिब्बती बच्चों में अपनी सांस्कृतिक पहचान, भाषा और मूल्यों के प्रति सम्मान के स्थान पर हीन भावना आती है क्योंकि वहां चीनी संस्कृति और मूल्यों का प्रभुत्व है।

आवास का अधिकार

तिब्बती बस्तियों के विनाश, उनका जबरन घरों से निष्कासन और नई आवास व्यवस्था में चीनियों को प्राथमिकता आदि ऐसे कार्य हैं जिनसे तिब्बतियों के प्रति आवास के मामले में भेदभाव और पक्षपात पूर्ण रवैये का प्रमाण मिलता है।

स्वास्थ्य का अधिकार

प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं तथा बिमारियों को रोकने वाली दवाओं के कारण तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र के लोगों के स्वास्थ्य स्तर में महत्वपूर्ण सुधार आया है। तिब्बतियों की औसत आयु काफी बढ़ी है, हालांकि यह पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाईना के सभी समुदायों में सबसे कम है। पी.री.चा. के राष्ट्रीय औसत की तुलना में तिब्बतियों में शिशु मृत्यु दर तिगुनी है। शिशुओं में कुपोषण की भी गंभीर समस्या है। प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं की महंगी और शोचनीय दशा तथा ग्रामीण स्तर पर प्रशिक्षित चिकित्सा कर्मचारियों की कमी के फलस्वरूप तिब्बतियों का स्वास्थ्य स्तर वैसा नहीं है जैसाकि होना चाहिए।

मनमानी नजरबंदियां

तिब्बतियों को काफी लंबे समय तक बगैर किसी अभियोग के नजरबंद कर दिया जाता है। तिब्बत की आजादी की शांतिपूर्ण वकालत करने या दलाई लामा के साथ

सम्बन्ध रखने पर उन्हें जेल भेजना भी निरंतर जारी है। हाल ही के वर्षों में तिब्बत के राजनैतिक बंदियों की संख्या बढ़कर 600 से अधिक हो गई है। निरंकुश रूप से लोगों को नजरबंदी बनाने पर संयुक्त राष्ट्र कार्यकारी दल ने चीन के तथाकथिक 'प्रतिक्रांतिवादी' अपराधों की आलोचना की है। उसने मांग की है कि जिन सैकड़ों तिब्बतियों को विचार और धर्म की स्वतंत्रता की अन्तर्राष्ट्रीय गारंटी का उल्लंघन करते हुए बंद किया हुआ है, उन्हें रिहा किया जाए। अधिकतर तिब्बती राजनैतिक बंदियों को शांतिपूर्ण प्रदर्शन, प्रचार सामग्री बांटने या लिखने, विदेशियों के साथ अथवा निर्वासित तिब्बत सरकार के लोगों से विचार-विमर्श करने अथवा आज़ादी समर्थक सामग्री रखने पर गिरफ्तार किया गया है। ज्ञात राजनैतिक कैदियों में एक चौथाई से एक तिहाई तक भिक्षुणियां हैं। कैदियों के बीच 1977 में चीन ने 'प्रतिक्रांतिवादी' अवधारणा के स्थान पर 'राज्य की सुरक्षा के विरुद्ध अपराध' की धारा लागू की जिसमें 'राज्य को तोड़ने' के कार्यों का विशेष तौर पर उल्लेख करते हुए एक धारा जोड़ी।

यातनाएं

तिब्बत में नजरबंदों को यातनाएं देना और उनके साथ दुर्व्यवहार करना बड़े पैमाने पर जारी है। राजनैतिक कैदियों को बिजली के झटके देना आम बात है। पुलिस थानों में गिरफ्तारी के दौरान, नजरबंदों को लाने-ले जाने के दरम्यान तथा नजरबंदी केन्द्रों और जेलों में कई तरह की यातनाएं दी जाती हैं और उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। तिब्बतियों को यातनाएं देने की लिखित विधियों में सलाखों, छड़ियों और चेन से पिटाई, नाखून उखाड़ना, शरीर के कोमल अंगों में बिजली के झटके देना, गुप्तांगों और मुंह में बिजली के विशेष यातना यंत्र घुसेड़ना, हाथों को पीठ पीछे बांध कर लटकाना, तथा ठंडे पानी से और ठंडे वातावरण में यातना देना आदि का उल्लेख है। स्त्रियों को, और खासकर भिक्षुणियों को, बहुत ही अशोभनीय और दर्दनाक प्रताड़नाएं उनके महिला होने को लक्ष्य करके दी जाती हैं। उनके वक्षस्थल और गुप्तांगों पर बिजली के डंडों से जुल्म किये जाते हैं और उनके साथ बलात्कार भी किया जाता है।

मनमाने मृत्युदंड

1987-89 में जब भारी संख्या में शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे तिब्बतियों पर गोलियां चलाई गईं और अनेकों को मौत के घाट उतार दिया गया, उसके बाद से शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने की कोई पक्की रिपोर्ट नहीं है। उत्पीड़न और लापरवाही के कथित परिणामस्वरूप हाल ही के वर्षों में तिब्बती जेलों में युवा भिक्षुणियों और राजनैतिक कैदियों की मृत्यु हुई है जिनकी संख्या निश्चित नहीं की जा सकती। तिब्बत में मृत्युदंड लागू होने पर तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र में इसका 34 बार उपयोग हुआ बताया जाता है। इन मृत्युदंडों का न्याय या उचित प्रक्रिया से कोई लेना-देना नहीं था।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

तिब्बतियों की वैचारिक स्वतंत्रता कठोरता के साथ प्रतिबंधित है। राजनैतिक राष्ट्रवाद को सहन नहीं किया जाता। नेबरहुड समितियां असहमति रखने वाले लोगों की पहचान कर उनमें 'सही विचार' भरती हैं। अपने राजनैतिक विचारों की शांतिपूर्ण अभिव्यक्ति पर तिब्बतियों को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया जाता है या उन्हें शारीरिक श्रम के काम में लगा कर 'शिक्षित' करने के लिए जेल भेज दिया जाता है। तिब्बत में आने वाली सूचनाओं और तिब्बत से बाहर जाने वाली सूचनाओं पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता है। 'कुचल डालो' ('स्ट्राईक हार्ड') नामक अपराध विरोधी अभियान के तहत हाल ही के वर्षों में प्रतिबंधों को और कठोर किया गया है। दलाई लामा के चित्रों को सार्वजनिक स्थानों पर प्रदर्शित करने तथा मठों सम्बन्धी शिक्षा देने पर प्रतिबंध है।

धार्मिक स्वतंत्रता

बौद्ध धर्म तिब्बती लोगों के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। फिर भी, तिब्बत में धार्मिक स्वतंत्रता और गतिविधियों में व्यापक हस्तक्षेप किया जाता है। मठों पर स्थानीय सरकार और दलीय संगठनों, पार्टी कार्यकर्ताओं और पुलिस की निगरानी होती है। प्रत्येक मठ का प्रशासन लोकतंत्रीय व्यवस्था समिति–'डेमोक्रेटिक मेनेजमेन्ट कमिटी'–(डी. एम. सी.) करती है।

1994 के फोरम के बाद से, जब पार्टी ने तिब्बत की अस्थिरता के मूल में दलाई लामा और 'दलाई गुट' के प्रभाव को कारण पाया, तब से तिब्बती बौद्धों पर कड़ी नजर और नियंत्रण रखा जाता है। डी एम सी पर पार्टी का प्रभुत्व बढ़ाया गया है, बिना सरकारी अनुमति के धार्मिक निर्माण नहीं किये जा सकते, किसी भी मठ में सीमित संख्या से अधिक भिक्षु व भिक्षुणियां नहीं रह सकतीं, भिक्षुओं और भिक्षुणियों को कड़ी जांच के बाद प्रवेश दिया जाता है तथा भिक्षु-भिक्षुणियों को दलाई लामा की निन्दा के लिए कहा जाता है। इन सभी नियमों का पालन सख्ती से कराया जाता है।

पंचेन लामा के नये अवतार की तलाश और चयन का उपयोग चीन सरकार ने दलाई लामा के राजनैतिक और धार्मिक प्रभाव को समाप्त करने के अपने अभियान को और तेज करने के लिए किया। चयन प्रक्रिया में शामिल वरिष्ठ भिक्षु को नजरबंद किया गया और बाद में जेल में डाल दिया गया। पंचेन लामा के मठ से 'अवांछित तत्वों' को निकाल कर मठ की 'साफ-सफाई' की गई तथा तिब्बती मतावलंबियों और धार्मिक नेताओं की निष्ठा की जांच उनसे पंचेन लामा को मान्यता देने के मामले में दलाई लामा के हस्तक्षेप की निंदा और चीनी पसंद के पंचेन लामा को स्वीकार करा कर की गई। पहले तो दलाई लामा के चित्र के सार्वजनिक प्रदर्शन पर रोक लगाई गई और बाद में इसे निजी तौर पर रखना भी प्रतिबंधित कर दिया गया।

1996 में मठों में 'देश भक्ति शिक्षा अभियान' आरंभ किया गया जो अभी भी जारी है। बड़े मठों के भिक्षुओं को 'पुनर्शिक्षित' करने हेतु गहन अभियान चलाने के लिए वहां बड़े-बड़े कार्य दल भेजे गये। इन शिक्षा कक्षाओं में भिक्षुओं से दलाई लामा की निंदा कराई जाती है। इस पुनर्शिक्षा कार्यक्रम का विरोध करने वाले सैकड़ों भिक्षुओं को मठों से निकाल दिया गया जबकि 90 ऐसे भिक्षुओं को गिरफ्तार कर लिया गया। चीनी सैनिकों ने इन मठों पर गोलाबारी भी की जिसके फलस्वरूप एक भिक्षु मारा गया और तीन घायल हुए।

एकत्र होने की स्वतंत्रता

तिब्बत में शांतिपूर्ण प्रदर्शनों को मिनटों में तितर-बितर कर दिया जाता है। इन प्रदर्शनों में भाग लेने वालों को मारा पीटा जाता है और गिरफ्तार कर लिया जाता है। यह सब कुछ आजादी समर्थक भावनाओं के प्रदर्शन को कुचलने की नीति के तहत किया जाता है।

जनसंख्या नियंत्रण

वैसे तो तिब्बतियों की जनसंख्या बहुत कम और यत्र-तत्र बसी हुई है। फिर भी, चीन सरकार ने तिब्बती महिलाओं के मातृत्व पर सीमा लगाई हुई है। हालांकि यह सीमा उतनी कठोर नहीं है, जितनी चीनी महिलाओं पर है। हर क्षेत्र के लिए यह सीमा अलग-अलग है, जिसे अनिवार्य जुर्माने, गर्भपात और नसबंदी द्वारा लागू किया जाता है। विभिन्न कानूनी अधिकारों के उल्लंघन और महिलाओं के स्वास्थ्य को गंभीर खतरों के बावजूद यह होता है। इससे 'अनाधिकृत' बच्चों को स्कूल में प्रवेश और अन्य लाभों तथा अधिकारों को प्राप्त करने में आमतौर पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

तिब्बत की कानूनी स्थिति

केन्द्रीय तिब्बत-तिब्बत का वह भाग जिसका शासन ल्हासा से संचालित था-ने 1913 से 1950 तक राज्य (स्वतंत्र देश) होने की उन शर्तों को पूरा किया जो आमतौर पर अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत स्वीकार्य हैं। 1950 में जनसंख्या, भूमि और उस भूमि पर ऐसी सरकार अस्तित्व में थी जो बगैर किसी बाहरी प्रभुत्व के अपने घरेलू मामलों का स्वतंत्रता से संचालन कर रही थी। 1913 से 1950 तक केन्द्रीय तिब्बत के विदेश सम्बन्ध मात्र तिब्बत सरकार के द्वारा संचालित थे। इस प्रकार 1951 में चीनी अतिक्रमण के समय, जब उसने चीन के समक्ष अपनी स्वतंत्रता का समर्पण करते हुए '17 सूत्री समझौते' पर हस्ताक्षर किए तो वह वास्तविक ('डी-फेक्टो') स्वतंत्र राज्य था। इस समझौते के अन्तर्गत चीन ने कई प्रकार के आश्वासन दिये जिनमें-तिब्बत की तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था को बनाए रखना, दलाई लामा के कार्य और पद को बनाये रखना, धर्म की और

मठों की स्वतंत्रता की रक्षा करना तथा उन्हें अनिवार्य 'सुधारों' के दायरे से बाहर रखना आदि शामिल थे। चीन ने इन तथा अन्य आश्वासनों का आगे चलकर खुला उल्लंघन किया। तिब्बत सरकार को इस समझौते के परित्याग का पूरा अधिकार था और उसने 1959[2] में ऐसा ही किया।

आत्म-निर्णय

तिब्बत के लोग 'विदेशी दासता की प्रजा' हैं और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत उन्हें आत्म-निर्णय का अधिकार है जिससे वे अपनी राजनैतिक स्थिति का स्वतंत्रता से निर्धारण कर सकते हैं। तिब्बती लोगों ने अभी तक इस अधिकार का उपयोग नहीं किया है, जो कि उनकी इच्छा की वास्तविक और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है।

सिफारिशें

इस रिपोर्ट की मुख्य सिफारिश तिब्बत के लोगों की इच्छा ज्ञात करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की देखरेख में जनमत संग्रह कराने की है। इस जनमत संग्रह में वोट देने का अधिकार, 1950 से पूर्व तिब्बत में रह रहे तिब्बतियों तथा अन्य लोगों और उनके उत्तराधिकारियों तथा तिब्बती शरणार्थियों और उनके उत्तराधिकारियों को है। जनमत संग्रह उन स्थानों पर कराया जाना चाहिए जहां जातिगत तिब्बती समाज के लोग ऐतिहासिक तौर पर बहुसंख्यक थे तथा जहां वे निर्वासित समुदाय के रूप में हैं। आत्म-निर्णय के इस अधिकार के उपयोग का परिणाम एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना के रूप में, एक वास्तविक स्व-शासन के रूप में, चीन के साथ तिब्बत की वर्तमान स्थिति को निरंतर रखने के रूप में या अन्य किसी ऐसी स्थिति के रूप में हो सकता है, जिसे तिब्बत की जनता स्वतंत्रता से निर्धारित करे।

इस रिपोर्ट की अन्य विशिष्ट सिफारिशें अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून पर चीन की बाध्यताओं के उल्लंघन के रूप में हैं तथा उनका यहां विस्तृत विवरण आवश्यक नहीं है। फिर भी, कुछ मुख्य सिफारिशों में निम्नलिखित शामिल हैं–

जनवादी चीन गणराज्य से सिफारिशें–

* तिब्बत के लोगों की भावना का आदर करते हुए तिब्बत समस्या के समाधान हेतु दलाई लामा और तिब्बत की निर्वासित सरकार के साथ बातचीत शुरू करना।

---

2. यह संक्षिप्त विवरण है अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की पिछली दो रिपोर्टों का–द क्वेश्चन ऑफ तिब्बत एण्ड द रूल ऑफ लॉ (जीनिवा : अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग, 1959), तिब्बत एण्ड द चाईनीज पीपुल्स रिपब्लिक, ए रिपोर्ट टू द इंटरनेशनल कमीशन ऑफ ज्यूरिस्ट्स बाय इट्स लीगल कमेटी ऑन तिब्बत (जीनिवा : अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग, 1960)। वर्तमान रिपोर्ट में इन रिपोर्टों के विश्लेषणों को नहीं दुहराया गया है, जिसकी पुष्टि अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग ने की है।

* इस रिपोर्ट में व्यक्त अतिक्रमणों को समाप्त कर यह सुनिश्चित करना कि तिब्बतियों के मौलिक मानवाधिकारों का सम्मान हो।

* तिब्बती लोगों की विशिष्ट संस्कृति, धार्मिक और राष्ट्रीय पहचान पर खतरे को समाप्त करना, विशेषकर उन नीतियों पर रोक लगाना जिनसे चीनी लोग तिब्बत क्षेत्र में जा कर बस रहे हैं।

* मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र की प्रक्रिया के साथ सहयोग करना। विशेषकर संयुक्त राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा दमन, मुकदमों, निरंकुश, मनमाने और न्याय प्रक्रिया से बाहर प्राणदण्ड, महिलाओं के प्रति हिंसा, लापता होने, मनमानी नजरबंदी तथा न्यायपालिका की स्वतंत्रता की स्थिति के आकलन के लिए उन्हें निर्बाध और अर्थपूर्ण दौरों की सुविधाएं प्रदान करना। जिन लोगों की नजरबंदी को 'निरंकुश नजरबंदी कार्यदल' (वर्किंग ग्रुप ऑन आर्बिट्रेरी डिटेंशन) ने मनमाना करार दिया हो, उन नजरबंदों और ऐसे ही अन्य कैदियों को रिहा करना। 'धार्मिक असहिष्णुता पर इस प्रक्रिया द्वारा नियुक्त विशेष सम्पर्ककर्ता' की सिफारिशों को लागू करना तथा उसे बाद में तिब्बती लोगों तक निर्बाध रूप से पहुंचते रहने के लिए अनुमति देना।

* नागरिक और राजनैतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता के दस्तावेज (इन्टरनेशनल कोवेनंट ऑन सिविल एन्ड पोलिटिकल राईट्स) और इसके ऐच्छिक प्रोटोकॉल तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता के दस्तावेज (इन्टरनेशनल कोवेनंट ऑन इकॉनामिक, सोश्यल एन्ड कल्चरल राईट्स) की बिना किसी शर्त के पुष्टि करना।

* स्वतंत्र मानवाधिकार पर्यवेक्षकों को बिना किसी बाधा के तिब्बत पहुंचने की अनुमति देना।

संयुक्त राष्ट्र महासभा से–

* तिब्बत के प्रश्न पर अपने 1959, 1961 और 1965 के संकल्पों पर विचार-विमर्श पुनः जारी करे।

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग से–

* तिब्बत में मानवाधिकारों की स्थिति की जांच के लिए विशेष सम्पर्ककर्ता नियुक्त करें जो मानवाधिकार स्थिति पर सही रपट दे।

संयुक्त राष्ट्र महासचिव से–

* अपने उच्च पद का उपयोग करके तिब्बत समस्या के शांतिपूर्ण समाधान के प्रयत्न

के लिए विशेष दूत की नियुक्ति तथा तिब्बत के लोगों की भावनाओं को जानने के लिए संयुक्त राष्ट्र की देखरेख में जनमत संग्रह सुनिश्चित करें।

अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से–

* इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों के अनुसार जब तक तिब्बत में जनमत संग्रह का आयोजन न हो, तब तक राष्ट्रों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय निकायों द्वारा तिब्बत की कानूनी स्थिति पर कोई दृष्टिकोण तय करने से दूर रहना चाहिए।

* तिब्बत के विकास के लिए दी जाने वाली सहायता का लाभ तिब्बत के लोगों को मिलना चाहिए। इसके लिए उसे परियोजना निर्माण के हर चरण में तिब्बती लोगों की भागेदारी सुनिश्चित करनी चाहिए, पर्यावरण और विकास के सम्बन्ध में तिब्बत की भावनाओं का सम्मान करना चाहिए तथा तिब्बत क्षेत्र में चीन की गतिविधियों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए।

तिब्बत की निर्वासित सरकार से–

* तिब्बत के लोगों की भावनाओं के अनुसार तिब्बत समस्या के समाधान हेतु चीन सरकार के साथ बातचीत आरंभ करे।

* तिब्बत के लोगों की इच्छा जानने के लिए तिब्बत में और निर्वासित तिब्बती समुदाय के बीच संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में होने वाले जनमत संग्रह के आयोजन में सहयोग करे।

□

अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की रपट–जिनेवा 1960
संयुक्त राष्ट्र महासचिव को

दमन : न्याय, समाज और संस्कृति का–II

'द लीगल इन्क्वायरी कमिटी ऑन तिब्बत' को तिब्बत की घटनाओं के जिन पहलुओं की जांच सौंपी गयी थी, उन पर अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग को अपनी रिपोर्ट सौंपते हुए हर्ष है। समिति निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंची है।

जाति-संहार

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा जनवरी, 1948 में मान्य जाति–संहार निवारक और दण्ड संबंधी समझौते (कनवेंशन फॉर द प्रिवेंशन एन्ड पनिशमेन्ट ऑफ जीनोसाईड) के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत जिन मानव समूहों को जाति–संहार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है वे राष्ट्रीय, जातीय, नस्लीय या 'धार्मिक समूह' हो सकते हैं। समिति ने पाया कि तिब्बतियों को धार्मिक समूह के रूप में समाप्त करने के प्रयास में, उन पर जाति–संहार के कृत्य हुए हैं और ऐसे कृत्य बगैर किसी समझौते की बाध्यता के स्वतंत्र रूप से भी, जाति–संहार के कृत्य हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार उन विधियों के समुचित प्रमाण समिति को नहीं मिले जिनसे तिब्बतियों को जाति, राष्ट्र या नस्ल के रूप में नष्ट करना प्रमाणित होता हो और उसे जाति–संहार स्थापित किया जा सके। उपलब्ध प्रमाणों से उपर्युक्त जाति–संहार के सम्बन्ध में चार मुख्य तथ्यों की स्थापना होती है–

(क) चीन तिब्बत में बौद्ध धर्म को किसी भी प्रकार की अनुमति नहीं देगा;

(ख) तिब्बत से इस धार्मिक आस्था के पूर्ण उन्मूलन के लिए चीन योजनाबद्ध रूप से कटिबद्ध है;

(ग) इस योजना के क्रियान्वयन के अन्तर्गत उन्होंने धार्मिक हस्तियों की हत्याएं की क्योंकि उनकी धार्मिक आस्था एवं धर्ममय व्यवहार से लोगों में धार्मिक भावना को प्रोत्साहन मिलता है;

(घ) उन्होंने काफी संख्या में तिब्बती बच्चों को चीन के भौतिकवादी वातावरण में जोर–जबर्दस्ती स्थानांतरित कर दिया है, ताकि उनका पालन–पोषण धार्मिक वातावरण से परे हो।

इसलिए समिति का यह निष्कर्ष है कि इस 'धार्मिक समूह' के विरुद्ध ऐसी विधियों से जाति–संहार किया गया है।

मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा ज्ञापित विश्वव्यापी मानवाधिकार घोषणा की रूपरेखा में मानवाधिकारों के सम्बन्ध में समिति ने प्रमाणों की जांच की।

समिति ने मानवाधिकार के प्रश्न पर विचार के दौरान यह माना कि आर्थिक और सामाजिक अधिकार भी नागरिक स्वतंत्रताओं की भांति मानवाधिकारों के अंग हैं। उसने पाया कि तिब्बत में चीन के कम्युनिस्ट अधिकारियों ने दोनों प्रकार के मानवाधिकारों का उल्लंघन किया है।

समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि तिब्बत में चीनी अधिकारियों ने निम्नलिखित मानवाधिकारों का उल्लंघन किया है। ये वे मानवाधिकार हैं जिन्हें समिति सभ्य राष्ट्रों की मान्यता के अनुसार मानवीय व्यवहार का सर्वसामान्य मापदंड मानती है।

धारा 3

व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, और सुरक्षा के अधिकारों का हत्या, बलात्कार और मनमानी कैद के कृत्यों से उल्लंघन किया गया।

धारा 5

तिब्बतियों के साथ व्यापक स्तर पर और बड़े पैमाने पर यातनापूर्ण और क्रूर, अमानवीय और निकृष्ट रूप से अपमानजनक व्यवहार किया गया।

धारा 9

लोगों को मनमाने ढंग से गिरफ्तार करने का तथा नजरबंद करने का दौर चलाया गया।

धारा 12

घरेलू और पारिवारिक जीवन की गोपनीयता के अधिकार का लगातार उल्लंघन किया गया, परिवार के सदस्यों का जबर्दस्ती स्थानांतरण किया गया तथा बच्चों को अपने माता-पिता के विरुद्ध भड़काया गया। माता-पिताओं की इच्छा के विरुद्ध उनके बच्चों को शैशव काल से ही छीन लिया गया।

धारा 13

तिब्बत में घूमने-फिरने, तिब्बत से बाहर जाने और तिब्बत में आने पर रोक लगाने हेतु बड़े पैमाने पर लोगों को निष्कासित किया गया।

धारा 16

विवाह करना-न करना स्वेच्छा का नियम है-

साधुओं और लामाओं का जबर्दस्ती विवाह करा कर उनकी तथा विवाह संस्था की मर्यादा पर आघात किया गया और अंकुश लगाया गया।

धारा 17

निजी संपत्ति से मनमाने रूप में वंचित न होने के अधिकार का उल्लंघन किया गया। निजी संपत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण या बिना तिब्बती लोगों की इच्छा के, नाममात्र का मुआवजा दे कर उस पर अधिकार किया गया।

धारा 18

तिब्बत में बौद्धों के विरुद्ध जाति-संहार तथा तिब्बत की धार्मिक आस्था के उन्मूलन के लिए किये गये अन्य व्यवस्थित उपायों द्वारा तिब्बतियों की अपनी अंतर की आवाज को दबाया गया तथा उनकी वैचारिक, धार्मिक और आध्यात्मिक स्वाधीनता खत्म की गई।

धारा 19

धर्म ग्रंथों को नष्ट करके, मिमांग वर्ग के सदस्यों को कारावास में डाल कर तथा सत्ता के आलोचकों को क्रूरतापूर्ण दण्ड देकर अभिव्यक्ति और विचार की स्वतंत्रता को छीना गया।

धारा 20

एकत्र होने और संघ बनाने के अधिकार का मिमांग आंदोलन के दमन और चीनियों के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा सभाओं के आयोजन पर प्रतिबंध लगा कर हनन किया गया।

धारा 21

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की अधीनता वाले बाहरी शासन को थोप कर जनतांत्रिक शासन के अधिकार का हनन किया गया।

धारा 22

व्यक्ति की गरिमा और उसके व्यक्तित्व के मुक्त विकास के लिए अपरिहार्य ऐसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का हनन किया गया। तिब्बत के आर्थिक संसाधनों का उपयोग चीन के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया। सामाजिक परिवर्तन अधिकांश तिब्बत जनों के हितों के विरुद्ध थे। प्राचीन तिब्बती संस्कृति और उसके धर्म को समूल नष्ट करने के लिए उस पर आक्रमण के प्रयास हुए।

धारा 24

काम करने की सामान्य मानवीय व्यवस्था के अधिकार का हनन किया गया तथा अत्यन्त कष्टदायक और बहुत कम पारिश्रमिक पर श्रम कराया गया।

धारा 25

तिब्बतियों को सामान्य जीवन स्तर से वंचित रखा गया तथा तिब्बत की अर्थव्यवस्था का उपयोग तिब्बत में नये बसने वाले चीनियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया।

धारा 26

तिब्बत से बाहर ले जाकर बच्चों के दिमाग में जबरदस्ती साम्यवादी विचार भरे गये। उनका इन्डोक्ट्रीनेशन किया गया तथा इस प्रकार मां-बाप को अपने बच्चों की शिक्षा का अधिकार खत्म किया गया।

धारा 27

तिब्बतवासियों को उनके अपने समाज के सांस्कृतिक जीवन में भागीदारी से रोका गया। इस संस्कृति को चीन नष्ट करने पर तुला हुआ है।

चीन का यह आरोप कि तिब्बत में चीन के प्रवेश से पूर्व तिब्बतियों को किसी प्रकार के मानवाधिकार उपलब्ध नहीं थे, तिब्बती जीवन के विषय में असत्य और भ्रामक विवरण पर आधारित पाया गया है। तिब्बती 'विद्रोहियों' के विरुद्ध बलात्कार, लूटमार और यंत्रणा के अभियोग जानबूझ कर गढ़े हुए हैं। तथा अन्य मामलों में भी अत्यन्त अविश्वसनीय कारण दिये गये हैं।

तिब्बत की स्थिति

समिति ने अपने विचार में यह पाया है कि जिस समय 1951 में शांतिपूर्ण उपायों का समझौता हुआ तिब्बत एक स्वतंत्र विधिवत-'डि-फेक्टो'-राज्य था, और तिब्बत सरकार द्वारा 1959 में इस समझौते का परित्याग भी पूरी तरह न्यायोचित था। अपने प्रमाणों की जाँच में समिति ने प्रमाणभूत दस्तावेजों, सरकारी प्रकाशनों, तथा तिब्बत के वर्तमान इतिहास का, जिन्हें जात-अनुभव है, ऐसे विद्वानों तथा अधिकारियों द्वारा तैयार किये गये दस्तावेजों का उपयोग किया। इन प्रमाणों की जाँच से पाया गया कि 1913 से 1950 तक तिब्बत की स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से मान्य स्वाधीन राज्य (स्वतंत्र देश) की थी। 1950 में तिब्बत राज्य की अपनी जनसंख्या थी, भू-भाग था और इस भू-भाग पर उनकी अपनी सरकार का शासन था जो अपने समस्त घरेलू मामलों का शासन स्वतंत्र रूप से किसी भी बाहरी दबाव के बिना चलाता था। 1913 से 1950 तक तिब्बत के सभी विदेशी

मामलों का संचालन तिब्बत सरकार द्वारा किया जाता था। जिन देशों के साथ तिब्बत के विदेश सम्बन्ध थे, वे सभी तिब्बत को स्वतंत्र देश मानते थे।

1951 में 'एग्रिमेन्ट ऑन पीसफुल मेज़र्स फॉर द लिबरेशन ऑफ तिबेत' नामक समझौते पर हस्ताक्षर करके तिब्बत ने अपनी स्वतंत्रता का समर्पण कर दिया। परिशिष्ट 2 देखें। इस समझौते के अन्तर्गत जनवादी चीन गणराज्य ने तिब्बत को कई प्रकार के वचन दिये। जिनमें तिब्बत की तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था को कायम रखना; दलाई लामा और पंचेन लामा के पदों और कार्य-व्यवहार को बनाये रखना; धर्म और मठों की स्वतंत्रता की रक्षा करना; तथा तिब्बत में सुधारवादी कदमों की अनिवार्यता से इन्हें मुक्त रखना आदि शामिल थे। समिति ने पाया कि जनवादी चीन गणराज्य ने इन सभी तथा अन्य और वचनों का उल्लंघन किया तथा तिब्बत की सरकार इस समझौते को अमान्य करार देने के योग्य थी और ऐसा उसने 11 मार्च 1959 को कर दिया।

तिब्बत की स्थिति के सम्बन्ध में पिछली जांच इस प्रश्न तक सीमित थी कि क्या तिब्बत का मामला अनिवार्य रूप में जनवादी चीन गणराज्य के घरेलू मामलों के दायरे में आता है? समिति ने यह सोच कर अपनेआप को इसी प्रश्न तक सीमित रखा। आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार तिब्बत की वास्तविक न्यायिक स्थिति क्या है इसके पारिभाषिक विश्लेषण का प्रयास आवश्यक नहीं समझा गया। समिति का सम्बन्ध 1950 के तिब्बत की स्थिति की यह जांच करना भी नहीं था कि उसकी स्वतंत्रता वास्तविक ('डी-फेक्टो') है या न्यायिक ('डी-ज्यूरी')। समिति इस बात से ही संतुष्ट रही कि तिब्बत का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र के वैधानिक दायरे में आता है जो राज्य के 'अनिवार्य घरेलू अधिकार क्षेत्र' की प्रतिबंधित परिभाषा में है।

पुरुषोत्तम त्रिकमदास, चेयरमैन
आर्टुरो ए. एलाफ्रिज
के. वेंत्सी-ऐन्शिल
एन.सी. चटर्जी
रॉल्फ क्रिस्टोफर्सन
टी एस फर्नाण्डो
आंग हुक लिम
आर. पी. मुकर्जी
एम.आर.सेनी प्रमोज

□

तिब्बत में भारत की विफलता

गिरिलाल जैन

यह निर्विवाद है कि भारत की विदेश नीति की धुरी कम्युनिस्ट चीन के साथ उसका सम्बंध ही हो सकता है। 5 अप्रैल 1959 को पं. नेहरू ने भारत के चीन के साथ सम्बन्धों को चलाने के लिए तीन निर्देशक तत्व निर्धारित किये थे। वे थे–भारत की सुरक्षा तथा क्षेत्रीय अखंडता, चीन के साथ मैत्री और तिब्बती जनता के कष्ट की चिंता। लेकिन अतीत में इनमें से दो की प्राय: उपेक्षा ही हुई है क्योंकि हमने चीन की मैत्री घोषणाओं को वैसे ही मान लिया था। भारत की सरकार ने सुरक्षा के मुख्य आधार तिब्बत को व्यवहार में छोड़ ही दिया था, उसके पहले ही जब तिब्बत की स्वतंत्रता पर गंभीर खतरा पैदा हुआ। जैसे-जैसे खतरा बढ़ा, भारत इस विश्वास की ओर बढ़ा कि चीनी तिब्बत प्रश्न को शांतिपूर्ण निपटाएंगे। एशिया में और खासकर तिब्बत में कम्युनिस्ट चीन के उद्देश्यों पर भारत ने कोई ध्यान नहीं दिया। इस तरह तिब्बत में आत्मसमर्पण की नीति से 'पंचशील' का जन्म हुआ।

चीन में (1 अक्तूबर, 1947 को) कम्युनिस्ट शासन की स्थापना के साथ, मास्को और पीकिंग के बीच सहयोग एक तय बात ही थी। इस प्रकार जो डर इस शताब्दी की शुरुआत में लार्ड कर्जन को घेरे हुए था, वह सच साबित हो गया। भारत के लिए अब यह पहले से बहुत ज्यादा आवश्यक हो गया था कि उसके और चीन-सोवियत गठबंधन के बीच तिब्बत का एक 'बफर' राज्य की तरह संरक्षण किया जाए। एव नवजात प्रजातंत्र के रूप में भारत को, जिसने सैनिक गठबंधनों से दूर रहने का निर्णय लिया था, शक्तिशाली कम्युनिस्ट राज्यों के विनाशकारी प्रभाव से सुरक्षा चाहिए थी। अत: अपने बूते की हरेक संभव कोशिश से तिब्बत की स्वतंत्रता की रक्षा भारत सरकार के लिए मानो परम धर्म का विषय होना चाहिए था।

गिरिलाल जैन, 'पंचशील एण्ड आफ्टर', एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 1960 से साभार।

यह विवाद का विषय नहीं है कि चीनी सैनिकों को पीछे धकेल सकने की क्षमता भारतीय सेना के पास नहीं थी–जब उन्होंने तिब्बत में घुसना प्रारंभ कर दिया। उसी समय कश्मीर में पंद्रह महीनों की लड़ाई के बाद 1 जनवरी, 1949 को पाकिस्तान के साथ युद्ध-विराम संधि पर हस्ताक्षर हुए थे। देश की सामान्य आंतरिक स्थिति भी बिगड़ी हुई थी। देश की कमजोर स्थिति दर्शाने वाले इन कुछ कारकों के बावजूद यह सच है कि उस समय चीनी खतरे की प्रकृति और आकार का पर्याप्त आकलन नहीं किया गया था।

चीनी कम्युनिस्टों ने भारत के प्रति अपनी दुश्मनी और तिब्बत को हड़पने के अपने इरादों के बारे में भारत को संदेह में नहीं रखा था। फिर भी, भारत सरकार ने बहुत ही ढुलमुल और अटक-अटक कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। यदि तिब्बत चीन के कब्जे में चला जाता है तो उस स्थिति में अपनी हिमालय सीमा को सुरक्षित करने

स्टालिन ने नेहरू की इस सोच को बढ़ावा दिया कि कोरिया में युद्ध का शांतिपूर्ण समझौता कराने के लिए वही सबसे उपयुक्त है। यहाँ से भारतीय विदेश नीति में आत्म-छलना की शुरूआत हुई। 'शांतिनिर्माता' की नई-नई भूमिका के नये-नये उल्लास में भारतीय नेताओं ने तिब्बत की घटनाओं की उपेक्षा कर दी। नई दिल्ली ने इस संभावना के बारे में सोचा ही नहीं कि कोरिया में युद्ध और तिब्बत पर प्रस्तावित आक्रमण अन्य एशियाई भू-भागों में कम्युनिज्म फैलाने की सोची-समझी साजिश का भी हिस्सा हो सकती है।

की चिंता से भारत सरकार ने सीमा पार के राज्यों–भूटान, सिक्किम और नेपाल से नई संधियां कीं। साथ ही नेपाल में राणा शाही के शासन के उदारीकरण के लिए भी प्रयास किए। इससे स्पष्ट है कि इस प्रारम्भिक अवस्था में ही सुरक्षा व्यवस्था की रक्षक दीवार (तिब्बत) चीन को कमोबेश लिख देने का निर्णय दिल्ली में लिया जा चुका था।

चीन में कम्युनिस्ट शासन की स्थापना के बाद ही राष्ट्रपति ट्रूमैन के आमंत्रण पर पंडित नेहरू ने अमेरिका की यात्रा की। यह संदेहास्पद है कि पंडित नेहरू ने बातचीत में अपनी तरफ से उन खतरों और सुरक्षा समस्याओं का जिक्र तक भी किया या नहीं जो भारत के सामने तिब्बत पर चीन के अधिकार के बाद आने वाले थे। उस समय अमेरिकी प्रेस ऐसी रिपोर्ट और अग्रलेखों से भरी पड़ी थी जिसमें एशिया में प्रजातंत्र के रक्षक के रूप में भारत के महत्त्व की चर्चा की जा रही थी। यह विवाद का विषय है कि एशिया में कम्युनिस्टों के लिए भारत के रूप में चेतावनी खड़ी करने की अमेरिकी नीति इच्छित उद्देश्य के उपयुक्त थी या नहीं। अमेरिकी स्थिति की कमजोरियां

जैसे, सैनिक तरीके पर उसका अत्यधिक जोर तथा चीन को मान्यता देने में उसकी अनिच्छा आदि की चर्चा तो बराबर की जाती है लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि भारत ने कोई स्पष्ट, सुविचारित वैकल्पिक नीति पेश ही नहीं की। नेहरूजी ने एशिया में राष्ट्रवादी उभार और चीन की कम्युनिस्ट क्रांति का लगभग घालमेल कर दिया। यदि कुछ हुआ तो वह यह कि भारत और अमेरिका के बीच इस दौरे के बाद संबंध और कड़वे हो गए।

जैसा कि होना ही था, तिब्बत के ऊपर खतरा बढ़ता गया। जनवरी 1950 की शुरुआत में, भारत द्वारा नयी चीनी सरकार को मान्यता देने के कुछ ही दिनों के अंदर वहाँ के उपसभापति मार्शल चू तेह ने 'तिब्बत को मुक्त कराने' की योजना की घोषणा कर दी। मार्च 1950 में चीनियों ने ल्हासा के प्राचीन, पारम्परिक द्वार ताचिएनलू को अपने कब्जे में कर लिया। कई हजार मजदूरों को तिब्बत जाने वाली सड़कों की मरम्मत पर लगा दिया गया। सीमा पर चीन की आधुनिक हथियारों से सुसज्जित विशाल सेना और छोटी, अप्रशिक्षित और मामूली हथियारों के साथ तिब्बती टुकड़ियों के बीच, जिसका नेतृत्व युद्ध से बिल्कुल अनजान अफसर कर रहे थे, झड़पें होने लगीं। मई 1950 में पीकिंग रेडियो ने दलाई लामा को 'तिब्बत की शांतिपूर्ण मुक्ति' को स्वीकार कर लेने को कहा। आखिरकार जून, 1950 में खुद माओत्सेतुंग ने तिब्बत पर किये जाने वाले आक्रमण की स्पष्ट घोषणा की।

तिब्बत की सीमाओं पर चीनी सेना के भारी जमावड़े के बावजूद पीकिंग सरकार के आश्वासनों पर भारत सरकार अपने आप को छलती रही कि चीन तिब्बत मामले को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करेगा। कम्युनिस्ट हथकंडों से वाकिफ और चीन-तिब्बत सम्बन्धों की थोड़ी सी भी जानकारी रखने वाले व्यक्ति के लिए यह बिल्कुल स्पष्ट था कि पीकिंग तिब्बतियों को दो में से एक विकल्प चुनने के लिए मजबूर कर रहा है–या तो सैनिक आक्रमण द्वारा चीनी आधिपत्य या शांतिपूर्वक समर्पण। यह विचारणीय है कि यदि नई दिल्ली ने चीनी शासकों को स्पष्ट बता दिया होता कि तिब्बत और चीन के बीच स्थित सम्बन्धों को बदलने का कोई ठोस कारण नहीं है, तो क्या होता ? उस समय और उसके बाद भी भारत सरकार ने बड़ी झिझक से स्वीकार किया कि उत्तर में देश की सुरक्षा तिब्बत की स्वतंत्रता नहीं तो, कम से कम स्वशासी देश के रूप में उसके बचे रहने से भी जुड़ी हुई है।

जून में कोरिया का युद्ध शुरू हुआ। शुरू-शुरू में भारत ने इसी दृष्टिकोण का समर्थन किया कि उत्तर कोरिया आक्रमणकारी था। लेकिन शीघ्र ही नेहरू ने अपने विचार बदल लिए और उन्होंने अपने तथा अपने देश के लिए मध्यस्थ की भूमिका चुन ली। चूंकि यह स्पष्ट था कि उत्तर कोरियाई सरकार ने पीकिंग और मास्को की सहमति से ही यह आक्रमण किया था, नई दिल्ली को (मध्यस्थ होने के योग्य) विश्वास जीतने के लिए अंतर्राष्ट्रीय

कम्युनिज्म के इन नेताओं से संपर्क बढ़ाने पड़े। स्टालिन ने नेहरू की इस सोच को बढ़ावा दिया कि कोरिया में युद्ध का शांतिपूर्ण समझौता कराने के लिए वही सबसे उपयुक्त है। यहाँ से भारतीय विदेश नीति में आत्म-छलना की शुरूआत हुई। 'शांतिनिर्माता' की नई-नई भूमिका के नये-नये उल्लास में भारतीय नेताओं ने तिब्बत की घटनाओं की उपेक्षा कर दी। नई दिल्ली ने इस संभावना के बारे में सोचा ही नहीं कि कोरिया में युद्ध और तिब्बत पर प्रस्तावित आक्रमण अन्य एशियाई भू-भागों में कम्युनिज्म फैलाने की सोची-समझी साजिश का भी हिस्सा हो सकती है।

अब तक तिब्बती नेताओं की बाहर से समर्थन पाने की सारी उम्मीदें टूट चुकी थीं। भारत, जिसे सबसे ज्यादा चिन्ता होनी चाहिए थी, के द्वारा तिब्बत के समर्थन में सहमति जुटाने के किसी भी सक्रिय प्रयास के अभाव में विश्व की बड़ी शक्तियों ने भी इस अभागे राष्ट्र से मुंह फेर लेना ही ज्यादा सुविधाजनक समझा। तिब्बती नेता जानते थे कि चीन के साथ सैनिक संघर्ष में उनके बच पाने की कोई संभावना नहीं है। एक तिब्बती प्रतिनिधिमंडल ने, जो उस समय भारत में था, बातचीत द्वारा समझौते की कोशिश के लिए भारत में नये चीनी राजदूत से वार्ता आरंभ की। इस प्रतिनिधिमंडल के पीकिंग जाने में कई कारणों से देर हुई। इस बीच 7 अक्टूबर, 1950 को चीनियों ने तिब्बत पर पूरी ताकत के साथ आक्रमण कर दिया। तिब्बती मौसम के अभ्यस्त हो चुके चालीस हजार चीनी सैनिकों ने उस दिन पूर्वी सीमा पार की। 25 अक्टूबर, 1950 के पहले भारत सरकार को यह जानकारी ही नहीं थी कि तिब्बत पर आक्रमण भी किया गया है, और उसे पता भी चला तो पीकिंग रेडियो की आधिकारिक घोषणा से ही। चीनी सेनाएं तब तक ल्हासा के रास्ते पर चमदो और लोदजोंग पर कब्जा कर चुकी थीं।

लगता है कि अक्टूबर, 1950 के दूसरे हफ्ते तक भारत सरकार को यह महसूस होने लगा था कि तिब्बत पर आक्रमण शीघ्र ही होगा। यही कारण था कि इसने 21 अक्टूबर, 1950 को पीकिंग से संपर्क किया। लेकिन इस संपर्क में सरकार के द्वारा सबसे कमजोर रास्ता अपनाया गया। इसने कहा कि तिब्बत में सैनिक कार्रवाई संयुक्त राष्ट्र में चीन के प्रवेश की संभावना को प्रभावित करेगी। इसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि तिब्बत मुद्दे का निपटारा चीन का आंतरिक मामला है। इसके अनुसार, ''वे (भारत सरकार) महसूस करते हैं कि इस समय किसी भी असावधान कारवाई का उपयोग, भले ही यह कारवाई इसके (चीन के) अपने क्षेत्र में हो, सामान्यत: तटस्थ राष्ट्रों के सामने तथा संयुक्त राष्ट्र में चीन के प्रवेश को रोकने में किया जा सकता है।'' यह तर्क ब्रिटिश नीति और शिमला सम्मेलन की नीतियों से दूर होता दिख रहा था। ब्रिटिश सरकार ने यह कभी नहीं माना था कि चीन को किसी भी विवाद को सुलझाने के लिए तिब्बत में सेना भेजने का अधिकार है। और बाहरी तिब्बत पर चीन का अधिपत्य तो केवल नाम का था।

भारत सरकार ने अपनी टिप्पणी में कहा था कि उसे यह पूर्ण विश्वास है कि चीन का संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश 'शांतिपूर्ण वातावरण की पुनर्स्थापना' के लिए जरूरी है। यदि ऐसा था तो चीन के पास भारत के प्रति कृतज्ञता महसूस करने का कोई कारण नहीं था, जो संयुक्त राष्ट्र में उसके प्रवेश की वकालत कर रहा था। चीन द्वारा कोरिया में संयुक्त राष्ट्र की सेना से युद्ध करने का निर्णय 1 नवम्बर को सार्वजनिक हो चुका था। तब तक कोरिया में चीन की मिली-भगत जगजाहिर हो चुकी थी। स्पष्टत: इस स्थिति में चीन संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश के लिए बहुत चिंतित नहीं हो सकता था। भारत तब तक कोरिया में चीन के इरादों के बारे में जान चुका था।

आक्रमण के संबंध में जानकारी मिलने पर भारत सरकार ने 26 अक्टूबर को फिर एक पत्र पीकिंग भेजा। जिसमें कहा गया था, ''हमें लगातार चीनी सरकार की इच्छा के बारे में आश्वासन मिलते रहे कि वह तिब्बत समस्या का बातचीत द्वारा और शांतिपूर्ण निदान चाहता है''। 25 अक्टूबर को शांतिपूर्ण समाधान की बातचीत के लिए तिब्बती प्रतिनिधिमंडल चीन के लिए जा चुका था। ''इन तथ्यों के आलोक में तिब्बत में चीनी सेनाओं को आगे बढ़ने का आदेश देना, हमारे लिए बहुत आश्चर्यजनक और खेदपूर्ण है।''

भारत सरकार ने अपने पत्र में उन परिस्थितियों का जिक्र किया था, जिससे तिब्बती प्रतिनिधिमंडल को पीकिंग जाने में विलंब हुआ था। विलम्ब का पहला कारण हांगकांग से वीसा का नहीं पहुंचना था। दूसरा कारण स्वयं चीन का यह कहना कि प्रारंभिक बातचीत चीनी राजदूत और तिब्बती प्रतिनिधिमंडल के बीच दिल्ली में ही हो। और आखिरकार, तिब्बतियों को दूसरी सरकारों से बातचीत करने का कोई अनुभव नहीं था, इसलिए उन्हें अपनी सरकार से बार-बार निर्देश लेने पड़े और फिर सरकार को विधान सभा से संपर्क करना पड़ता था। भारत सरकार ने इस संभावना से इंकार किया कि दिल्ली में चीन विरोधी विदेशी शक्तियों ने प्रतिनिधिमंडल के प्रस्थान में व्यवधान डाला। भाषा पहले संपर्क से कुछ अवश्य कठोर थी, लेकिन फिर भी इस बात का संकेत नहीं देती थी कि भारत तिब्बत की स्वतंत्रता के मुद्दे को उठाने के लिए तैयार है। यही कहानी 1959 में भी दुहराई गई।

30 अक्टूबर के भेजे गए चीनी जवाब ने इसमें संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी कि कम्युनिस्ट शासकों ने किसी भी समय भारत सरकार की सदिच्छाओं को स्वीकार नहीं किया था। चीन का कहना था ''यह पूरी तरह से चीन का घरेलू मामला है। चीनी जनमुक्ति वाहनी (पिपुल्स लिबरेशन आर्मी) को तिब्बती लोगों को आजाद कराने और अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए तिब्बत में प्रवेश करना ही चाहिए।'' चीन की सीमाओं की सुरक्षा की आवश्यकता तभी हो सकती थी जब भारत पर संदेह किया जा रहा हो। भारत सरकार के स्पष्टीकरण के बावजूद इसमें आरोप लगाया गया था कि तिब्बती

प्रतिनिधिमंडल को नई दिल्ली में रोकने के लिए विदेशी साजिश जिम्मेवार थी। साफतौर पर यह आरोप भारत को ही लक्ष्य कर लगाया गया था। इसमें चेतावनी भी दी गई थी–''तिब्बत में कोई भी विदेशी प्रभाव सहन नहीं किया जायेगा।'' पीकिंग को संयुक्त राष्ट्र में चीन के प्रवेश पर भारत के तर्क को ध्वस्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि इसमें और तिब्बत मुद्दे के बीच कोई संबंध नहीं है।

भारत सरकार के मित्रता संबंधी सभी भ्रम तोड़ते हुए, चीनी सरकार ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया, ''अत: तिब्बत के बारे में भारत के दृष्टिकोण को चीनी जनवादी गणतंत्र की सरकार और कुछ नहीं समझ सकती सिवाय इसके कि यह तिब्बत में चीन की शत्रु विदेशी ताकतों से प्रभावित है, और इसके लिए चीन को गहरा खेद है।'' **यह एक छिपा तरीका था यह कहने का कि भारत अब भी साम्राज्यवादी शक्तियों से प्रभावित और अभी भी उनका एक उपनिवेश ही है। पीकिंग रेडियो द्वारा लगाये गये इस आरोप को कि ''पंडित नेहरु ब्रिटिश साम्राज्यवाद का एक दौड़ता कुत्ता है'' को भी इसी संदर्भ में लिया जाना चाहिए।**

भारत सरकार ने इन बातों पर तीखी प्रतिक्रिया जाहिर की और 1 नवम्बर, 1950 के अपने पत्र में इन पर विरोध व्यक्त किया। इसमें कहा गया था कि भारत की नीतियां स्वतंत्र हैं और ''केवल अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण हल, और किसी भी ऐसी स्थिति को दूर करने की ओर लक्षित हैं जो विश्व में तनाव बढ़ाती हैं।'' इसने इस बात से दृढ़तापूर्वक इंकार किया कि तिब्बती प्रतिनिधिमंडल भारत में किसी विदेशी प्रभाव द्वारा रोका गया था। इसमें यह भी कहा गया ''हमारी हस्तक्षेप करने या लाभ पाने की कोई इच्छा नहीं है। भारत सरकार गंभीरता से सिर्फ यह चाहती थी कि तिब्बत समस्या का हल शांतिपूर्ण बातचीत से हो–चीनी अधिपत्य में तिब्बतियों के स्वशासन के जायज हक को ध्यान में रखते हुए। भारत सरकार की बार-बार दुहराई गई यह सलाह, कि तिब्बत पर चीनी अधिपत्य और तिब्बती स्वशासन का मेल शान्तिपूर्ण बातचीत से हो, चीन के आंतरिक मामलों में भारत का अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं है जैसा कि चीनी सरकार कहती है। यह मात्र एक दोस्ताना सरकार की सही सलाह थी, जिसे अपने पड़ोसियों की समस्याओं के शांतिपूर्ण हल में स्वाभाविक रुचि है।'' इस पत्र में इस बात पर जोर दिया गया कि ''तिब्बतियों पर किसी भी अशांतिपूर्ण तरीके को बढ़ावा देने या अपनाने का कोई आरोप नहीं है इसलिए उनके विरुद्ध ऐसी किसी भी सैनिक कार्रवाई का कोई औचित्य नहीं है। अपना निर्णय बलपूर्वक मनवाने के इस कदम से शांतिपूर्ण समझौते द्वारा समस्या का हल करने का कोई तालमेल नहीं बिठाया जा सकता।'' पत्र में यह भी कहा गया–''भारत सरकार ने यह बार-बार स्पष्ट किया कि तिब्बत में उसकी न तो राजनीतिक या क्षेत्रीय आकांक्षा है न ही अन्य किसी लाभ की चाह है। लेकिन कुछ ऐसे अधिकार परम्परा और समझौतों से स्वत: बन गए हैं जो कि नजदीकी सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध रखने वाले पड़ोसियों के बीच होना स्वाभाविक है।'' इसने अपनी चीन से मित्रता की नीति पर

फिर से जोर दिया और चिंता व्यक्त की कि ''तिब्बत में हाल की घटनाओं ने इस मैत्री संबंध के साथ-साथ पूरे विश्व में शांति के हितों को भी प्रभावित किया है।''

पत्र का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर पता चलता है कि यह विरोधाभासों से भरा पड़ा है। यदि तिब्बतियों ने कोई बढ़ावा नहीं दिया और वे स्वशासन के अधिकारी थे ही, तो फिर पीकिंग और उनके बीच शान्तिपूर्ण या किसी भी तरह के नये समझौते या समाधान का प्रश्न ही नहीं उठता था और यदि भारत के पास कुछ अधिकार व्यवहार और समझौतों से मिले हुए थे, तो उसे पूरा अधिकार था कि वह उनका बचाव करे। उसी प्रकार, भारत सरकार चीन के साथ अपनी मित्रता की नीति पर कायम रहने और चीन द्वारा तिब्बत पर अपना निर्णय बलपूर्वक लादने के तथ्य का ताल-मेल नहीं बिठा सकती थी। पत्र का सामान्य स्वर विरोधाभासों से भरा था। बिना किसी उकसावे के आक्रमण के भुक्तभोगी की मदद की इच्छा का कोई स्वर उसमें नहीं था। भारत अपने पलायन को साहस भरे शब्दों की मोटी दीवार से ढंकने की कोशिश कर रहा था।

चीनियों ने इस पत्र का जवाब देने में पंद्रह दिन लगाये। 16 नवम्बर, 1950 को दिये गए अपने जवाब में चीन ने भारत की कड़ी आलोचना की। उसने इस दावे को दुहराया कि तिब्बत चूंकि चीन का एक अंग है, यह चीन का घरेलू मामला है। इस पत्र में यह भी कहा गया, ''चीनी लोक राजनीतिक विचार कांफ्रेस के अनुसार देश के अंदर राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों को दी गई स्वायत्तता, चीनी प्रभुसत्ता की सीमाओं के अंदर है। इस तथ्य को भारत सरकार द्वारा इस वर्ष 26 अक्टूबर को भेजे स्मरण पत्र में भी माना गया है। पर जब चीनी सरकार ने वास्तव में अपने सार्वभौमिक अधिकारों का प्रयोग किया और तिब्बत की क्षेत्रीय स्वायत्तता तथा धार्मिक स्वतंत्रता निश्चित करने तथा बाहरी आक्रमणों से सुरक्षा के लिए विदेशी ताकतों और प्रभावों को बाहर निकालना शुरू कर तिब्बती लोगों को मुक्त कराना शुरू किया तो भारत सरकार ने चीनी सरकार के तिब्बत में अपने सार्वभौमिक अधिकारों के प्रयोग को रोकने और प्रभावित करने की कोशिश की।'' इस आरोप को कि तिब्बती प्रतिनिधिमंडल के पीकिंग प्रस्थान को रोकने की कोशिश की गई थी, फिर दुहराया गया। चीनी इससे और अधिक स्पष्ट नहीं कह सकते थे कि वे तिब्बत की स्वायत्तता को क्या समझते थे। तिब्बत की स्वायत्तता को वर्तमान स्थिति या ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नहीं होना था। इसे चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सामान्य कार्यक्रम में तय की गई शर्तों तक सीमित रहना था और अंत में समाप्त हो जाना था।

चीनी पत्र के अनुसार, ''31 अगस्त 1950 को चीनी विदेश मंत्रालय ने भारत सरकार को उसके पीकिंग स्थित राजदूत पनिक्कर के माध्यम से जानकारी दे दी थी कि चीनी जनमुक्ति सेना शीघ्र ही पश्चिमी सिनकियांग में निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कारवाई करने जा रही है और आशा जाहिर की थी कि भारत सरकार तिब्बत के स्थानीय आधिकारिक प्रतिनिधि मंडल को मध्य सितम्बर में शांति समझौतों पर बातचीत करने के

लिए पीकिंग आने में मदद करेगी।'' इसमें और पहले के चीनी पत्र में कहा गया था कि स्थानीय तिब्बत सरकार समस्या को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाना चाहे अथवा नहीं, परन्तु किसी भी विदेशी हस्तक्षेप की इजाजत नहीं दी जायेगी।

नवम्बर 1950 के अन्त में भारत सरकार के एक प्रवक्ता ने कहा कि 26 अगस्त, 1950 के भारतीय स्मार-पत्र *(aide memoire)* में 'चीनी संप्रभुता के अन्तर्गत स्वायत्तता' का अर्थ 'चीनी अधिपत्य के ढांचे के अन्तर्गत स्वायत्तता' के अलावा कुछ नहीं था। स्पष्टत: यह एक बेकार और अमान्य स्थिति थी। **उस स्मार पत्र में 'अधिपत्य' शब्द के स्थान पर 'संप्रभुता' के उपयोग के लिए कौन जिम्मेदार था, इसका स्पष्टीकरण कभी आधिकारिक रूप से नहीं किया गया। लेकिन श्री पनिक्कर पीकिंग में भारत का प्रतिनिधित्व करते रहे। उन्हें एक सफल राजदूत माना गया था, शायद इसलिए कि वे कोरिया से संबंधित मुद्दे पर चीन के विश्वासपात्र हो गए थे।** *

16 नवम्बर, 1950 के चीनी पत्र के बाद, जहाँ तक तिब्बत का सवाल था, भारत चुप्पी साध गया। 25 नवम्बर, 1959 को संसद में पं. नेहरू के भाषण से ऐसा लगता है कि 1951 में चीनी प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई से तिब्बत में भारतीय हितों के संरक्षण के संबंध में उन्हें कुछ आश्वासन मिले थे। लेकिन इसमें अब कोई संदेह नहीं रह गया था कि भारत की इच्छा तिब्बतियों को उनकी स्वतंत्रता की रक्षा में मदद करने की नहीं थी।

तिब्बती समर्थन के लिए संयुक्त राष्ट्र के पास पहुंचे। 7 नवंबर, 1950 को कलिम्पोंग में तिब्बती प्रतिनिधिमंडल ने ल्हासा से निर्देश प्राप्त होने पर संयुक्त राष्ट्र महासभा के अध्यक्ष को यह शिकायत करते हुए एक तार भेजा कि-''तिब्बत में सैनिक घुसपैठ उसे चीनी कम्युनिज्म के शिकंजे में बलपूर्वक शामिल करने के लिए आक्रमण का एक स्पष्ट मामला है'' इस शिकायत ने इस दावे को खारिज कर दिया कि तिब्बत हमेशा से चीन का एक हिस्सा रहा है।

सभी बड़ी शक्तियां तिब्बती शिकायत पर चुप सी थीं। अल सल्वाडोर, एक छोटे से लातिन-अमेरिकी देश ने यह अनुरोध किया कि इस मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र की महासभा के विचारार्थ रखा जाय। ब्रिटिश प्रतिनिधि ने संचालन समिति को, जिसे यह निर्णय करना था कि मुद्दे को महासभा में बहस के लिए पेश किया जाय या नहीं, कहा कि तिब्बत की वैधानिक स्थिति स्पष्ट नहीं है। और यह भी कि वहाँ घट रही घटनाओं के बारे में जानकारी नहीं है। इसलिए उन्होंने प्रस्ताव रखा कि इस शिकायत पर निर्णय स्थगित रखा जाय। यह पता नहीं कि वैधानिक स्थिति अपनाने का यह ब्रिटिश निर्णय कितना हांगकांग पर अपना नियंत्रण बनाए रखने और कितना भारत सरकार को एक फूहड़ स्थिति में न डालने की इच्छा से प्रेरित था।

---

* पनिक्कर के विषय में सरदार पटेल की टिप्पणी देखें परिशिष्ट-3

भारतीय प्रतिनिधि ने ब्रिटिश दृष्टिकोण का समर्थन किया। उसने 25 नवंबर 1950 को कहा, ''पीकिंग सरकार ने भारत सरकार को भेजे गये सबसे हाल के पत्र में कहा है कि उन्होंने समस्या के शांतिपूर्ण हल की इच्छा को खत्म नहीं किया है।'' इस बयान को एक सनक के अलावा और क्या कहा जा सकता है। निस्संदेह भारत ने तिब्बत चीन को दान कर दिया था। रूसी प्रतिनिधि ने भी ब्रिटिश प्रस्ताव का समर्थन किया और चीनी दावे का भी कि तिब्बत चीन का घरेलू मामला है और संयुक्त राष्ट्र को इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। राष्ट्रवादी (ताइवान के) चीनी प्रतिनिधि ने दावा किया कि तिब्बत कई सौ वर्षों से चीन का भाग रहा है।

कलिम्पोंग से तिब्बती प्रतिनिधिमंडल ने संयुक्त राष्ट्र को कई अधीर संदेश भेजे। यह जानते हुए कि चीनी सेना का विरोध करने की कोई भी कार्यवाही बेकार है और कहीं से कोई कूटनीतिक समर्थन तक मिलने की आशा नहीं है, दलाई लामा ने अपने मंत्रियों की सलाह पर 1 दिसम्बर को ल्हासा छोड़ दिया। 16 दिसम्बर, 1950 को वे ग्यानत्से पहुंचे और वहाँ से वे भारतीय सीमा पर यातुंग की तरफ बढ़े। प्रत्यक्ष रूप से तिब्बती नेताओं और मंत्रियों ने स्थिति का पुनर्निरीक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला कि उनके पास कोई उपाय नहीं है सिवा इसके कि चीन से ही कुछ रियायत की बात की जाय। उन्होंने पीकिंग से वार्ता शुरू करने का निर्णय लिया। अप्रैल 1951 के अंत में एक तिब्बती प्रतिनिधिमंडल पीकिंग पहुंचा। 23 मई, 1951 को 17 सूत्री समझौते पर दस्तखत हो गये।

यह तिब्बत-चीन समझौता एक मजबूरी थी, जिसने दोनों में से किसी पक्ष को संतुष्ट नहीं किया। तिब्बतियों ने समझौते पर बाध्य होकर हस्ताक्षर किये थे, एक निरुपाय, निःशस्त्र देश के रूप में, जिसके पास बाहरी विश्व से समर्थन की कोई आशा नहीं थी, उन्हें समर्पण और संपूर्ण विनाश के बीच ही कुछ चुनना था। दूसरी तरफ चीनी शासकों ने तिब्बती भावनाओं और संवेदनाओं पर कुछ रियायतें दे दीं, जो उनकी दूरगामी योजना का एक हिस्सा था। उन्हें विश्वास था कि कुछ समय में वे तिब्बती लोगों को तोड़ने और उनके विरोध को खत्म करने में सफल हो जायेंगे। कोरियाई युद्ध में शामिल होने के बाद चीन के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह तिब्बत मामले को जल्द शांत करने की कोशिश करे। उस समय चीन का वास्तविक उद्देश्य था तिब्बत पर कब्जा सुनिश्चित कर भारतीय सीमा पर अपने सैनिक तैनात कर देना। इस समझौते से ये दोनों उद्देश्य पूरे होते थे।

परिशिष्ट-2 तथा उसका फुटनोट देखें। इस संदर्भ में प्रो. साम दोंग रिंपोछे के लेख ''तिब्बत की वर्तमान स्थिति'' में ''तथाकथित सत्रह-सूत्रीय समझौता'' देखें।-सं.

कम्युनिस्टों के रूप में, जो प्रशासन की सबसे केन्द्रीकृत प्रणाली में विश्वास रखते हैं और 'जनता की अफीम' मानते हुए धर्म का तिरस्कार करते हैं, चीनी शासक इसके प्रति ईमानदार नहीं हो सकते थे कि ''केन्द्रीय सत्ता तिब्बत में वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को नहीं बदलेगी। केन्द्रीय सत्ता दलाई लामा के मान्य पद, कार्य और शक्तियों को भी नहीं बदलेगी। विभिन्न पदों के पदाधिकारी पहले की तरह कार्य करते रहेंगे'' (धारा-4)। इसी प्रकार वे अपने मार्क्सवादी विश्वास में झूठे ही होते यदि वे धारा-7 और धारा-11 के प्रावधानों को सचमुच लागू करना चाहते। धारा-7 में कहा गया था ''तिब्बती जनता के धार्मिक विश्वासों, परम्पराओं और आदतों का आदर किया जायेगा और लामा मठों को सुरक्षित रखा जाएगा। केन्द्रीय सत्ता मठों की आमदनी में कोई बदलाव नहीं लायेगी।''

धारा-11 के अनुसार-''तिब्बत में विभिन्न सुधारों से जुड़े प्रश्नों पर केन्द्रीय सत्ता की ओर से कोई जबरदस्ती नहीं होगी। तिब्बत की स्थानीय सरकार खुद ही सुधार कार्यक्रम चलाएगी और जब तिब्बती जनता स्वयं सुधारों के लिए मांग करेगी, उन्हें तिब्बत के नेताओं से बातचीत करके तय किया जायेगा।''

चीनी दृष्टिकोण से, समझौते के मुख्य बिन्दु वे थे जो तिब्बत पर चीन के अधिकार को निश्चित करते थे। इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण धाराओं में कहा गया था-

(1) तिब्बती जनता एक होकर तिब्बत से साम्राज्यवादी आक्रामक शक्तियों को बाहर निकाल फेंकेगी और मातृभूमि जनवादी चीनी गणतंत्र के बड़े परिवार में लौट आयेगी। (धारा-1)

(2) तिब्बत की स्थानीय सरकार जन-मुक्ति सेना के तिब्बत में प्रवेश करने और राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत करने में सक्रिय सहयोग करेगी। (धारा-2)

(3) तिब्बती सैन्य टुकड़ियों को विभिन्न चरणों में जनमुक्ति सेना में शामिल कर उन्हें चीनी जनवादी गणतंत्र के राष्ट्रीय सुरक्षा बल का हिस्सा बनाया जायेगा। (धारा-8)

(4) केन्द्रीय जनवादी सरकार तिब्बती क्षेत्र के सभी वैदेशिक मामलों पर केन्द्रीय नियंत्रण रखेगी। (धारा-14)

(5) इस समझौते के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए केन्द्रीय जनवादी सरकार तिब्बत में एक सैनिक और प्रशासनिक समिति तथा एक क्षेत्रीय सैनिक मुख्यालय स्थापित करेगी। वहाँ केन्द्रीय जनवादी सरकार द्वारा भेजे अधिकारियों के अतिरिक्त अधिकाधिक संख्या में तिब्बती कर्मचारियों को भी काम में लेने के लिए शामिल किया जायेगा। (धारा-15)

(6) तिब्बत की स्थानीय सरकार खाद्य पदार्थों, चारे और अन्य रोजमर्रा की वस्तुओं की खरीद तथा ढुलाई में जन-मुक्ति सेना की मदद करेगी।

हालांकि जब तक दलाई लामा की मुहर नहीं लग जाती इस समझौते की तिब्बती जनता के लिए कोई अहमियत नहीं थी। चीनी सरकार इसमें कोई खतरा उठाने को तैयार नहीं थी और उसने एक नकली मुहर उस पर लगा दी। यह जाली दस्तावेज तबसे उसी के अधिकार में है। हालांकि दलाई लामा ने 24 अक्टूबर, 1951 को माओ-त्से-तुंग से एक मुलाकात में उस समझौते पर अपनी सहमति दे दी, परंतु उसके पूर्व 9 सितम्बर 1951 को ही जनमुक्ति वाहिनी की अग्रिम टुकड़ियां ल्हासा पहुंच चुकी थीं। 10 फरवरी 1952 को ल्हासा में क्षेत्रीय सैनिक मुख्यालय स्थापित कर दिया गया। इस तरह तिब्बती स्वतंत्रता नष्ट हो गई और चीनी सेना भारतीय सीमा पर तैनात कर दी गई।

(अनुवाद-मीनू मंजरी)

□

एक सच्चे हिन्दू

गौतम बुद्ध की शिक्षाएँ कोई नया धर्म नहीं थीं। जहां तक मैं उन उच्च शिक्षाओं का अध्ययन कर सका हूं, मैं इसी नतीजे पर पहुंचा हूं, और आज नहीं बल्कि बहुत दिन पहले ही पहुंच चुका था, कि गौतम बुद्ध हिन्दू-धर्म के सबसे बड़े सुधारकों में से एक थे और वे अपने जमाने के लोगों पर और भविष्य की पीढ़ियों पर उस सुधार की ऐसी छाप छोड़ गये हैं जो कभी मिट नहीं सकती।...

...गौतम बुद्ध एक सच्चे हिन्दू थे। वे हिन्दू-धर्म की भावना से ओतप्रोत थे, वैदिक भावना से आपूरित थे। उनका जन्म और लालन-पालन उसी प्रेरणाप्रद परिवेश में-मनुष्य की आत्मा के लिए प्रेरणाप्रद परिवेश में-हुआ था; और जहां तक मैं जानता हूं उन्होंने हिन्दू-धर्म या वेदों के संदेश को कभी अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने जो कुछ किया वह यह कि जिस निर्जीव धार्मिक वातावरण में उनकी आत्मा आकुल हो रही थी, उसमें एक जीवन्त सुधार किया। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि उस महात्मा ने जिस स्रोत से प्रेरणा ग्रहण की उस मूल स्रोत का अध्ययन किये बिना आपका बौद्ध-धर्म का अध्ययन अधूरा रहेगा।

-महात्मा गांधी

हिन्दुस्तान और तिब्बत

रवीन्द्र वर्मा

चैकोस्लोवाकिया के साथ विश्वासघात और स्पेन में फासिस्ट सेनाओं की अनदेखी के लिए भारतीयों ने ब्रिटेन और पश्चिमी शक्तियों की कटु आलोचना की थी, जिसमें नेहरू की भूमिका अग्रणी थी। अपने यादगार और मार्मिक शब्दों में उन्होंने कहा था कि प्रजातन्त्र और शांति के नाम पर चैक और स्पेनी लोगों के साथ हुये विश्वासघात के कारण चेक और स्पेनी प्रजा की अनन्त दु:ख से पीड़ित आंखें अंग्रेजों की आने वाली पीढ़ियों का भी पीछा नहीं छोड़ेंगी। जवाहरलाल नेहरू ने जब ये शब्द लिखे, उसके कोई एक दशक के कुछ बाद ही चीन की सशस्त्र सेना ने तिब्बत को रौंद डाला, और हमारी उत्तरी सरहद पर आ पहुंची।

द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ने से पहले यूरोप में काफी उथल-पुथल मची हुई थी। फासीवाद ने कई देशों में मोर्चे जमा लिए थे और लोकतांत्रिक देशों की सेनाओं के साथ कई स्थानों पर उसकी मुठभेड़ चल रही थी। नाज़ियों ने छोटे और कमजोर राष्ट्रों को आतंकित कर रखा था, यहां तक कि कुछ को तो रौंद डाला गया था। भारत आज़ाद नहीं हुआ था और अंग्रेजों के आधिपत्य में था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत थी और मानवाधिकारों, प्रजातंत्र, जनता की प्रभुसत्ता तथा आत्म-निर्णय के मुद्दों पर सैद्धान्तिक और प्रगतिशील नीति के लिए सम्मान अर्जित कर चुकी थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू कई अर्थों में इस नीति के निर्माता और प्रवक्ता थे। उन्होंने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और आत्म-निर्णय जैसे विषयों पर भारत की भावनाओं को दृढ़ता के साथ रखने का कोई अवसर नहीं छोड़ा।

चैकोस्लोवाकिया के साथ विश्वासघात और स्पेन में फासिस्ट सेनाओं की अनदेखी के लिए भारतीयों ने ब्रिटेन और पश्चिमी शक्तियों की कटु आलोचना की थी, जिसमें नेहरू की भूमिका अग्रणी थी। अपने यादगार और मार्मिक शब्दों में उन्होंने कहा था "प्रजातन्त्र और शांति के नाम पर चैक और स्पेनी लोगों के साथ हुये विश्वासघात के कारण चेक और स्पेनी प्रजा की अनन्त दु:ख से पीड़ित आंखें अंग्रेजों की आने वाली पीढ़ियों का भी पीछा नहीं छोड़ेगी।"

जवाहरलाल नेहरू ने जब ये शब्द लिखे, उसके कोई एक दशक के कुछ बाद ही चीन की सशस्त्र सेना ने तिब्बत को रौंद डाला, और हमारी उत्तरी सरहद पर आ पहुंची। तिब्बत को पहले से ही इसका डर था, लेकिन भारत ने इस डर को आधारहीन बताकर उसे

आश्वस्त कर रखा था। दलाई लामा भारत की सलाह मानते हुए तिब्बत लौट गये। लेकिन तिब्बत को फिर भी रौंद डाला गया। चीन ने सैन्य शक्ति के बल पर यथास्थिति को बदल डाला। उसे रोकने के लिए भारत ने कुछ भी नहीं किया। यहां तक कि हमने तिब्बत की लड़ाई संयुक्त राष्ट्र संघ में भी नहीं लड़ी, जो कि हम कर सकते थे। शायद हमें काठ मार गया था। इस तरह हम डर गये थे कि हमने यह कहकर आसानी से मन मना लिया कि हम असहाय थे। अगर हम इतने भोले-भाले नहीं होते, अगर हम एशिया की वास्तविक स्थिति को समझते और मात्र रोमांटिक कल्पनाओं के संसार में नहीं खोये रहते तो हम उस समय भी तिब्बत (स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में) के लोप होने के बाद उत्पन्न होने वाले खतरों को भांपने की दूरदृष्टि पा सकते थे। तिब्बत अकेला ही मसला नहीं था जिस पर हमारी सरकार अपनी असहाय स्थिति का बहाना लेकर अपने हाथ उठा देने को तैयार रहती थी। अनेक भारतीय, खासकर देश के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में रहने वाले लोग हमारे तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये उस 'विदाई' भाषण को नहीं भूल सकते जो उन्होंने चीनी सेनाओं के असम में ब्रह्मपुत्र के किनारे तेजपुर में आ धमकने पर वहां के लोगों को सम्बोधित करते हुए दिया था। हमने अपनी आत्मा को बहानों के द्वारा सांत्वना दे दी तथा अपने नैतिक क्रोध, स्पष्ट घोषणाओं और उनकी 'अनन्त दु:ख से पीड़ित आंखों' को भूल गये जो विश्वासघात के शिकार होकर चुप हो जाने पर मजबूर हो गये थे।

हमारे लोगों को ही इस चुप्पी का औचित्य सिद्ध करना भी आवश्यक था। इसलिए हितों की दुहाई देकर तिब्बत पर चुप रहने की नीति को सही ठहराने का प्रयास हुआ। जिस किसी ने भी इस चुप्पी के औचित्य और नैतिकता पर उंगली उठाई उसकी ओर खीज से देखा गया। कुछ खुशामदी और चाटुकार इसे नेतृत्व के प्रति विद्रोह की संज्ञा देने लगे। एक प्रयास यह भावना पैदा करने का भी हुआ कि हमारे यहां प्रजातंत्र तो है, लेकिन कुछ विषयों को सरकार चलाने वाले नेताओं की बुद्धि पर छोड़ देना चाहिए तथा जनमत द्वारा उन्हें प्रभावित नहीं करना चाहिए। ऐसे मामलों में सरकार के मत को ही जनता की राय मान लेना चाहिए। इस सिद्धान्त के परिणामस्वरूप भारत में हम जनमत को सार्वजनिक बहस के द्वारा निरूपित करने, जनमत बनाने के लोकतांत्रिक अधिकार को क्रियान्वित करने तथा सरकार को उसे मानने अथवा जनमत पर चलने के लिए बाध्य करने में असमर्थ रहे। आज के संदर्भ में परमाणु शस्त्रीकरण का उल्लेख करना असत्य नहीं होगा जिस पर हर सरकार जनमत का सम्मान करना व्यर्थ समझती रही है।

हमें इस भावना को समाप्त करना होगा कि तिब्बत के साथ हुई दुर्घटनाओं की चर्चा करना निषिद्ध है। तिब्बत हमारा पड़ौसी है। हमारे पड़ौसी के साथ जो कुछ हुआ, हमारे पड़ौस में जो कुछ घटा, उसका प्रभाव हमारे देश की घटनाओं पर पड़ना स्वाभाविक है।

इतिहास से चिपके रहने या उसको लेकर विभाजित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। इतिहास ने ऐसे अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं जब पड़ौस में रहने वाले देशों में से किसी एक की प्रभुसत्ता अथवा आधिपत्य दूसरे के क्षेत्रों पर था। चीन और तिब्बत दोनों ने भी

इस प्रकार आधिपत्य का समय भी देखा है और अधीनता का भी। इस बात से कोई असहमत नहीं हो सकता कि तिब्बत सैकड़ों वर्ष तक प्रभुसत्ता-संपन्न राष्ट्र रहा। इस बात पर भी किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि जो देश अपनी प्रभुसत्ता खो देते हैं उन्हें इसे वापस पाने का अधिकार है। दुनिया के सारे महाद्वीपों का इतिहास प्रभुसत्ता खोने और उसे वापस पाने की अनेक घटनाओं का साक्षी है।

इतिहास के किसी विशेष काल में तिब्बत की प्रभुसत्ता के बारे में कुछ लोगों की राय भिन्न हो सकती है, लेकिन इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि 1950 में चीनी सेनाओं ने तिब्बत में प्रवेश कर वहां की यथास्थिति को बदल कर उस पर कब्जा कर लिया। भारत इस तथ्य से जरा भी इन्कार नहीं कर सकता कि हमारी पूर्वोत्तर सरहद पर 1950 से पहले चीनी सेनाएं कभी नहीं रहीं, और उसके बाद से चीनी सेना की वहां लगातार उपस्थिति चीन द्वारा सैन्य-बल के आधार पर यथास्थिति में किये गये मूलभूत और इकतरफा परिवर्तन के कारण ही है। भारत ने किसी देश की क्षेत्रीय स्थिति पर किसी अन्य देश द्वारा सैन्य शक्ति के बल पर नियंत्रण का तथा ताकत के बल पर लाये गये परिवर्तनों को मान्यता देने का सदा विरोध किया है।

हमारे लोगों को ही इस चुप्पी का औचित्य सिद्ध करना भी आवश्यक था। इसलिए हितों की दुहाई देकर तिब्बत पर चुप रहने की नीति को सही ठहराने का प्रयास हुआ। जिस किसी ने भी इस चुप्पी के औचित्य और नैतिकता पर उंगली उठाई उसकी ओर खीज से देखा गया। कुछ खुशामदी और चाटुकार इसे नेतृत्व के प्रति विद्रोह की संज्ञा देने लगे। एक प्रयास यह भावना पैदा करने का भी हुआ कि हमारे यहां प्रजातंत्र तो है, लेकिन कुछ विषयों को सरकार चलाने वाले नेताओं की बुद्धि पर छोड़ देना चाहिए तथा जनमत द्वारा उन्हें प्रभावित नहीं करना चाहिए। ऐसे मामलों में सरकार के मत को ही जनता की राय मान लेना चाहिए।

अगर इस विचार को भी दरकिनार रखा जाए तो भी भारत इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकता कि चीनी सेना की उपस्थिति के कारण हमारी सीमा कमजोर हो गई है और खतरे में पड़ गई है। इससे हमारी सीमाओं की सुरक्षा और हमारी प्रभुसत्ता की मूलभूत प्राथमिक आवश्यकता ही प्रभावित हुई है। तिब्बत में चीनी सेनाओं की उपस्थिति का जो अर्थ हो सकता है उसका स्वाद हम 1962 में चख चुके हैं। आज 35 वर्ष बाद, तिब्बत में चीनी सेना की संख्या पहले से कहीं अधिक है। उसके हथियारों और प्रहार-शक्ति में भी भारी वृद्धि हो चुकी है। यह सर्वज्ञात है कि तिब्बत में चीनी आणविक हथियारों का जखीरा जमा है। प्रक्षेपास्त्र तथा प्रक्षेपण सुविधाएं पूर्ण रूप से तैयार हैं। तिब्बत को एक विशाल और भीषण सैनिक छावनी में बदल दिया गया है। वहां पारंपरिक हथियारों के अतिरिक्त व्यापक संहारक शक्ति वाले हथियार भारी मात्र में रखे गये हैं। आज तिब्बत

के अंदर जो कुछ हो रहा है तथा तिब्बत के साथ जो कुछ हो रहा है, क्या भारत उससे बेखबर रहने का जोखिम उठा सकता है ? किस आधार पर कोई यह कह सकता है कि इन हथियारों का उपयोग भारत के विरुद्ध नहीं किया जाएगा ?

विश्व में जब कहीं भी ऐसे सैन्य अड्डे खड़े किये जाते हैं या हथियार जमा किये जाते हैं, तब भारत को गहरी चिन्ता होती है, चिंता स्पष्ट शब्दों में व्यक्त भी की जाती है, हम उनकी नीयत पर और पड़ौसी देशों पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में चिंतित होते है। हम इस बात के हामी हैं कि प्रत्येक क्षेत्र सेना-मुक्त क्षेत्र हो, तथा परमाणु-मुक्त क्षेत्र हो। फिर हम सीमा पर परमाणु हथियारों के भंडार और प्रक्षेपण स्थलों के निर्माण पर खामोश कैसे रह सकते हैं? हम क्यों हमारी अपनी ही पूर्वोत्तर सीमा से लगे क्षेत्र को सेना-मुक्त और परमाणु-मुक्त क्षेत्र बनाने की मांग नहीं करते ?

अब जरा देखें कि गत् 40 वर्षों से भी अधिक समय में चीन ने तिब्बत में क्या किया है। तिब्बत के भीतर अपने पैर जमाने तथा उस पर अपना पंजा कसने का हर प्रयास चीन ने किया है। उसने मानवाधिकारों की विश्व-घोषणा के तहत प्रदत्त सभी मौलिक मानवाधिकारों का हनन किया है या उनमें कटौती कर दी है। अभिव्यक्ति और संघ बनाने की स्वतंत्रता; धार्मिक मान्यता और व्यवहार की स्वतंत्रता; आत्म-अभिव्यक्ति अथवा सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा का अधिकार-इन सबका निर्दयता से दमन किया गया है। तिब्बती संस्कृति के खजानों को या तो लूट लिया गया या नष्ट कर दिया गया। असंख्य बौद्ध मंदिरों और मठों को ध्वस्त कर दिया गया। हजारों बौद्ध भिक्षुओं को जेलों में ठूंस दिया गया। धार्मिक अनुष्ठानों और पूजा की वस्तुओं को अपवित्र कर दिया गया। पारंपरिक धार्मिक उपासना पर बाधाएं डाली गईं।

हम यह क्यों विश्वास करने लगे हैं कि तिब्बत में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए चुप रहना ही हमारा सबसे बड़ा योगदान है? निश्चित तौर पर मानवाधिकारों और आत्म-निर्णय के संदर्भ में हम दो तरह के मानदण्ड नहीं रख सकते-एक अपने पड़ोसी देशों के लिए; दूसरा, दूरवर्ती देशों के लिए। गांधीजी ने भारत को या किसी अन्य को अन्याय के सामने चुप या तटस्थ रहना नहीं सिखाया।

तिब्बत के प्राकृतिक संसाधनों का निष्ठुरता से निर्मम दोहन किया गया है। वनों को काट डाला गया। खनिज सम्पदा को खोद लिया गया और या तो उनका चीन के लिए उपयोग कर लिया गया, अथवा उन्हें हटा दिया गया। प्राकृतिक जीव-जगत् की अनेक प्रजातियों का पूरा नाश कर दिया गया है।

सारा वायुमंडल प्रदूषण का शिकार बन चुका है। तिब्बत को परमाणु कचरे का कूड़ादान बना दिया है। इससे स्थिति और भयावह बन गई है।

इस सबके ऊपर, चीनी लोगों को ला-ला कर तिब्बत में बसाया जा रहा है। ताकि

तिब्बत के मूल वासी अपनी ही जन्म-भूमि में अल्पसंख्यक हो जाएं।

अगर इन सबसे मानवाधिकारों का हनन नहीं होता, स्वायत्तता और आत्म-निर्णय के अधिकारों का हनन नहीं होता, व्यक्ति की जातिय पहचान के अधिकार का हनन नहीं होता, तो तिब्बती लोगों के जातिय संहार और उनकी संस्कृति के चीन द्वारा किये जा रहे विनाश के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य राष्ट्रों को और कौन-से प्रमाण चाहिए ? अपने पड़ोस में चल रहे जाति संहार की यह भयानक घटना क्या भारत के लिए पर्याप्त नहीं है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय जनमत पर इस प्रकार दबाव पैदा करे ताकि पड़ोसी के मानवाधिकारों की रक्षा हो तथा उनका जातिय नाश होता रोका जा सके ? क्या इस बात के लिए भारत को विश्व का नेतृत्व नहीं करना चाहिए ? दक्षिण अफ्रीकी तथा अन्य प्रजाओं के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए आवाज उठाने में भारत ने विश्व जनमत का नेतृत्व किया है। द्वितीय विश्व-युद्ध के पहले से ही मानवाधिकारों के लिए आवाज उठाना भारत की स्पृहणीय परंपरा रही है। फिर हम यह क्यों विश्वास करने लगे हैं कि तिब्बत में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए चुप रहना ही हमारा सबसे बड़ा योगदान है ? निश्चित तौर पर मानवाधिकारों और आत्म-निर्णय के संदर्भ में हम दो तरह के मानदण्ड नहीं रख सकते–एक अपने पड़ोसी देशों के लिए; दूसरा, दूरवर्ती देशों के लिए। गांधीजी ने भारत को या किसी अन्य को अन्याय के सामने चुप या तटस्थ रहना नहीं सिखाया।

हम यह भी नहीं भूल सकते कि दुनिया में ऐसे देश हैं–दरअसल में बहुत सारे हैं, जिन्होंने तिब्बत में मानवाधिकारों और आत्म-निर्णय के अधिकारों के हनन के विरुद्ध अपनी चिन्ता तथा असहमति दर्शाने के उपाय किये हैं। यही नहीं, जितना उनके बस में था, चीन पर दबाव भी डाला है। संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय समुदाय, आस्ट्रेलिया तथा अन्य बहुत से देशों ने महसूस किया है कि मानवाधिकारों के प्रति उनकी वचनबद्धता के कारण वे चुप नहीं रह सकते–चीन की धौंस उन्हें चुप नहीं करा सकी।

यहां एक अहम् प्रश्न खड़ा होता है।

जब कोई राष्ट्र मानवाधिकार के वैश्विक दस्तावेज का हामी बनता है तो वह दोहरी प्रतिबद्धता को स्वीकारता है–एक, अपने ही क्षेत्र में मानवाधिकारों को सुरक्षित करने की प्रतिबद्धता; तथा दूसरे, अधिकारों की इस व्यवस्था के अनुशासन को सभी देशों और क्षेत्रों में लागू कराने की प्रतिबद्धता। इस व्यवस्था का उल्लंघन करने वाले राष्ट्रों को समझाने तथा मानवाधिकारों के इस अंतर्राष्ट्रीय शासन की याद दिलाने के अपने दायित्व को इन देशों ने इस आधार पर छोड़ नहीं दिया है कि अपना मत जाहिर करने तथा समझाने के प्रयासों को 'आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप' कहा जायेगा।

वास्तव में दुनिया के देश कुछ मामलों में अनिच्छा से ही सही लेकिन आर्थिक प्रतिबंध लगाकर भी मानवाधिकारों की बहाली के प्रति बाध्यता पैदा करना जरूरी समझते हैं। दक्षिण अफ्रीका इसका अनुकूल उदाहरण है। किसी को समझाने का साधन चुप्पी को नहीं बनाया जा सकता। हाँ, इसे अगर कुछ समझा जा सकता है तो मौन-सहमति अवश्य समझा

जा सकता है। यही कारण था कि गांधीजी ने हमेशा न्याय और नैतिकता के सवाल पर हर किसी से अपना असंदिग्ध कर्त्तव्य निभाने का आग्रह किया था, ताकि ऐसे प्रश्न मौन सहमति से प्रभावित न हो सके।

तिब्बत वासियों ने अपने अधिकारों के संरक्षण या बहाली के लिए संघर्ष के जो तरीके अपनाये वे भी हमारे लिए उतने ही प्रासंगिक हैं। वास्तव में हमारे लिए उनका विशेष महत्त्व हैं। उन्होंने हिंसा या घृणा का मार्ग नहीं अपनाया। उनका संघर्ष अहिंसा-पूर्ण संघर्ष है। अगर कुछ छुट-पुट हिंसा हुई भी है जिसकी हमें जानकारी नहीं हैं, तो उन्हें बिल्ली के पंजे से छूटना चाहते चूहे की छटपटाहट की तरह से समझा जा सकता है, जैसा कि गांधीजी ने नाजियों के विरोध में पोलैण्डवासियों की हिंसा के बारे में कहा था। शायद आज विश्व में इस प्रकार का एकमात्र अहिंसात्मक आंदोलन होने के कारण हमारे लिए इसका विशेष महत्त्व है। हमने ऐसी रपट भी सुनी है कि चीन की जेलों से छूटे कुछ बौद्ध भिक्षुओं ने बाहर आकर स्वीकार किया कि जेल के दिनों में उन्हें यही डर सताता रहता था कि कहीं उनके दिलों से अपने चीनी आततायियों के प्रति करुणा का भाव न समाप्त हो जाए।

अपनी जातिय पहचान कायम रखने के लिए चल रहे तिब्बतवासियों के इस संघर्ष पर किया जा रहा कोई भी विचार-मंथन तब तक अधूरा है जब तक इस संघर्ष को नेतृत्व देकर परमपावन दलाई लामा ने जो भूमिका निभाई है उसे ध्यान से न समझें। परमपावनजी की भूमिका निस्संदेह अद्वितीय है और हम भारतवासियों के लिए सच्चे अर्थों में गांधीजी की परंपरा में है। गांधीजी की भांति ही परमपावनजी की आस्था और विश्वास भी अहिंसा में पूर्ण और असंदिग्ध है। गांधीजी की ही तरह परमपावनजी ने भी कुकर्म और कुकर्मी के बीच भेद किया है। वे भी कुकर्मी से कुकर्मों को अलग कर कुकर्म का नाश चाहते हैं। गांधीजी ने हमें साम्राज्यवाद से घृणा करने के लिए कहा था, अंग्रेजों से नहीं। इसी प्रकार परमपावन भी चीनियों से घृणा नहीं करते। तिब्बत के प्रश्न पर परमपावनजी के जो भी वक्तव्य, निवेदन या कथन होते हैं, चाहे वे तिब्बत पर ढाई जा रही मुसीबतों और अन्याय पर ही क्यों न हो, इस बात के लिए असाधारण होते हैं कि उनमें कटुता का लेशमात्र भी अंश नहीं होता। गांधीजी और परमपावनजी दोनों का मार्ग अहिंसा और समझाने-बुझाने का है, घृणा और हिंसा का नहीं।

अपने रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा गांधीजी ने नये समाज, नये राष्ट्र और नये मूल्यों को आकार देने का प्रयास किया। परमपावनजी ने तिब्बतियों की जातिय पहचान को अक्षुण्ण रखने का, धार्मिक धरोहर को बनाये रखने का, आध्यात्मिक मूल्यों तथा परंपराओं को बनाये रखने का और तिब्बत के लोगों में नई जागृति लाने का जबर्दस्त तथा अथक कार्य किया है। परमपावनजी को नई राजनैतिक, प्रशासनिक तथा प्रतिनिधिक संस्थाओं का निर्माण करना पड़ा। उन्होंने शैक्षिक संस्थाओं और मठवासी संस्थाओं तथा अद्वितीय उत्कृष्टता वाले विश्वविद्यालयों को खड़ा किया। आपने पारंपरिक विधाओं, कलाओं तथा शिल्प को तथा प्राचीन तिब्बती चिकित्सा एवं औषध शास्त्र को सुदृढ़ नींव पर खड़ा करने

लायक संस्थाओं का भी निर्माण किया। परमपावनजी ने हर तिब्बती के मन में अपनी जातिय पहचान के लिए गरिमा और गौरव की भावना भरी है; वह भी तब जबकि वे अपने घर में भी स्वतंत्र नहीं हैं तथा तिब्बत से बाहर उनकी स्थिति शरणार्थी की है। यह परमपावनजी की अद्वितीय महानता के कारण ही है कि आज तिब्बत के बाहर तिब्बत के लोगों को सत्कार और स्नेह मिलता है।

इस सदी के दौरान ही विश्व ने इस्रायल का एक राष्ट्र के रूप में अभ्युदय देखा, तथा जिस भूमि से यहूदियों को देश निकाला दिया गया था वहीं पर यहूदी राष्ट्र बना और हिब्रू तथा यहूदीधर्म और संस्कृति बहाल हुई। परंतु जो सफलता परमपावन दलाई लामा ने तिब्बत के लोगों की सांस्कृतिक पहचान बनाये रखने में प्राप्त की है उसकी मिसाल इतिहास में नहीं है क्योंकि यह उन्होंने निर्वासित अवस्था में, स्वदेश के नहीं होते हुए भी पायी है। यही नहीं, उन्होंने इस विपत्ति को भी अवसर बना दिया और विश्व के समस्त देशों की प्रजा के बीच तिब्बती आध्यात्मिक परंपरा के मूल्य और पद्धतियों का प्रसार किया है। उनकी इस उपलब्धि को इतिहास में अद्वितीय और बेमिसाल रूप में दर्ज किया जाएगा।

एक प्रश्न शेष है। तिब्बत में ही रह रहे तिब्बतवासी अपने अधिकारों की बहाली के लिए किस प्रकार का संघर्ष छेड़ेंगे? निश्चय ही जब तक परमपावनजी का प्रभाव कायम रहेगा, यह संघर्ष अहिंसात्मक ही रहेगा। हम यहां इस बात पर विचार नहीं करेंगे कि इस अहिंसात्मक संघर्ष के कौन-कौन से रूप उभरेंगे। हमें तिब्बत के अन्दर की परिस्थितियों की भी पूरी जानकारी नहीं है। फिर भी, भारत के लोगों का विश्वास है कि तिब्बत के लोगों को उन मानवाधिकारों और आत्म-निर्णय के अधिकार की बहाली में अवश्य सफलता मिलेगी और वह भी पूर्णत: अहिंसात्मक साधनों और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से, इसमें भारत का सहयोग भी समाहित है-क्योंकि तिब्बत भारत से भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों व प्रथाओं से जुड़ा है।

तब हम कर क्या सकते हैं? भारत के लोगों को अपनी राय अवश्य अभिव्यक्त करनी चाहिए। मानवाधिकारों की विश्व-घोषणा के तहत जिन मानवाधिकारों का वचन दुनिया के सभी लोगों और सभी क्षेत्रीय सत्ताओं के लिए दिया गया है वही मानवाधिकार और आत्मनिर्णय के अधिकार तिब्बत के लोगों को भी मिलने चाहिए। इस संघर्ष में हमें उनके साथ खड़ा रहना चाहिए। हमारे देशवासियों द्वारा उजागर किये गये जनमत से हमारी सरकार के हाथ मजबूत होंगे और वह तिब्बत के लोगों के उक्त अधिकारों की बहाली के लिए अन्तर्राष्ट्रीय जनमत बनाने में नेतृत्व कर सकेगी। परमपावन दलाई लामा ने कहा है कि उन्होंने स्वतंत्रता की मांग नहीं रखी है। उनका यह प्रस्ताव कि तिब्बत को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की जाए, और तिब्बत को पूर्ण रूप से सैन्य-मुक्त एवं परमाणु-मुक्त क्षेत्र बनाया जाय, भारत के हित में भी है। फिर भी पता नहीं क्यों हम इस प्रस्ताव का समर्थन करने से कतरा रहे हैं ?

□

भारत सरकार पुनर्विचार करे

अटल बिहारी वाजपेयी

तिब्बत की स्वतंत्रता, स्वायत्तता तथा चीन द्वारा वहां किये गये राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अत्याचारों के विषय में भारत की क्या जिम्मेदारी है या होनी चाहिये थी, और उस जिम्मेदारी को ठीक से निभाने के लिए भारत सरकार को क्या नीतियां अपनानी चाहिए, इन सब मुद्दों के विषय में श्री वाजपेयी ने लोकसभा व राज्यसभा में 1959 से 1989 तक जो वक्तव्य दिये उनमें से महत्वपूर्ण वक्तव्यों को यहां उद्धृत किया गया है–यही याद दिलाने हेतु कि आज भारत सरकार पुनर्विचार कर सकती है। क्योंकि खुद वे ही सरकार है, विरोधपक्ष नहीं। सं.

" . . . हमने जब तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार की तो हमने बड़ी गलती की। वह दिन बड़े दुर्भाग्य का दिन था . . . ।"[1]

" . . . एक बात स्पष्ट हो गई है कि तिब्बत के सम्बन्ध में हमने जो नीति अपनायी है वह नीति ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट नहीं होती। चीन ने भी, तिब्बत संधियाँ कर सकता है, इस अधिकार की पुष्टि की है। हमने भी इसका उल्लेख किया है कि तिब्बत को अन्तर्राष्ट्रीय संधियाँ करने का अधिकार था। तो फिर हम तिब्बत पर चीन के अधिकार को सौ फीसदी किस तरह से स्वीकार कर सकते हैं? जो तथ्य हमने रखे हैं, जो संधियाँ हमने उद्धृत की हैं, उससे इस बात की पुष्टि होती है कि तिब्बत को एक स्वतंत्र देश के रूप में जीवित रहने का अधिकार था . . . ।"[2]

"तिब्बत की स्वतंत्रता की बात करने का अर्थ चीन के अन्दरूनी मामलों में दखल करना नहीं माना जाना चाहिए . . . चीन बंधा हुआ है तिब्बत की स्वायत्तता का समादर करने के लिए, तिब्बत के अन्दरूनी मामलों में दखल न देने के लिए। लेकिन वह समझौता टूट गया और मैं समझता हूँ कि अब भारत को भी, **भारत सरकार को भी अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए** . . . ।"[3]

" . . .भले ही सरकार तिब्बत के प्रति अपने कर्तव्य को न समझे, मगर देश की जनता समझती है कि तिब्बत के प्रति हमारा नैतिक कर्तव्य क्या है। विदेशी गुलामी से निकला

---

1 लोक सभा में, 8 मई 1959

2 लोक सभा में, 21, फरवरी 1961

हुआ भारत उन देशों के प्रति अपनी सहानुभूति के प्रकटीकरण से नहीं रुक सकता जो नये-नये गुलामी के फन्दे में जकड़े जा रहे हैं . . . ।''[14]

'' . . . मैं समझता हूँ कि तिब्बत की स्वायत्तता के साथ भारत की सुरक्षा जुड़ी हुई है। . . . चीन ने तिब्बत को मिटा दिया तो क्या हमारे लिए भी तिब्बत मिट गया? मैं नहीं समझता कि इस नीति का कोई अच्छा परिणाम होने वाला है। नैतिक दृष्टि से तो यह नीति भारत के लिए उपयुक्त है ही नहीं, लेकिन अगर हम राष्ट्रीय स्वार्थों की दृष्टि से भी विचार करें तो भी तिब्बत का इस तरह मिट जाना दूरगामी दृष्टि से भारत के हित में नहीं हो सकता . . . ।''[15]

''. . . तिब्बत की पीड़ा केवल गुलाम होने की ही नहीं है बल्कि अपने विशिष्ट धार्मिक और सांस्कृतिक अस्तित्व को खो देने की भी है। . . . चीन का पूरा उद्देश्य है कि तिब्बतियों को उनके ही देश में अल्पसंख्यक बना दिया जाए, इस प्रकार तिब्बती व्यक्तित्व को नष्ट कर दिया जाए। यह एक नया परिदृश्य है, यह एक नये प्रकार का साम्राज्यवाद है। . . . अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग के मुताबिक तिब्बत की जनता की स्वतंत्रता के अधिकार, जीवन और सुरक्षा के अधिकार का उल्लंघन किया गया . . . ।''[16]

'' . . . दुःख की बात यह है कि हमने तिब्बत में मानवाधिकारों के उल्लंघन के संबंध में थाइलैण्ड और मलाया ने जो शिकायत रखी है, उसका समर्थन न करने का फैसला किया है। भारत अगर तिब्बत के 'राइट ऑफ सेल्फ डिटरमिनेशन' को न मानता तो एक बार समझ में आ सकता था, क्योंकि भारत को यह बात अंग्रेजों से विरासत में मिली है कि तिब्बत पर चीन की 'सुज़रेनीटी' है। लेकिन जहां तक मानवाधिकारों के उल्लंघन का सवाल है उसके बारे में तो भारत को चुप नहीं बैठे रहना चाहिए . . .।''[17]

श्री वाजपेयी का मानना है कि ''अपनी प्रत्यक्ष सीमा से बाहर किसी अन्य क्षेत्र पर अपनी संप्रभुता और आधिपत्य की बातें करना किसी देश के लिए ठीक नहीं है . . . । यह बात कहना सही और उपयुक्त होगा, और मैं इसे चीनी सरकार से कहने में कोई मुश्किल नहीं देखता कि तिब्बत पर आपकी संप्रभुता या तिब्बत पर आपका आधिपत्य है या नहीं, लेकिन सिद्धांतों के अनुसार जिन्हें आप उद्घोषित करते हैं और जिन्हें मैं उद्घोषित करता हूँ, तिब्बत के बारे में अंतिम आवाज तिब्बत की जनता की होगी और किसी की नहीं। . . .।''[18]

□

---

3 लोक सभा में 8 मई 1959

4 लोक सभा में 17 मार्च 1960

5 लोक सभा में, 17 मार्च 1960

6 लोक सभा में, 21 अगस्त 1959

7 लोक सभा में, 17 मार्च 1960

8 श्री अटल बिहारी वाजपेयी, 'तिब्बत समस्या' सं. शंकर शरण; डी. आई. आर. प्रकाशन, दिल्ली, 1997

अज्ञान, उपेक्षा व आशंका का त्रिकोण कब टूटेगा?

आनन्द कुमार

यह पहचानना होगा कि तिब्बत मुक्ति-साधना आज की दुनिया में अहिंसक रास्ते की प्रासंगिकता की ताजा कसौटी है। तिब्बत के प्रश्न पर दुनिया में पहले अज्ञान था। फिर उपेक्षा फैली। आजकल आशंका का माहौल है। क्या सत्य व अहिंसा का अनुसरण कर रहे तिब्बती हमें तिब्बत के बारे में अज्ञान, उपेक्षा व आशंका से बाहर निकाल सकेंगे?

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अपनी स्वाधीनता खोने वाला एक मात्र एशियायी राष्ट्र तिब्बत है। वह मार्क्सवादी राष्ट्रवाद में निहित विस्तारवाद का शिकार हुआ और उसकी दुर्दशा में तत्कालीन तिब्बती नेतृत्व की अदूरदर्शिता तथा भारतीय सरकार की चुप्पी का भी योगदान था। तिब्बत को कम्युनिस्ट चीन ने दो चरणों में हड़पा। 1949 में स्वायत्तता की बहुआयामी परिभाषा स्वीकारते हुए चीन ने तिब्बत के साथ एक संधि की। फिर इसी स्वायत्तता को नष्ट करने के लिए भारत से 1954 में 'पंचशील' जैसे सनातन महत्व के विशेषण के साथ एक आठवर्षीय संधि में हिमालयी एशिया के सांस्कृतिक, भौगोलिक, राजनीतिक व आर्थिक इतिहास को अनदेखा किया गया। चीन की इस कूटनीतिक व्यूहरचना का अंतिम लक्ष्य एशिया महाद्वीप में अपना वर्चस्व स्थापित करना था। लेकिन इसका आभास विश्व-शक्तियों या एशिया की प्रमुख सरकारों को नहीं हो पाया। (इन दोनों ही षड़यंत्रों को 'प्रगति और शांति' की दिशा में ऐतिहासिक कदम घोषित करते हुए भारत के तत्कालीन सरकारी नेतृत्व व 'प्रगतिशील' विशेषज्ञों ने तिब्बत की पुकार की आत्मघाती उपेक्षा की। अब सफाई दी जाती है कि 1949 में भारत अपनी ही सुरक्षा व स्थिरता की समस्याओं से जूझ रहा था। कश्मीर पर हमला, भारत विभाजन से उत्पन्न हिंसा व अराजकता, देशी रियासतों की चालबाजियां आदि के कारण नव-स्वाधीन भारत का ध्यान तिब्बत-चीन सम्बन्धों में हो रहे बदलाव से हटा हुआ था। इसी प्रकार 1954-59 में कोरिया का युद्ध, भारत को शीत युद्ध में घसीटने की पश्चिमी महाशक्तियों की कोशिशों, चीन से मैत्री के जरिए एशिया को तीसरी दुनिया व तीसरी शक्तियों का शक्ति केन्द्र बनाने का सपना तथा कम्युनिस्ट क्रांति में निहित मानवतावादी संभावनाओं में आस्था जैसे कारणों ने जवाहरलाल नेहरु की सरकार को पड़ोसी धर्म की अनदेखी करने का आधार दिया।

पड़ोसी धर्म न निभाने का क्या नतीजा निकला? 25 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले तिब्बत राष्ट्र की स्वाधीनता चीनी सैनिक शासन ने छीन ली और भारत, भूटान, नेपाल, बर्मा, मंगोलिया व रूस के एशियाई क्षेत्र तक फौजी अड्डे फैलाने में सफल हो गया। इसके परिणाम स्वरूप भारत से 1962 में सैनिक टक्कर हुई और भारत बुरी तरह पराजित हुआ। अपनी 1 लाख वर्ग किलोमीटर जमीन चीन के हाथ खोने के साथ ही हम अपना अंतर्राष्ट्रीय सम्मान व राष्ट्रीय आत्मविश्वास भी खो बैठे। तिब्बत पर चीनी कब्जा व भारत पर चीनी हमले के पूर्व भारत-तिब्बत सीमा क्षेत्र में कोई सुरक्षा समस्या नहीं थी। लद्दाख से लेकर अरुणाचल प्रदेश तक फैली भारत-तिब्बत सीमा की कुल लंबाई 5000 किलोमीटर है। लेकिन 1962 से पूर्व हमारा सुरक्षा व्यय मात्र 28 करोड़ रुपए वार्षिक था। 1962 के चीनी हमले के बाद व्यय तीन गुना बढ़कर 81 करोड़ रुपए हुआ। अब हमारा देश पूरे बजट का 15 प्रतिशत यानी 41,200 करोड़ रुपए (1998) चीन के सैनिक दबाव के प्रतिरोध में खर्च करने को विवश है। चीन ने तिब्बत क्षेत्र में 200 सैनिक अड्डों में 5 लाख सैनिक जमा कर रखे हैं। चीनी सेना प्रक्षेपास्त्रों, परमाणु अस्त्रों व बमवर्षकों से लैस है। चीन ने भारत के खिलाफ मध्य तिब्बत में 5 प्रक्षेपास्त्र केन्द्र, 14 वायुसेना केन्द्र, 19 रडार केन्द्र व 81 अंतर्महाद्वीपीय मारक क्षमता वाले प्रक्षेपास्त्र तैनात कर रखे हैं। इसके अतिरिक्त भारत और पाकिस्तान के बीच चीन स्थायी अवरोध भी बन गया है। पाकिस्तानी परमाणु अस्त्रों के पीछे चीनी सहयोग का सच जगजाहिर हो चुका है। क्या तिब्बत की चीनी सैनिकों से मुक्ति हुए बिना भारत सुरक्षित महसूस कर सकता है? जब भारत ही असुरक्षित हो तो एशिया में निर्भयता व शांति कहां संभव है और यह महाद्वीप चीनी आंतक से कैसे बच सकता है ?

इस तस्वीर का दूसरा पहलू हिमालय की सांस्कृतिक अस्थिरता तथा वहां के आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक स्वरूप से जुड़ा हुआ है। तिब्बत की राजधानी ल्हासा बौद्ध धर्म की महायान परंपरा का केन्द्र है। इसकी महत्ता वेटिकन, यरूशलम, मक्का-मदीना व काशी से कम नहीं है। आध्यात्मिक साधना, शिक्षा से लेकर व्यापार व राजनीति की धुरी के रूप में तिब्बत की भूमिका समूचे हिमालय के लिए स्रोत व संदर्भ की रही है। हिमालय का पूरा भूगोल पूर्व से लेकर पश्चिम तक व उत्तर से लेकर दक्षिण तक दलाई लामा-पंचेन लामा के नेतृत्व व शिक्षा से ओतप्रोत बौद्ध सभ्यता से सुगंधित है। भाषा-भूषा-भोजन से लेकर आर्थिक गतिविधियां, सामाजिक व्यवस्था व सांस्कृतिक विशेषताएं तिब्बत की केन्द्रीयता को प्रतिबिंबित करती हैं। चीन ने तिब्बत को कब्जे में लेकर बौद्ध सभ्यता पर घातक प्रहार किया है। 1959 से अब तक के बीच चीन ने 60 लाख जनसंख्या वाले तिब्बतियों में से 12 लाख निर्दोष स्त्री-पुरुषों को अकाल मृत्यु का शिकार बनाया है। 6000 से अधिक मंदिरों, मठों व विद्या केन्द्रों का ध्वंस किया गया। तिब्बती

संस्कृति को समूल नष्ट करने के लिए लगभग 75 लाख चीनियों को तिब्बत में पहुँचा दिया गया है। तिब्बती समाज को धर्म व साधना से विमुख करने के लिए भिक्षुओं व भिक्षुणियों को जेलों में बंद करना इसी सैनिक राज की दूसरी क्रूर नीति है। इसी के समानान्तर तिब्बती स्त्रियों को चीनियों से विवाह के लिए विवश किया जाता है। अन्यथा उन्हें गर्भपात, वंध्यीकरण व बलात्कार का शिकार बनाया जाता है। जब तिब्बत में ही मठ-मंदिर नष्ट हो रहे हैं तो शेष हिमालय में उनकी परंपरा को कैसे बल मिलेगा? दलाई लामा व उनके सवा लाख से अधिक अनुयायियों ने चीनी सैनिक कब्जे का विरोध करते हुए आत्मरक्षा के लिए तिब्बत से बाहर शरण ली है। इनमें से अधिकांश (लगभग एक लाख बीस हजार) भारत व नेपाल में शरणागत हैं। कुछ हजार तिब्बती प्रवासी यूरोप व अमेरिका में रहकर आत्मरक्षा व विश्व जनमत-जागरण में जुटे हुए हैं। लेकिन मंगोलिया से लेकर म्यांमार और आम्दो से लेकर लद्दाख-अरुणाचल तक आध्यात्मिकता आधारित समाज व्यवस्था का प्रवाह कमजोर हो रहा है। अहिंसा पर हिंसा का क्रूर प्रहार जारी है। एक समूची सभ्यता व जीवन प्रणाली चीनी सैनिकों के आतंक से दम तोड़ रही है। चीनी शासन ने वनों की अंधाधुंध कटाई, खनिजों का भूगर्भ से बेलगाम उत्खनन, तथा परमाणु विस्फोटों व अन्य गतिविधियों से तिब्बत के पर्यावरण को नष्ट व प्रदूषित किया है। तिब्बत में वनों की कटाई से भारतीय मानसून की अवधि तथा जलवृष्टि की मात्र पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इससे तिब्बत से निकलने वाली मुख्य भारतीय नदियों-ब्रह्मपुत्र, सिंधु, सतलुज तथा कोसी में बाढ़ का प्रकोप बढ़ रहा है।

दलाई लामा 1959 से निर्वासन की जिन्दगी जीने को विवश किए गये हैं। जबकि पंचेन लामा की चीनी हिरासत में रहस्यमय दशा में मृत्यु हुई। उनके उत्तराधिकारी शिशु को चीनियों की जेल में रखा गया है। नए पंचेन लामा के माता-पिता तथा चयन समिति के प्रधान रिंपोछे भी नहीं बख्शे गये हैं।

तिब्बत पर चीनी कब्जे के पहले समूचा हिमालय क्षेत्र शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की सदियों पुरानी परंपरा का निर्वाह कर रहा था। लेकिन चीनी सैनिक राज के शुरू होते ही तनाव, हिंसा व अलगाववाद को हवा मिल रही है। कश्मीर से लेकर मणिपुर, नागालैण्ड तथा मिजोरम तक अवैध व्यापार तथा आतंकवाद का सिलसिला प्रबल हुआ है। म्यांमार में जनतंत्र की वापसी का आन सान सू की द्वारा सफल अभियान चलाया गया। लेकिन चीनी शासकों ने तत्काल म्यांमार (बर्मा) के फौजी तानाशाहों व जंगल-माफिया के गठजोड़ की मदद करके एक स्वस्थ राजनीतिक परिवर्तन को अवरुद्ध किया।

तिब्बत की पराधीनता का असर भारत और शेष विश्व के हिन्दू व बौद्ध धर्मावलंबियों के धार्मिक अधिकारों व कर्तव्यों पर भी पड़ा है। भारतीयों का श्रेष्ठतम तीर्थ

कैलाश-मानसरोवर है। लेकिन इसकी यात्रा चीनी सैनिकों के नियंत्रण में चीनी राज की शर्तों को स्वीकारने वाले तथा यात्रा शुल्क के रूप में एक मोटी रकम देने के लिए प्रस्तुत तीर्थयात्रियों के लिए ही संभव है।

इसी प्रकार बौद्धों की परंपराओं के दो शीर्षस्थ प्रतीकों-दलाई लामा तथा पंचेन लामा को भी चीनी आघात का शिकार बनाया गया है।

दलाई लामा 1959 से निर्वासन की जिन्दगी जीने को विवश किए गये हैं। जबकि पंचेन लामा की चीनी हिरासत में रहस्यमय दशा में मृत्यु हुई। उनके उत्तराधिकारी शिशु को चीनियों की जेल में रखा गया है। नए पंचेन लामा के माता-पिता तथा चयन समिति के प्रधान रिंपोछे भी नहीं बख्शे गये हैं।

कड़ी निगरानी व कठोर सजा के बावजूद आस्थावान तिब्बती संतों व नागरिकों द्वारा चीनी राज के लगातार प्रतिरोध का सिलसिला भी बना हुआ है। चूंकि तिब्बती संस्कृति की नींव बौद्ध दर्शन पर आधारित है, अत: विशिष्ट प्रकार के अहिंसक व आध्यात्मिक तरीकों से तिब्बती जनसाधारण अपना दु:ख व्यक्त करते हैं। इन तरीकों का जनता की जीवन शैली से सम्बन्ध है और चीनी सैनिक शासन अपनी क्रूरता के बावजूद रोक नहीं लगा पाता है। उदाहरणार्थ, दलाई लामा के चित्र की पूजा तथा पंचेन लामा के उत्तराधिकारी बालक की दीर्घायु की प्रार्थनाएं चीनी-तिब्बती द्वन्द्व का एक मुख्य प्रतीक बन गया है। इसी प्रकार नियमित रूप से रेडियो के जरिए विश्व के विभिन्न भागों में तिब्बत मुक्ति-साधना के समर्थन में चल रही गतिविधियों का विवरण सुनना भी एक व्यापक तरीका बना हुआ है। दलाई लामा के दर्शन कालचक्र पूजा के प्रवचनों को सुनने के लिए यात्राएं भी इसी विशिष्ट प्रतिरोध का एक प्रकार है।

तिब्बत सम्बन्धी अज्ञान का परिणाम

तिब्बत की पराधीनता का सच एक लंबे अरसे तक हिमालय से परे के संसार को नहीं मालूम था। वैसे भी 'संसार' का कुल अर्थ औद्योगिक तथा राजनीतिक क्रांतियों से संपन्न हुए अथवा पराधीन हुए देशों से बनी दुनिया तक ही सीमित रहा है। इस अर्थ में यूरोप केन्द्रित समझ वाले लोगों व संस्थाओं के लिए तिब्बत जैसी स्थिति वाले राष्ट्रों को जानना-पहचानना असंभव ही था क्योंकि तिब्बत आधुनिकीकरण के उजले या अंधेरे पक्ष में से किसी में भी शामिल नहीं था। जो यूरोप से अछूता रहा हो उसे अपना सरोकार कैसे माना जाए? जो 'आधुनिक' नहीं हुआ, वह समाज या राष्ट्र आधुनिक राजनीति व आर्थिकी के तानेबाने को चलाने वाली व्यवस्था से हमदर्दी और मदद कैसे पा सकता है? इस प्रकार अपनी गुलामी के पहले दौर में तिब्बत 'आधुनिक' राष्ट्रों व उनके विविध मंचों के अज्ञान का शिकार बना। यह 1949 से 1959 तक चला। फिर उपेक्षा का दौर

आया। 1960, 1961 व 1965 में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने तिब्बत के दु:ख पर प्रतिक्रिया जरूर की। लेकिन यह प्रतिक्रियाएं चीन की घेरेबंदी व कम्युनिस्ट विरोधी कूटनीति के एक और बिन्दु के रूप में सामने आयीं। मानवीयता व करुणा के आधार पर तिब्बत के साथ हमदर्दी का भाव हिमालय क्षेत्र के सभी राष्ट्रों की जनता के बीच 1959 से बना हुआ है। लेकिन भारत समेत सभी एशियाई देशों की सरकारों ने अपने देश की जन भावनाओं की उपेक्षा करके चीनी अन्याय की अनदेखी का रास्ता अपनाया। सत्तर के दशक में तो ऐसा लगने लगा था कि तिब्बत राष्ट्र को चीन सचमुच पचा जाएगा।

किन्तु दलाई लामा की सात्विक शिक्षा, तिब्बत मुक्ति-साधना की सौम्य दृढ़ता और चीनी राष्ट्र निर्माण के अंतर्विरोधों ने क्रमश: विश्व जनमत को जागृत करना शुरू किया। माओ राज का खात्मा, चीनी राजनीति में देंग त्साओ-पिंग का उदय तथा विश्व के साथ जुड़ने की चीनी चेष्टाओं ने भी तिब्बत प्रश्न को नई प्रासंगिकता दी। 1989 में दलाई लामा को नोबल शांति पुरस्कार अर्पित करके पश्चिमी दुनिया ने अपने अज्ञान व उपेक्षा दोनों से परे जाने का शुभारंभ किया। यह दुनिया भर के आध्यात्मवादियों व अहिंसावादियों के लिए उत्साहवर्द्धक मोड़ था। यूरोपीय संसद, अमेरिकी कांग्रेस व सिनेट, आस्ट्रेलिया की जन-प्रतिनिधि सभा व कई लैटिन अमेरिकी देशों ने 1989 से 1998 के बीच खुलकर तिब्बत के दुख को स्वर दिया है, तिब्बत मुक्ति-साधना का समर्थन किया है। ईसाई धर्मगुरुओं, हिन्दू आचार्यों, यहूदी धर्म प्रवक्ताओं तथा अनेकों धर्म-सम्प्रदायों के समर्थन वक्तव्यों से भी तिब्बत की रक्षा के अभियान को बल मिला है। इधर चीनी जनतांत्रिक आंदोलन के नेताओं का तिब्बती स्वंतत्रता सेनानियों से लगातार संवाद तथा ताईवान में दलाई लामाजी का अभूतपूर्व अभिनंदन सर्वाधिक उल्लेखनीय घटनाएं हैं।

चीनी शासन ने पिछले दशक में तिब्बत के समर्थन में उभरे विश्व जनमत का सामना करने के लिए बड़े प्रभावशाली तरीके से असत्य प्रचार का सहारा लिया। दलाई लामा के बारे में दुस्साहसी तरीकों से झूठ फैलाने से लेकर तिब्बती समाज में फूट फैलाने व पंचेन लामा परंपरा को नष्ट करने तक के प्रयास हुए हैं। चीनी शासकों के प्रभाव में विश्व का एक बड़ा हिस्सा जरूर है। फिर तिब्बती समाज चीनी राजसत्ता की प्रचार क्षमता का किसी भी स्तर पर मुकाबला नहीं कर सकते। चीनी शासकों व दलाई लामा के बीच के 'विवाद' में भारत जैसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण पड़ोसी की चुप्पी से भी एक भ्रमपूर्ण स्थिति बनाने में चीनी शासक सफल रहे हैं। जब तक तिब्बत की दशा के बारे में फैले हुए अज्ञान, अर्द्धज्ञान व उपेक्षा भाव-तीनों का प्रभावशाली निदान नहीं किया जाएगा तब तक चीनी सैनिक-राज से मुक्ति की तिब्बत की पुकार पर पूरी दुनिया का ध्यान केन्द्रित करना कठिन बना रहेगा।

दो मुख्य प्रतिक्रियाएं : चीन व अमेरिका

आज दुनिया में तिब्बत को लेकर दलाई लामा व उनके अनुयायियों की ओर से चलाए जा रहे अभियानों पर दो सशक्त देशों की ओर से खुली प्रतिक्रिया हो रही है। चीनी शासक दलाई लामा की हर यात्रा व वक्तव्य पर निगाह रखते हैं, प्रतिवाद करते हैं, गलत व्याख्या करते हैं। भारत की सरकार विश्व मंचों पर या तो चीन के पक्ष में कतारबद्ध होती है या चुप रहती है। जबकि कैलाश-मानसरोवर पर चीनी नियंत्रण से लेकर अरुणाचल पर चीनी दावे जैसी कई समस्याओं के कारण चीन-तिब्बत विवाद में भारत की स्वाभाविक भूमिका होनी चाहिए। यह भारत के स्वाभिमान, पड़ोसी धर्म, आत्मरक्षा व युगधर्म चारों दृष्टियों से आवश्यक है। लेकिन 1962 की हार से उत्पन्न भयग्रंथि व पड़ोसियों के प्रति उदासीनता का दोष भारतीय विदेश मंत्रालय को चीन का पिछलगुआ बनाए हुए हैं। दूसरी तरफ अमेरिका सरकार भी चीन में सक्रिय दिलचस्पी के कारण तिब्बत के प्रश्न पर बहुत सजगता दिखाती है। अमेरिका की दिलचस्पी के कई कारण हैं। लेकिन अमेरिका तिब्बत प्रश्न को अभी तक दलाई लामा की निगाह से देखने से बचता आया है। एक लंबी अवधि तक अमेरिकी जनता तिब्बत के प्रश्न से अनजान थी। इस प्रकार अमेरिकी शासन की समूची चेष्टाएँ उसकी गुप्तचर संस्था के माध्यम से आकार व अर्थ ग्रहण करती थीं। सी.आई.ए. ने तिब्बत की गुलामी के बाद छापामार युद्ध से लेकर स्वतंत्र तिब्बत की संविधान रचना तक कई प्रयोगों में तिब्बती समाज की सहायता की है। लेकिन उसकी दिलचस्पी चीन-अमेरिका मैत्री का आरंभ होते ही घटने लगी। वैसे आज तक अनेकों व्यक्ति, विशेषकर कम्युनिस्ट धारा से सम्बन्धित विश्लेषक व संगठन, तिब्बत आन्दोलन को सी.आई.ए. का ही बखेड़ा मानते हैं। निक्सन प्रशासन के बाद अमेरिकी राष्ट्रपतियों ने तिब्बत में सीधी दिलचस्पी कम की। लेकिन कार्टर के राष्ट्रपति काल में मानवाधिकारों के प्रश्न को नई गंभीरता से उठाया जाने लगा। बिल क्लिंटन ने तो अपने चुनाव अभियान में तिब्बत प्रश्न को खुला महत्व दिया। इसके पीछे विगत दशक में अमेरिकी जनता में तिब्बत के लिए फैलती सहानुभूति का बड़ा योगदान है। यह सहानुभूति राजनीति से लेकर कला-फिल्म-शिक्षा-संस्कृति तक फैली है। डैनियल मोयनिहान (सेनेटर), रिचर्ड गेयरे (फिल्म कलाकार), प्रो. राकफेलर (प्राध्यापक), आदि इस बहुमुखी आंदोलन के प्रेरक हैं। इन सबने तिब्बत के प्रश्न को बुद्ध व दलाई लामा की शिक्षाओं के संदर्भ में पहचाना है। नासमझी व अवसरवादिता-दोनों अतियों से अलग सात्विक संवेदनशीलता पर आधारित प्रतिबद्धता का यह परिणाम है। फिर भी, अमेरिकी समाज व सरकार की दिलचस्पी का कोई बड़ा असर चीन पर नहीं पड़ा है। इसीलिए विगत कई वर्षों से हर बार अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोजन की सुनवाईयों में चीनी शासकों का दलाई लामा के प्रस्तावों को रद्द करते जाना जारी है।

तीसरी संभावना का विकास

इधर धीरे-धीरे एक तीसरी संभावना का भी उभार हो रहा है। चीन व अमेरिकी शासकों से अलग छोटे राष्ट्रों की जनता व शासकों का भी स्वर तिब्बत के प्रश्न पर उभर चुका है। वस्तुत: विश्व के राष्ट्रों में कुछ बड़े राष्ट्रों के इर्द-गिर्द ढेर सारे छोटे राष्ट्र फैले हुए हैं। अधिकतर बड़े राष्ट्र अपने इर्द-गिर्द के छोटे राष्ट्रों को जाने-अनजाने प्रताड़ित करते रहे हैं। बड़े राष्ट्रों के आगे छोटे राष्ट्रों की सुनवाई का कहीं प्रभावशाली मंच भी नहीं है। वैसे विश्व में छोटे राष्ट्रों का विराट बहुमत है। अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के इस सच को तिब्बत के प्रसंग में दुनिया भर के छोटे राष्ट्र पहचानने लगे हैं। प्रथम विश्व युद्ध व द्वितीय विश्व युद्ध में पीड़ा ग्रस्त हुये अनेक यूरोपीय राष्ट्र भी तिब्बत की न्याय की पुकार का पूरी गंभीरता से प्रत्युत्तर देने लगे हैं। लेकिन इसमें एशिया की भूमिका नगण्य है। दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन मण्डेला तक किसी भी एशियाई देश के नेता से ज्यादा संवेदनशीलता प्रदर्शित करते हैं। बेल्जियम, चेक रिपब्लिक, लिथुआनिया, डेनमार्क, नार्वे, आस्ट्रिया व कोस्टारिका जैसे देश इस प्रक्रिया में प्रमुख हैं। इस संभावना का अभी कोई असर नहीं है। क्योंकि इसको किसी शक्तिशाली देश की मदद नहीं है। भारत व यूरोपीय यूनियन मिलकर नैतिक नेतृत्व कर सकते हैं। यूरोपीय यूनियन में जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड व इटली में पर्याप्त सहमति के आसार हैं। लेकिन भारत क्या कर रहा है ? फिलहाल भारत की तरफ से पिछले कई वर्षों से तिब्बत के प्रश्न पर मानवाधिकार आयोग में चीन के ही पक्ष में मतदान किया गया है।

चीन व अमेरिका से परे विकसित हो रही मानवतावादी चिन्ता ने समूची परिस्थिति में गुणात्मक परिवर्तन शुरू कर दिया है। बुद्ध की करुणा व दलाई लामा की सार्वभौमिक उत्तरदायित्व की शिक्षाओं से आकर्षित व्यक्तियों के सहयोग से बन रही लोकशक्ति को किसी देश की राजशक्ति का संरक्षण प्राप्त नहीं है। लेकिन मामूली स्त्री-पुरुषों की छोटी-छोटी चेष्टाओं की निरंतरता से तिब्बत समर्थन अभियान इस दौर का सबसे बड़ा अंतर्राष्ट्रीय प्रयास बन चुका है। इसे तिब्बत की स्थानीय एवं प्रवासित जनता से लेकर चीन की जनतांत्रिक धारा, समूचे हिमालय की आस्थावान जनता, एशिया अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के स्वतंत्रतावादी व्यक्तियों व संगठनों तथा पश्चिमी दुनिया के बुद्धिजीवियों, संस्कृतिकर्मियों, शांति आंदोलन तथा युवा पीढ़ी का प्रबल व मुखर समर्थन है। विश्व के सभी छोटे देशों की संसद में तिब्बत समर्थक सांसदों की अच्छी संख्या है। भारत, अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस व इटली के तो मंत्रिमंडलों में भी तिब्बत मित्रों की उल्लेखनीय हैसियत है।

तब भी कुछ कमजोरियां हैं। इन कमजोरियों को कुछ लोग तिब्बती नेतृत्व की अहिंसा व संवाद के प्रति अटूट आस्था से जोड़ते हैं। कई विश्लेषणकर्ता इसमें दलाई लामा के व्यक्तित्व की केन्द्रीयता को कारण मानते हैं। प्राय: सभी बहसों में चीन और तिब्बत

की भौतिक-आर्थिक-सामरिक-राजनीतिक अतुलनीयता को लेकर आशंका की जाती है। अब अज्ञान व उपेक्षा के व्यूह टूट चुके हैं। इस समय आशंकाओं का जोर है।

कई लोगों का मानना है कि तिब्बत के प्रश्न पर सक्रियता का रास्ता अपनाने पर भारत को कश्मीर के प्रश्न पर चीन की आक्रामकता का शिकार होना पड़ सकता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि व राजनीति के कई विशेषज्ञों ने कश्मीर व तिब्बत की दशा के बुनियादी फर्कों को बार-बार साफ किया है। क्या कश्मीर 1947 या उसके लगभग स्वतंत्र राष्ट्र था जिसकी अपने पड़ोसी देशों के साथ अंतर्राष्ट्रीय संधियों का इतिहास है? क्या कश्मीर में धारा 370 के जरिये स्वायत्तता का पूरा संरक्षण नहीं हुआ है? क्या कश्मीर में जनमत संग्रह की संभावना का पाकिस्तान प्रेरित हमले के बाद स्वत: अंत नहीं हो गया?

तिब्बत के बारे में नौ भ्रम

चीन तिब्बत का प्रश्न उठाने पर क्या करेगा ? यह भी आशंका है कि दलाई लामा में आस्था रखने वाले तिब्बती वास्तविक स्वायत्तता व पूर्ण स्वतंत्रता के बीच अंतर को क्या सम्मान देंगे? यह घबराहट तो है ही कि तिब्बत का प्रश्न उठाने वाले पर चीन पूरी तरह से हमला कर देगा। इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। लेकिन किसी भी मूल्यांकन में यह ध्यान रखना होगा कि चीन की चेष्टाओं, विश्व राजनीति की वास्तविकताओं तथा तिब्बत मुक्ति-साधना के इतिहास व वर्तमान के कारण चौतरफा भ्रमों का बोलबाला है। इनमें से नौ भ्रमों का या मिथ्या प्रचारों का स्पष्टीकरण जरूरी है।

सर्वप्रथम, चीन की ओर से बारंबार यह निराधार प्रचार किया जाता है कि दलाई लामा व उनके अनुयायी चीन के टुकड़े-टुकड़े करने के अंतर्राष्ट्रीय षड़यंत्र के अगुवा हैं। यह सच है कि स्वतंत्र तिब्बत चीन का अंग नहीं था और न रहेगा। लेकिन जहां तक दलाई लामा का प्रश्न है उनकी ओर से प्रस्तावित सभी समाधानों में तिब्बत और चीन के सहअस्तित्व पर ही जोर है 'स्वायत्त स्वराज' (अटानामस तिब्बत विद जेनुइन सेल्फ रूल) का ही आग्रह है। पिछले नौ वर्ष में दलाई लामा के वार्षिक व विशिष्ट संदेशों में यह तथ्य बार-बार दुहराया गया है।

दूसरे, यह भी पूछा जाता है कि क्या तिब्बत का प्रश्न चीन विरोधी अभियान है ? तिब्बतियों व तिब्बत मित्रों की दृष्टि में यह समूची चेष्टा 'तिब्बत समर्थक' आंदोलन है। यह स्वाभाविक है कि इस संदर्भ में चीनी शासन की नीतियों की खुली आलोचना की जाती है। लेकिन चीनी जनता व चीनी संस्कृति के प्रति कोई बैर-भाव नहीं फैलाया जाता। उलटे, तिब्बत के सर्वोच्च नेता दलाई लामा का मानना है कि तिब्बत के साथ न्याय करने में चीन का भी हित है।

तीसरा भ्रम तिब्बत की मौजूदा स्थिति के बारे में है। क्या सचमुच तिब्बती संस्कृति का नाश हो रहा है? क्या यह दुनिया भर में सक्रिय कम्युनिस्ट विरोधी तथा अमेरिकन गुप्तचर संस्था सी.आई.ए. की प्रचार मशीन का फैलाया झूठ है? तिब्बत पर चीन के कब्जे के चार दशकों में अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग (इंटरनेशनल कमिशन आफ जूरिस्ट्स) जेनेवा, ने तिब्बत की दशा पर शुरू से अबतक लगातार निगाह रखी है। इसकी ताजा रपट दिसंबर 1997 में प्रकाशित की गई।* इसमें तिब्बत में चल रहे दमनचक्र व संस्कृति संहार का विस्तृत विवरण है। एम्नेस्टी इंटरनेशनल जैसी विश्व भर में मान्यता प्राप्त एक अन्य प्रमाणिक संस्था का भी यही निष्कर्ष है। तिब्बत को नजदीक से जानने वाले समाज वैज्ञानिकों, धर्माचार्यों, राजनयिकों व पत्रकारों का मूल्यांकन भी चौंकाने वाला है। वास्तविकता यह भी है कि सी.आई.ए. जैसी राष्ट्रीय राजनीतिक हितों से जुड़ी पश्चिमी देशों की एजेंसियों का तिब्बत के प्रश्न पर सदैव त्रुटिपूर्ण व उदासीन रुख रहा है। गुप्तचर संस्थाएं सिवाय अपने राज्य के किसी दूसरे का कब से हित करने लगी हैं ?

तीसरे प्रश्न के साथ ही चौथा भ्रम जुड़ा हुआ है–क्या तिब्बत के प्रश्न पर सिर्फ निर्वासित तिब्बतियों में आक्रोश है या स्थानीय तिब्बती जनता भी पीड़ा व अन्याय से क्षुब्ध है। दुनिया को भरमाने के लिए तिब्बत की स्वायत्त विकास यात्रा का मासिक व वार्षिक विवरण चीनी दूतावासों के जरिए विभिन्न देशों की भाषाओं में छापा व बांटा जाता है। तिब्बत की सरकारी यात्राएं भी करायी जाती हैं। लेकिन जनता व चीनी सैनिक शासन का रिश्ता खोलने वाले दो तथ्य विचारणीय हैं–एक, अगर तिब्बत में सब कुछ मंगलमय है तो पिछले दो दशक से बार-बार मार्शल-लॉ (फौजी कानून) की क्यों जरूरत पड़ती रही है ? दूसरे, अगर तिब्बती संस्कृति की स्वायत्तता की चीन ने रक्षा की है तो दलाई लामा के चित्र रखने व पंचेन लामा के उत्तराधिकारी के चयन का दलाई लामा द्वारा अनुमोदन करने पर एतराज क्यों है ? वास्तविकता यही है कि व्यापक असंतोष व दमन का द्वन्द्व चल रहा है। पिछले एक दशक में डेढ़ सौ से अधिक प्रदर्शनों व प्रतिरोधों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। दलाई लामा में जनता की अटूट और गहरी आस्था तथा तिब्बत के चीनीकरण से उत्पन्न असंतोष का डर चीनी शासकों को बराबर रहता है। यह बुनियादी बात है कि तिब्बत का प्रश्न 1959-60 में तिब्बत छोड़कर भारत में बसे दलाई लामा व उनके निकटतम सहयोगियों का ही सरोकार नहीं है। तिब्बत की दशा को लेकर तिब्बत देश में भी लगातार गहराता असंतोष ही इसका वास्तविक आधार है।

कई लोगों का मानना है कि तिब्बत के प्रश्न पर सक्रियता का रास्ता अपनाने पर भारत को कश्मीर के प्रश्न पर चीन की आक्रामकता का शिकार होना पड़ सकता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि व राजनीति के कई विशेषज्ञों ने कश्मीर व तिब्बत की दशा के बुनियादी फर्कों को बार-बार साफ किया है। क्या कश्मीर 1947 या उसके लगभग स्वतंत्र राष्ट्र था जिसकी

* इस पुस्तक में देखें।

अपने पड़ोसी देशों के साथ अंतर्राष्ट्रीय संधियों का इतिहास है? क्या कश्मीर में धारा 370 के जरिये स्वायत्तता का पूरा संरक्षण नहीं हुआ है? क्या कश्मीर में जनमत संग्रह की संभावना का पाकिस्तान प्रेरित हमले के बाद स्वत: अंत नहीं हो गया ? दूसरे स्तर पर असलियत यही है कि चीन कश्मीर में पूरी तरह से सक्रिय है। पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में कराकोरम दर्रे के आस-पास 800 किलोमीटर क्षेत्र में चीन ने स्वयं इस्तेमाल लायक सड़क बनायी है। यह सड़क कश्मीर को तिब्बत के जरिये चीन से जोड़ती है। इसी प्रकार हर मौके पर चीन भारत को नसीहत देता है कि कश्मीर एक दक्षिण एशियाई समस्या है और भारत व पाकिस्तान को परस्पर बातचीत करनी चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी चीन की कश्मीर सम्बन्धी तटस्थता का वास्तविक अर्थ पाकिस्तानी दावों की मौन पुष्टि जैसा ही माना जाता है। फिर चीन भारत की नैतिक सक्रियता की प्रतिक्रिया में नया क्या करेगा?

छठा भ्रम यह फैला हुआ है कि भारतीय राजनीति में तिब्बत का प्रश्न कुछ महत्वहीन राजनीतिज्ञों ने व दलों ने भारत-चीन मैत्री में अड़ंगेबाजी के लिए उठाया। अब यह प्रश्न विदेशी इशारे पर उठता है। सरदार पटेल, डा. राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी, डा. बाबा साहेब अम्बेडकर व श्री मोहम्मद करीम छागला श्री नेहरु के समकक्ष महत्व के राष्ट्र नायक थे। सभी तिब्बत के प्रश्न पर चीन की चेष्टाओं से असहमत व आशंकित थे। डा. राममनोहर लोहिया, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री दीनदयाल उपाध्याय व श्री मीनू मसानी जरूर गैर कांग्रेसी राजनीति से जुड़े थे लेकिन इनमें से किसी की भी देशभक्ति पर संदेह करना नादानी होगी। यह भी उल्लेखनीय है कि अब तक उपलब्ध सभी दस्तावेजों व संस्मरणों में तिब्बत की आजादी व भारत की सुरक्षा को एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में देखा गया है। भारत की ओर से विदेश सचिव या चीन में राजदूत रह चुके सभी विदेश नीति विशेषज्ञों ने तिब्बत के प्रश्न पर पुनर्विचार व संशोधन का बार-बार सुझाव दिया है। इनमें सर्व श्री ए. पी. वेंकटेश्वरन्, मुचकुन्द दुबे, जगत मेहता, एन. एन. झा व रंगनाथन् विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वर्तमान राजनीतिज्ञों में श्री वेंकटरमण, श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री रवि राय, श्री जार्ज फर्नांडिस, श्री इंद्रजीत गुप्त, श्री जनेश्वर मिश्र एवं श्री राम जेठमलानी की चिंताएं जगजाहिर हैं।

सातवां भ्रम यह है कि तिब्बत का प्रश्न सिर्फ दलाई लामा की पीढ़ी वाले तिब्बतियों का प्रश्न है। नई पीढ़ी वाले तिब्बती तिब्बत के अंदर आधुनिकीकरण तथा तिब्बत के बाहर पश्चिमीकरण से प्रभावित हैं। अपनी अस्मिता के बजाए चीनीकरण व अमरीकीकरण के प्रति ज्यादा आकर्षित हैं। हाल ही में दिल्ली में थुप्तेन न्योडुप की आत्माहुति, स्त्रियों द्वारा पेईचिंग में संपन्न विश्व महिला सम्मेलन के दौरान विरोध प्रदर्शन तथा तिब्बती युवक कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता के प्रश्न पर दलाई लामा द्वारा नरमी का खुला विरोध जैसे संकेत इस झूठ का पर्दाफाश करने के लिए काफी हैं। यह सतही प्रचार वैसे भी स्वतंत्रता आंदोलनों की प्रकृति का ज्ञान रखने वालों के लिए निरर्थक रहा है।

आठवां भ्रम इस आशंका के साथ जुड़ा है कि तिब्बत का प्रश्न उठाने पर चीन भारत पर पुन: 1962 जैसा हमलावर व्यवहार करेगा। इसलिए चुप रहना चाहिए। ऐसा मानने वाले यह भूल करते हैं कि स्वयं दलाई लामा बिना शर्त संवाद के आग्रही हैं। गांधीमार्ग पर चलकर सर्वानुमति की चेष्टा में हैं। फिर दलाई लामा के पक्षधर क्यों आघात व प्रहार का रास्ता खोलेंगे?

इस प्रसंग में नौवां व आखिरी महत्वपूर्ण भ्रम इस बात को लेकर है कि तिब्बत के सवाल पर सिर्फ कुछ भारतीय व अमेरिकी व्यक्तियों व समूहों के राष्ट्रवादी सरोकारों के कारण ही दिलचस्पी है; जबकि वास्तविकता दूसरी है। विगत वर्ष यूरोप के तीन सौ शहरों में नगरपालिका भवनों पर तिब्बती झण्डे फहराकर एकजुटता प्रदर्शित की गई है। यूरोपीय संसद में रेडिकल पार्टी के 45 सदस्य हैं और वे तिब्बत के प्रश्न को सर्वोच्च अंतर्राष्ट्रीय प्रश्न के रूप में प्राथमिकता देते हैं। जर्मनी के 35 शहरों में तिब्बत समर्थक नागरिक मंच सक्रिय हैं। इटली, फ्रांस, इंग्लैण्ड व आस्ट्रेलिया में तिब्बत मुक्ति समर्थक स्थानीय जन संगठनों के सक्रिय सहयोग से चलाए जा रहे हैं। विश्व भर में अहिंसावादी, पर्यावरणवादी तथा जनतंत्रवादी संगठनों का तिब्बत के प्रश्न पर अति सक्रिय सहयोग हो चुका है। इसीलिए पिछले 5 वर्ष में तीन बार तिब्बत समर्थक संसद सदस्यों व जनसंगठनों के पांच अंतर्राष्ट्रीय समागम भारत, लिथुआनिया, जर्मनी व अमेरिका में संपन्न हो चुके हैं। असलियत यह है कि भारत या अमेरिका की सरकार, भारत की तिब्बत मित्र संस्थाएं दोनों ही आज तिब्बत के प्रश्न पर विश्व जनमत या विश्वराजनीति का नेतृत्व नहीं कर रही हैं। **अमेरिका को चीनी बाजार का लोभ है। भारत को चीनी सेना का भय है।**

□

भय-मुक्त नीति की आवश्यकता

जार्ज फर्नांडीस

कोई चीन को कैसे यह कह सकता है कि आप अगर कश्मीर मुद्दे पर खास प्रकार का रुख लेंगे तो हम तिब्बत के बारे में चुप्पी साधे रहेंगे? इन दो स्थितियों में समानता देखी ही कैसे जा सकती है? क्या कश्मीर की समस्या तिब्बत की समस्या जैसी ही है? क्या इस प्रकार की बात को और इस प्रकार के तर्क को हम स्वीकार कर लेंगे? मुझे पता नहीं कि जब हमारे नीति-निर्धारक लोग चीन के साथ इस प्रकार की या किसी भी प्रकार की सौदेबाजी कर रहे थे तब उन्हें इस बात का ध्यान रहा कि नहीं कि दुनिया हमें क्या कहेगी। थियेनमेन चौक में विद्यार्थियों पर ढ़ाये गये अमानुनिषक जुल्म, तिब्बत में चीन द्वारा लगातार किये जा रहे विनाश – केवल पर्यावरण एवं प्रकृति का ही नहीं बल्कि पूरी जाति का नाश – इस सबके बावजूद भी भारत खुद को भी उन्हीं के स्तर पर लाकर यह कहेगा कि अच्छा, अब हमारे लिए यह खोज लेना जरूरी है कि आप और हमारे बीच में सहजीवन कैसे हो? चीन की इस समस्त विनाश लीला के बावजूद अगर हम इस प्रकार के सौदे करेंगे तो दुनिया हमें किस नजर से देखेगी यह कभी हमारे नीति-निर्धारकों ने सोचा है?

अपनी बात एक अनुभव से प्रारंभ करना चाहूंगा। 1991 के दिसम्बर में जब चीन के प्रधानमंत्री लिपेंगे भारत यात्रा पर आये तब का यह अनुभव है। लिपेंगे की यह यात्रा विवादास्पद थी, हालांकि भारत सरकार के आमंत्रण पर ही वे आये थे।

इसके पूर्व हमारे प्रधानमंत्री चीन के दौरे पर गये थे और भारत सरकार की तरफ से भरसक प्रयास किये गये कि जब चीनी प्रधानमंत्री हमारे यहां आये तब उन्हें किसी भी प्रकार की असुविधा नहीं हो। उन प्रयासों में था – शहर के एक हिस्से में बड़ी संख्या में लोगों की रोकथाम करके उसे सील करना, इस राजधानी के नागरिकों को, भारतीय नागरिकों को, सड़कों पर चलने से रोकना, कुछ लोगों को कुछ खास इलाकों में न जाने की हिदायत देना, सुरक्षा प्रहरियों का छतों पर चढ़कर देखना कि लोग अपनी खिड़की न खोलें, संसद सदस्यों के घरों के फाटकों पर चिटखनियां चढ़ा देना। इस सबसे जिन

लोगों को असुविधा हुई, उनमें से मैं भी एक था। इस तरह के तमाम इंतजाम अपने आप में प्रजातांत्रिक कहलाने वाले देश में शर्मनाक है। हममें से कुछ लोगों को संसद तक पैदल चलना पड़ा, क्योंकि सड़कें बंद थीं, यातायात की अनुमति नहीं थी। घर से संसद तक का जो रास्ता लगभग दस मिनट का है, इसमें करीब घंटा-घंटा भर लगा क्योंकि लोगों को काफी घूमकर जाने के लिए कहा गया था।

लेकिन यहां के तिब्बती समुदाय के लोग इस तरह ठेल दिये जाने के लिए तैयार नहीं थे, उन्होंने सरकार के हरेक आदेश की अवहेलना की, वे विरोध करने के लिए सड़कों पर आए, जैसा कि कोई भी आम नागरिक कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में विरोध किया ही जाना चाहिये। वे अपने मौलिक अधिकार का उपयोग करते हुए चीनी प्रधानमंत्री से कहना चाहते थे कि वे उनकी इस यात्रा के बारे में क्या सोचते हैं, विशेषकर इस परिस्थिति में जबकि तिब्बती लोग आज़ादी की मांग कर रहे हैं। ऐहतियात के तौर पर उनमें से सैकड़ों लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। सुरक्षा कर्मी जिस किसी को भी तिब्बती समझता था चाहे वे 'थाई' हो या 'बर्मी', पकड़ लिया गया। जब चीनी प्रधानमंत्री राजघाट गांधी समाधि जा रहे थे, तिब्बती वहां प्रदर्शन करना चाहते थे। उनकी पिटाई की गई और अन्ततः उन्होंने गुस्से में बौखलाकर चीनी राष्ट्रीय ध्वज जलाना तय किया। इसके बदले और अधिक गिरफ्तारियां हुई। प्रत्येक गिरफ्तारी अन्यायपूर्ण थी। इस सबमें कुछ भी विधि सम्मत या न्याय संगत नहीं था।

अगर हम सुरक्षा से जुड़े अन्य मुद्दों पर बात करें, जिसमें सबसे अहम् मुद्दा परमाणु हथियारों का है, तो हम जानते हैं कि चीन के पास परमाणु हथियार हैं। चीन को कोई भी यह नहीं कह सका है कि इन हथियारों का क्या करे। इस मुद्दे पर चीन किसी की नहीं सुनेगा। और इन परमाणु हथियारों का मुँह बॉन या कॅनबरा या टोकियो या वाशिंगटन की तरफ नहीं रखा गया है। आज की तारीख में इन हथियारों का मुँह चीन के दक्षिण की तरफ है।

इस कारण हमें इस मुद्दे को संसद में उठाने का अवसर मिला। बड़े योजना बद्ध तरीकों से इस मुद्दे पर होने वाली चर्चा को बंद कराने के प्रयास किये गये। साथ ही ये भी प्रयास किये गये कि किसी तरह मानवाधिकार हनन के ये मुद्दे यहां, इस देश की राजधानी में, हमारी संसद में जोर देकर न उठाए जाएं। और तब हम सर्वोच्च न्यायालय में गए और हमें दो अति महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक निर्णय प्राप्त हुए। पहला, सर्वोच्च न्यायालय ने बिना किसी शर्त सभी बंदियों की रिहाई का आदेश दिया, और यह भी तय किया कि इसके लागू किये जाने में कार्यपालिका की ओर से कोई रुकावट न हो। दूसरा आदेश था-तिब्बती भारत में शरणार्थी हैं इसमें कोई संदेह नहीं, लेकिन फिर भी उन्हें इस देश में मानवाधिकार प्राप्त हैं। उनमें से एक अधिकार है कि वे ऐसे किसी उद्देश्य के लिए, जो उनके लिए महत्त्वपूर्ण है, विरोध प्रदर्शन कर सकते हैं। ऐसे विरोध प्रदर्शन में यदि

राष्ट्रीय ध्वज जलाने की नौबत आए तो उन्हें वह राष्ट्रीय ध्वज जलाने का अधिकार है, और कार्यपालिका इस तरह के प्रदर्शन के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकेगी।

हम चीन विरोधी नहीं है। हम सब चाहते हैं कि चीन से हमारे सम्बन्ध प्रगाढ़ मैत्रीपूर्ण हों। चीन न केवल जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा देश है, किन्तु इसका एक इतिहास है, दुनिया की अनेक प्रजाओं को जिससे ईर्ष्या हो ऐसी चीन की संस्कृति रही है, अनेक संभावनाओं से भरा वह देश है। ये संभावनाएं विश्व के हित में उजागर होंगी या वे अन्ततोगत्वा विश्व को कहां ले जाएंगी इस बात पर विवाद हो सकता है जिसमें हम अभी नहीं पड़ेंगे। जिम्मेदार लोगों की हैसियत से तथा संसद सदस्य की हैसियत से जब कोई तिब्बत के मसले पर अपनी चिन्ता प्रगट करता है तथा तिब्बत के हित की बात करता है तब चीन अनेक प्रकार की बाधाएं खड़ी करता है; चाहे वह मुद्दा संसद के भीतर या संसद के बाहर ही क्यों न उठाया गया हो। इस मुद्दे पर जो भी कुछ करने लायक है वह अपने दफ्तर के कमरों में बैठकर ही नहीं किया जा सकता। ऐसी अनेक चीजें होंगी जिसके लिए हमें अपने संसदीय कक्ष, दफ्तर तथा घरों से बाहर निकलकर करना पड़ेगा। हम लोगों के प्रतिनिधि हैं जिसके कारण हमें न केवल विशेष अवसर ही मिला है किन्तु ऐसे मुद्दों पर खड़े होने की नैतिक तथा राजनैतिक सत्ता भी मिली हुई है।

क्योंकि चीन सैनिक और आर्थिक दृष्टि से ताकतवर है इस वजह से हमें सही और गलत के बीच चुनाव करने में हिचकिचाहट होती है। भारत सरकार का अपना ही रवैया देखिए। मुझे इस बात से कतई इंकार है कि सत्ता में बैठा कोई भी व्यक्ति हमारी रक्षा-आवश्यकताओं को नहीं पहचानता। अगर इन प्रश्नों से अनभिज्ञ ऐसा कोई व्यक्ति सत्ता और जिम्मेदारी के स्थान पर पहुंच भी जाता है तो हमारे पास एक कायमी सरकारी तंत्र है, प्रशासन है, जिसके पास हमारे देश की सुरक्षा की समस्या के विषय में किसी को भी योग्य रूप से शिक्षित करने की पूरी व्यवस्था है।

तिब्बत में परमाणु कचरे के बारे में ठीक ही कहा गया है। चीन जब तिब्बत में परमाणु कचरा डाले जा रहा है तो तिब्बत के लोगों के अलावा किसी और से अधिक वह हमें ही प्रभावित करने वाला है। क्योंकि जो बड़ी-बड़ी नदियां हमारे देश में आती हैं और जो भारत में बहती हुई समुद्र में मिलती हैं उनका उद्‌गम स्थल तिब्बत ही तो है। इसके ऊपर से चीन ने तिब्बत क्षेत्र में जो बड़े पैमाने पर पर्यावरण विनाश किया है, पेड़ों को काट डाला है, तिब्बत को रेगिस्तान बनाया जा रहा है-इन सब कारणों से भारतीय नदियों में 'गाद' भरती है। हमारे उत्तर-पूर्व के क्षेत्र में-आसाम में हम यह अनुभव कर ही रहे हैं। और इससे आगे नीचे बंगलादेश में नदियों में जो कुछ घटित हो रहा है, उसके कारण खानाबदोश लोग सैकड़ों की संख्या में मर रहे हैं। लेकिन किसी ने भी कभी चीन की ओर अंगुली नहीं उठाई, बंगलादेशियों ने भी नहीं। वे तो ये भी नहीं कहेंगे कि ये नदियां

किसी स्थान विशेष से आ रही हैं, कि जंगलों की कटाई हो रही है कि ये नदियां अपने साथ नीचे हमारे देश में 'गाद' ला रही हैं, और हम यहां हैं।

अगर हम सुरक्षा से जुड़े अन्य मुद्दों पर बात करें, जिसमें सबसे अहम् मुद्दा परमाणु हथियारों का है, तो हम जानते हैं कि चीन के पास परमाणु हथियार हैं। चीन को कोई भी यह नहीं कह सका है कि इन हथियारों का क्या करे। इस मुद्दे पर चीन किसी की नहीं सुनेगा। और इन परमाणु हथियारों का मुँह बॉन या कॅनबरा या टोकियो या वाशिंगटन की तरफ नहीं रखा गया है। आज की तारीख में इन हथियारों का मुँह चीन के दक्षिण की तरफ है।

तिब्बत के बारे में कुछ भी करने में यही बाधक कारण हैं जिनको अनिवार्य रूप से आगे कर दिया जाता है। आगे न भी किया जाय तब भी चीन और उसके पड़ौसियों के विषय में जब भी कोई चर्चा उठती है तब दिमाग में तो ये बातें रहती ही हैं। संसद सदस्यों के बीच भी यही स्थिति है ऐसा मैंने हमेशा पाया है।

लंदन में एक सभा में मैं बोल रहा था। ये बात 1989 की है। उसमें सभी ब्रितानी संसद-सदस्य थे। बार-बार एक ही प्रश्न मेरे समक्ष रखा जा रहा था। वह था–सुरक्षा का प्रश्न – "आप चीन से कैसे निपटेंगे?" तब मुझे क्रिकेट टीम का सिद्धांत प्रस्तुत करना पड़ा। मैंने कहा एक टीम ग्यारह सदस्यी है और एक टीम नौ सदस्यी, तो उन्नीस-बीस संतुलन बराबर-सा है। यदि वे लोग एक अरब दस करोड़ हैं तो हम लोग भी लगभग नब्बे करोड़ हैं। अनुपात 11 : 9 का बैठा, तब भी हम ठीक हैं, चिन्ता न करें। और जहां तक मैदान का सवाल है, हम उनसे बेहतर स्थिति में हैं। मैंने यह बातें कहीं, शायद उन्हें इसमें एक तरह की झुंझलाहट का आभास हुआ होगा। लेकिन ऐसा था नहीं। क्योंकि मैं मानता हूँ कि चीन के विषय में एक तरह का जो डर लोगों के दिमाग में भरा जा रहा है उससे निबटे बिना हम किसी भी प्रकार की सार्थक पहल नहीं कर पायेंगे।

तिब्बतियों की दूसरी समस्या है, उनके सिर पर हाथ रखने वाला कोई नहीं है क्योंकि इस समय उनका कोई देश नहीं है। अगर उनके पास देश होता तो उनको पूछने वाले बहुत होते। इस समय जो लोग इस विश्व की विभिन्न परिषदों में उस मुद्दे को ले जा सकते हैं, दृढ़ता पूर्वक उठा सकते हैं, उनमें से कोई भी तिब्बतियों को अपनी पांख में लेने को तैयार नहीं हैं। इनमें से कोई नहीं जो कहे कि हाँ, यह एक मुद्दा है जिस पर संघर्ष की आवश्यकता है और हम इसे कुछ सिद्धान्तों के आधार पर उठा रहे हैं।

आज की अधिकतर राजनीति, विशेषकर हमारे इस क्षेत्र में धर्म के इर्द-गिर्द चलती है। आपके पास कश्मीर मुद्दा है तो धर्म एक भूमिका निभाता है, इस्लामिक राष्ट्रों का संघ एक भूमिका रखता है। मैं यहां उनको घसीटना नहीं चाहता। असल बात यह है कि विश्व-संदर्भ में धर्म की एक अहम् भूमिका राजनीति में बनी हुई है। किन्हीं कारणों से तिब्बत ऐसा नहीं कर सकता। उन्होंने धर्म को कभी हथियार नहीं बनाया। किसी ने तिब्बत को एक ऐसे मसले के रूप में नहीं देखा जहां धार्मिक एकता या भाईचारे के लिए एक

धर्म विशेष उन्हें आवश्यक मददगार होकर सहायता पहुंचा सके। इसलिए जब कभी तिब्बत के भविष्य के बारे में चर्चा चलती है तो दिक्कत पैदा होती है। हमारे लिए, मेरे लिए, एक भारतीय होने के नाते, तिब्बत का अर्थ केवल स्वाधीनता संघर्ष ही नहीं है।

तिब्बत का हमारे लिए सबसे पहले माने हैं–विश्वासघात; विश्वासघात जो 1947 में किया गया, विश्वासघात जो 1950 में भी किया गया। हमें इसके लिए प्रायश्चित करना होगा। हम आज यह नहीं कह सकते कि तिब्बत तिब्बतियों का मसला है। यह समस्या हमने पैदा की है–पूरी तरह से। जो भी कोई दिल्ली पर राज करे उसे देश की सुरक्षा की चिन्ता करनी ही होगी, अन्यथा अधिक समय तक दिल्ली के तख्त पर नहीं बने रह सकते।

जब ब्रिटिश गए, उन्होंने कहा कि तिब्बत एक 'बफर' राज्य है, तिब्बत हमेशा सदियों से एक स्वतंत्र राष्ट्र रहा; और अगर आप अपने देश को चलाना चाहते हैं तो आप देखें कि तिब्बत जैसा है वैसा ही रहे, जैसा कि हम आपके लिए छोड़ जा रहे हैं। विश्वासघात यहीं पर हुआ; याद रहे वह विश्वासघात ही था। किसके द्वारा, कैसे, क्यों–ये सारे ऐतिहासिक तथ्य हैं। हम इनमें नहीं जायेंगे।

तिब्बत कई भिन्न-भिन्न रूपों में हम पर प्रभाव डालता है; उदाहरणार्थ–पर्यावरण, हमारी नदियां, एक मानवाधिकार की भी समस्या है और मेरा ऐसा मानना है कि यदि भारत विश्व में मानवाधिकार पर नहीं बोलता तो हम निर्माल्य ही कहे जायेंगे। यह

एक टीम ग्यारह सदस्यी है और एक टीम नौ सदस्यी, तो उन्नीस-बीस संतुलन बराबर-सा है। यदि वे लोग एक अरब दस करोड़ हैं, तो हम लोग भी लगभग नब्बे करोड़ हैं, तो अनुपात 11 : 9 का बैठा। तब भी हम ठीक हैं, चिन्ता न करें। और जहां तक मैदान का सवाल है, हम उनसे बेहतर स्थिति में हैं। मैंने यह बातें कहीं, शायद उन्हें इसमें एक तरह की झुंझलाहट का आभास हुआ होगा। लेकिन ऐसा था नहीं। क्योंकि मैं मानता हूँ कि चीन के विषय में एक तरह का जो डर लोगों के दिमाग में भरा जा रहा है उससे निबटे बिना हम किसी भी प्रकार की सार्थक पहल नहीं कर पायेंगे।

गांधी का देश है यह हमेशा याद रखना होगा; हमें इसे भूलना कदापि स्वीकार्य नहीं होगा। हमने अपना नैतिक बल और मान्यता खो दी है। 1949 में तिब्बत के साथ जो हुआ तबसे लेकर आज तक हमारे व्यवहार के कारण एक रूप में, तथा नागरिक स्तर पर इसमें से प्रत्येक ने जो कुछ किया या नहीं किया उस कारण नागरिक के रूप में भी हमारी नैतिक सत्ता का पतन हुआ है। यह पतन दोनों स्तर पर हुआ है। गांधी के पास देश नहीं था। भारत तब तक एक गुलाम राष्ट्र था। लेकिन उनमें वह बल था, उनके पास नैतिक सत्ता थी जो विश्व में कहीं भी लोगों को झकझोर सकती थी। वह शक्ति विश्व में लोगों को कहीं भी प्रेरित कर सकती थी। तिब्बती प्रजा के मानवाधिकार पर हो रहे

अत्याचार का मुद्दा उठाने में हमें कठिनाई शायद इसलिए हो रही है कि हमारी नैतिक सत्ता का नागरिक तथा राष्ट्र – दोनों स्तरों पर पतन हो गया है। दबी जबान से हम यह तो कह देते हैं कि हाँ, यह समस्या तो है ही, लेकिन इन मुद्दों को लेकर कुछ सौदा किया जा सकता है।

कोई चीन को कैसे यह कह सकता है कि आप अगर कश्मीर मुद्दे पर खास प्रकार का रुख लेंगे तो हम तिब्बत के बारे में चुप्पी साधे रहेंगे? इन दो स्थितियों में समानता देखी ही कैसे जा सकती है? क्या कश्मीर की समस्या तिब्बत की समस्या जैसी ही है? क्या इस प्रकार की बात को और इस प्रकार के तर्क को हम स्वीकार कर लेंगे? मुझे पता नहीं कि जब हमारे नीति-निर्धारक लोग चीन के साथ इस प्रकार की या किसी भी प्रकार की सौदेबाजी कर रहे थे तब उन्हें इस बात का ध्यान रहा कि नहीं कि दुनिया हमें क्या कहेगी। थियेनमेन चौक में विद्यार्थियों पर ढ़ाये गये अमानुषिक जुल्म, तिब्बत में चीन द्वारा लगातार किये जा रहे विनाश–केवल पर्यावरण एवं प्रकृति का ही नहीं बल्कि पूरी जाति का नाश–इस सबके बावजूद भी भारत खुद को भी उन्हीं के स्तर पर लाकर यह कहेगा कि अच्छा, अब हमारे लिए यह खोज लेना जरूरी है कि आप और हमारे बीच में सहजीवन कैसे हो! चीन की इस समस्त विनाश लीला के बावजूद अगर हम इस प्रकार के सौदे करेंगे तो दुनिया हमें किस नजर से देखेगी यह कभी हमारे नीति-निर्धारकों ने सोचा है ?

□

...सोवत है वह खोवत है...

यह एक चिंताजनक तथ्य है कि इस देश में चीन के बारे में जितनी भी जानकारी और विशेषज्ञता है उसे संकलित करने का न तो कोई गंभीर प्रयास किया गया और न ही अब तक कोई उपयोग किया गया। शायद ऐसा इतिहास के प्रति हमारे उपेक्षापूर्ण रुख के कारण है जबकि चीनी नियमित और सावधानीपूर्वक इतिहास का सूक्ष्म और विस्तृत रिकार्ड रखते और तथ्य इकट्ठा करते हैं। उदाहरण के लिए कू फू में रह रहा कन्फ्यूशियस के वंशजों का परिवार पीढ़ियों से अपने जीवन में घटने वाली घटनाओं का विस्तृत विवरण रखता है। इसमें युद्ध से लेकर अकाल तक, उपभोक्ता सामग्रियों की कीमत से लेकर उस काल में हो रहे सामाजिक-सांस्कृतिक विकास तक की जानकारी शामिल है। यह ऐतिहासिक परंपरा चीनी अधिकारियों के कार्यकलापों में भी प्रकट होती है–चाहे वे घरेलू मामले हों या विदेश नीति।

यह राष्ट्रीय हित के मामलों में नई दिल्ली द्वारा संचालित एक ढीले, बिखरे हुए रवैये के ठीक विपरीत है। यहाँ यह याद करना उपयोगी होगा कि भारत सरकार को पहली बार चीन द्वारा भारतीय सीमा के पश्चिमी भाग अक्सई चिन में अतिक्रमण का पता एक चीनी पत्रिका में ही दिये गए रेखा-मानचित्र से मिला।

–ए.पी. वेंकटेश्वरन

भू. पू० विदेश सचिव, भारत सरकार

'लेफ्ट', 'राइट' या 'सेन्टर'
लेकिन
तिब्बत पर एक मत

तिब्बत के संघर्ष का समर्थन सभी प्रकार के राजनैतिक दलों और विचारधाराओं की सीमाओं को लांघ गया है यह तथ्य कुछ वक्तव्यों से स्पष्ट हो जाता है। वैसे इस सत्य के लिए किसी प्रमाण की जरूरत नहीं है, किन्तु सभी दलों के भीतर सशक्त और वरिष्ठ नेतृत्व के स्तर पर समर्थन होने के बावजूद भारत सरकार का समर्थन क्यों नहीं है? क्या यह इन दलों से भिन्न किसी और ही मिट्टी की बनी है? समस्त राजनैतिक दलों के भीतर जिसके विषय में एकरूपता है उस विषय में भारत सरकार की विपरीत और शर्मनाक दृष्टि क्या इस बात का प्रमाण है कि उस पर लोकमत का नहीं किन्तु किसी अदृश्य मत का ही प्रभाव है?–सं.

चीन सरकार ने तिब्बत के बारे में शांतिपूर्ण इरादों की बात करके हमें बहकाने की कोशिश की है। इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि हमसे पत्रचार की अवधि में वे तिब्बत पर आक्रमण की तैयारी में लगे रहे। दु:ख की बात है कि तिब्बती हममें विश्वास करते हैं, उन्होंने हमसे मार्गनिर्देश चाहा, और हम उन्हें चीनी कूटनीति की दुर्भावना के जाल से निकालने में नाकाम रहे हैं।

– सरदार वल्लभभाई पटेल (1950)

तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री एवं गृहमंत्री

नवम्बर 1950 में चीन की सशस्त्र सेना द्वारा तिब्बत पर किये गये अतिक्रमण का मुददा अल साल्वादोर के द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाये जाने पर इस विषय को सामान्य सभा में भेज दिया गया, लेकिन इस सभा ने भारत के प्रतिनिधि नवानगर के जामसाहिब के आश्वासन के कारण 'फिलहाल स्थगित' रखा। जाम साहिब ने सभा को यह आश्वासन दिया था कि "चीन की सेना छम्दों पर कब्जा करने के बाद रूक गई है, और यह स्थान लहासा से 480 किलोमीटर दूर है" तथा "भारत की सरकार पक्के तौर पर विश्वास करती है कि अभी भी तिब्बत की समस्या का शांतिपूर्ण हल निकाल लिया जायेगा।" तिब्बत में हाल कि घटनाओं से स्पष्ट है कि चीन की सरकार फिर से बड़े पैमाने पर

और कठोर हिंसा पर उतर आई है। इन संयोगों में यह आशा करना उचित ही है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की अपनी उस कार्यवाही को फिर से शुरू कर देगा जिसे उस समय उन्होंने 'फिलहाल स्थगित' कर रखा था, भारत ने क्योंकि उस समय संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा को आश्वासन दिया था, इसी वजह भारत की स्पष्ट जिम्मेदारी बनती है।

–जयप्रकाश नारायण 3 जून, 1959

यदि भारत ने तिब्बत को मान्यता प्रदान की होती, जैसा कि उसने 1949 में चीनी गणराज्य को प्रदान की थी, तो आज भारत-चीन सीमा विवाद न होकर तिब्बत-चीन सीमा विवाद होता। माओ को पंचशील में थोड़ा भी विश्वास नहीं है और यह भी कि राजनीति में पंचशील का कोई स्थान नहीं होता। चीन को ल्हासा पर अधिकार करने देकर प्रधानमंत्री ने चीनी लोगों को अपनी सेनाएं भारत की सीमा पर ले आने में पूरी सहायता पहुँचाई है।

–डॉ. भीमराव अंबेडकर (1954)

हमारी सीमा मैक्महोन रेखा कहलाती है, मगर यह सीमा मैक्महोन ने नहीं निर्धारित की थी। यह केवल एक नाम है जो अतीत काल से हिमालय की ऊँचाईयों पर, जहाँ से नदियों का उद्गम होता है, भारत और तिब्बत को विभाजित करने वाली रेखा थी। . . . मुझे मानना पड़ता है कि सत्य को झूठ बताने और झूठ को सत्य प्रतीत कराने के चीनी प्रयास ने मुझे भौंचक्का कर दिया है। वे उस जमीन पर चढ़ आए हैं जो पिछले दस हजार वर्षों में भी कभी उनके पास नहीं थी। केवल तिब्बत पर कब्जे के माध्यम से चीन सरकार यह दावे कर रही है जो स्वयं केवल 12 वर्ष से अस्तित्व में है।

–जवाहरलाल नेहरू (1962)

आज़ादी सबसे पवित्र वरदान है–इसे हर ढंग से सुरक्षित रखा जाना चाहिए–हिंसा या अहिंसा से। इसलिए तिब्बत को चीन के लौह-पाश से आज़ाद करवाकर तिब्बतियों को सौंपना होगा।

–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (1962)

दस बरस पहले हिन्दुस्तान की सरकार और जनता ने चुप्पी साधकर बहुत नुकसान किया; दुनिया भर का, तिब्बत का और अपने देश का। उस वक्त तिब्बत पर चीनी आक्रमण पर मेरे ही जैसे कुछ आदमी थे, जिन्होंने कहा था, यह शिशुहत्या हो रही है। तब कुछ लोगों ने कहना शुरू किया कि लो, और नहीं बनता तो हिन्दुस्तान और

चीन का रिश्ता ही बिगाड़ रहे हैं। उस वक्त उन्हें चीन की चासनी दिखाई पड़ रही थी . . .

तिब्बत के मामले में मुझे कोई लम्बी बहस नहीं करनी है। मैं समझता हूँ कि तिब्बत आज़ाद होना चाहिए, आज़ाद रहा है। ऐसा भी वक्त था, जब तिब्बत ने चीन पर राज किया। जो लोग इतिहास की सनदें निकालकर भविष्य की दुनिया का निर्माण करना चाहते हैं, उनसे तो मैं कहूँगा कि वह सनद निकालो जिसमें तिब्बत ने चीन पर राज किया था, और चीन पर तिब्बत का राज कायम कर दो। सनद से क्या मतलब, असलियत देखो।

–डॉ. राममनोहर लोहिया (1963)

तिब्बत चीन का अंदरूनी मामला नहीं है। चीन बंधा हुआ है तिब्बत की स्वायत्तता का आदर करने के लिए, तिब्बत के अंदरूनी मामलों में दखल न देने के लिए। लेकिन वह समझौता टूट गया और अब भारत को भी अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए। समझौते दोनों तरफ से चलते हैं, दोनों तरफ से पालन होते हैं। अगर चीन ने समझौता तोड़ दिया, तो हमें अधिकार है कि हम अपनी स्थिति पर फिर से विचार करें।

–अटल विहारी वाजपेयी (1959)

हम चीनी शासकों से अनुरोध करते हैं कि वे तिब्बती जनता की समस्याओं के शांतिपूर्ण समाधान के लिए दलाई लामा के प्रतिनिधियों से बातचीत शुरू करें। इसका समाधान हिंसा और दबाव के माध्यम से नहीं हो सकता।

–इंद्रजीत गुप्त (1992)

भा.क.पा. नेता और केन्द्रीय गृह मंत्री-1996-98

दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद मिटाने हेतु संघर्ष करने वाला भारत क्या यह नहीं जानता है कि उसकी सीमाओं पर शांति रंगभेद विरोधी आंदोलन से नहीं, बल्कि तिब्बत की आज़ादी से आएगी? तिब्बत की आज़ादी जरूरी है, भारत के छिने हुए भू-भाग की वापसी के लिए, तिब्बत की आज़ादी जरूरी है एशिया में शांति और शक्ति संतुलन के लिए।

–नरेश मेहता

कवि

चीन में माओ की क्रांति के बाद यह साफ हो गया कि चीनी तिब्बत पर कब्जा जमाने के लिए बढ़ेंगे। यह मेरी दृढ़ धारणा है कि भारत इतिहास के उस निर्णायक मौके पर तिब्बत के मामले में नाकाम रहा। न सिर्फ तिब्बती जनता के लिए बल्कि भारत की जनता के

लिए भी इसका विनाशकारी परिणाम हुआ। चीनी सेना एकदम भारत के करीब आ गई और उसका क्या नतीजा हुआ यह हम सब जानते हैं।

–जार्ज फर्नांडीस (1989)
रक्षा मंत्री, 1998-

यह निर्विवाद है कि भारत की विदेश नीति की धुरी कम्युनिस्ट चीन के साथ उसका सम्बंध ही हो सकता है। 5 अप्रैल 1959 को पं. नेहरू ने भारत के चीन के साथ सम्बन्धों को चलाने के लिए तीन निर्देशक तत्व निर्धारित किये थे। वे थे–भारत की सुरक्षा तथा क्षेत्रीय अखंडता, चीन के साथ मैत्री और तिब्बती जनता के कष्ट की चिंता। लेकिन अतीत में इनमें से दो की प्राय: उपेक्षा ही हुई है क्योंकि हमने चीन की मैत्री घोषणाओं को वैसे ही मान लिया था। भारत की सरकार ने सुरक्षा के मुख्य आधार तिब्बत को व्यवहार में छोड़ ही दिया था, उसके पहले ही जब तिब्बत की स्वतंत्रता पर गंभीर खतरा पैदा हुआ। जैसे-जैसे खतरा बढ़ा, भारत इस विश्वास की ओर बढ़ा कि चीनी तिब्बत प्रश्न को शांतिपूर्ण निपटाएंगे। एशिया में और खासकर तिब्बत में कम्युनिस्ट चीन के उद्देश्यों पर भारत ने कोई ध्यान नहीं दिया। इस तरह तिब्बत में आत्मसमर्पण की नीति से 'पंचशील' का जन्म हुआ।

–गिरिलाल जैन (1960)
भू.पू. संपादक, 'टाइम्स ऑफ इंडिया'

तिब्बत आज भारतीय कूटनीति के सामने एक प्रमुख मुद्दा है। तिब्बत पर अपने औपचारिक रुख को बदले बिना भी भारत राजनीतिक, नाभिकीय कचरे तथा पर्यावरण सम्बन्धी मामलों को निश्चित रूप से उठा सकता है, जो भारत के लिए सीधी चिंता के विषय हैं। इस बीच तिब्बत में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में हमारे देश में ज्यादा जागरूकता लाने के लिए एक विस्तृत आंदोलन की आवश्यकता है ताकि सरकार तिब्बत के बारे में भारतीय जनता के हितों को चीनी सरकार के साथ उठा सके।

–निखिल चक्रवर्त्ती (1993)
भू. पू. संपादक 'मेनस्ट्रीम'

तिब्बत प्रश्न पर वामपंथियों के मौन के पीछे एक विशिष्ट मानसिकता और परंपरा जिम्मेदार है। हमारी ऐसी समझ रही है कि जो अमरीका या देश के अंदर दक्षिण पंथी दल करें वह गलत होगा। चूँकि तिब्बत के प्रश्न को ज्यादातर ऐसे लोग ही उठाते रहे इसलिए हम उनसे बचते रहे। पर चीनियों के अत्याचार के आगे तिब्बती कभी नहीं झुकेंगे। भारत को चीन पर दबाव डालना चाहिए कि वह तिब्बत में नागरिक अधिकारों का दमन बंद करे। भारत की सभी राजनीतिक पार्टियों को तिब्बत में दमन के प्रश्न को उठाना चाहिए।

–मोहित सेन (1994)
महासचिव, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी

मेरा दिल तो तिब्बत की उस घोर पीड़ा में उसकी तरफ था मगर मैं कुछ करने में नाकाम रहा, इसलिए कि तब मैं खुद ज्ञानहीन मार्क्सवादी होने के कारण तथ्यों को पूरी तरह समझ नहीं पाया। लेकिन अपने हिस्से की जिम्मेदारी से बचने का मेरे पास कोई बहाना नहीं है। आज मैं अपना वह दोष बड़े दु:ख के साथ, अपने अंत:करण से स्वीकार करता हूँ।

–आर.के.करंजिया (1995)
संपादक 'ब्लिट्ज'

'दक्षिण एशिया में सुरक्षा समस्याओं पर अमरीकी केवल पाकिस्तान और भारत की चर्चा करते हैं, चीन का नाम नहीं लेते। बीजिंग के विशेषज्ञों के अनुसार ही पिछले दो वर्ष में चीन ने बर्मा को दो अरब डॉलर मूल्य के हथियार दिए हैं। . . . हमसे नाभिकीय अप्रसार मामले पर बातचीत में शामिल होने के लिए कहा जाता है इसका मतलब है कि भारत चीन से अपनी सुरक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव को भूल जाए।

–इंद्र कुमार गुजराल (1994)
प्रधानमंत्री, 1996-98

□

सही सरदार को भुलाने का खामियाजा

तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा 1950 में दलाई लामा के भारत आने से नौ वर्ष पहले नेहरूजी को लिखे गये विस्तृत पत्र में चीन के तिब्बत पर अधिकार कर लेने के बाद, भारत की उत्तरी सीमा को चीनियों से गंभीर खतरे की चर्चा की गई है, साथ ही वे इस मामले में भारत के विदेश मंत्रलय द्वारा उठाये गये कमजोर कदमों की भी आलोचना करते हैं। उन्होंने विशेष रूप से 'चीनी खतरे की तुरंत सैनिक समीक्षा' सीमा पर टुकड़ियों की तैनाती और चीनी खतरे के मद्देनजर रक्षा-आवश्यकताओं पर दूरगामी पुनर्विचार की अनुशंसा की थी।*

लेकिन नेहरू जी अपने इसी दृष्टिकोण पर चलते रहे कि दोनों एशियाई महाशक्तियाँ विश्व को बदलने में सहयोगी होंगी। एक तरह से तिब्बत की दुर्दशा में उनका भी योगदान रहा, क्योंकि वे भारत-चीन वार्ताओं में इसके स्वशासन के बारे में दबाव नहीं डाल सके। भारत चीन सम्बन्धों का 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' ही मुख्य आधार रहा, जब तक इतिहास ने सरदार पटेल को सही नहीं सिद्ध कर दिया। 1962 के युद्ध में भारत की पराजय, जिसे रोकने में नेहरू असफल रहे, के बाद उन्होंने महसूस किया कि वे एक काल्पनिक दुनिया में जी रहे हैं। क्या हमें आज भी वही गलती दुहरानी चाहिए?

–अजित भट्टाचार्य
भू. पू. सं. इंडियन एक्सप्रेस

---

* परिशिष्ट 3 देखें

विदेश मंत्रालय : किसके अधीन?

देश के कुछ एक वरिष्ठ राजनेता, पत्रकार तथा प्रबुद्ध लोगों के ऐसे वक्तव्य यहां दिये हैं जिनमें चिन्ता का एक सामान्य सुर यह है कि चीन के प्रति हमारी कोई नीति नहीं है, हम उसके प्रति भय प्रेरित हैं। नीति भय से भी प्रेरित हो सकती है लेकिन फिर सवाल यह उठेगा कि कोई राष्ट्र अपनी स्वाधीनता का परिचय अन्य राष्ट्रों को कैसे देता है ? इस बात का प्रमाण भयभीत विदेश नीति नहीं हो सकती।–सं.

तिब्बत पर हमारे रुख का मुख्य आधार भय है। देश में एक धारणा बन गई है कि हमें तिब्बत के बारे में वहीं तक कुछ भी कहना चाहिए, जहाँ तक वह चीनियों को नाराज न करे और हमारे सीमा-सम्बन्धी मुद्दों को प्रभावित न करे। और इस रुख की अति भी हो सकती है। मेरे ख्याल से, अक्तूबर 1987 में, विदेश मंत्रालय के एक प्रवक्ता ने घोषणा की थी कि भारत सरकार ने दलाई लामा से कहा है कि उनकी कुछ बातें और उनके अनुयायियों की कुछ गतिविधियाँ सरकार को पसंद नहीं हैं। वस्तुत: ऐसा कोई संदेश परमपावन दलाई लामा या धर्मशाला में उनके निजी दल को नहीं भेजा गया। लेकिन नई दिल्ली ने इस तरह की घोषणा को जगजाहिर करना जरूरी समझा, ताकि चीनी संतुष्ट रहें। इस तरह की हरकतें सबसे अधिक खेदजनक हैं क्योंकि हमने ही 1959 में परमपावन दलाई लामा और बड़ी संख्या में अन्य तिब्बतियों को देश में आदर और सम्मान से रहने का स्थान देने का साहसिक कार्य (जहाँ श्रेय है, वहाँ दें) किया था।

हमारे लिए तिब्बत की अलग पहचान पर जोर देने का सुरक्षा कारणों के अलावा एक और महत्वपूर्ण राजनीतिक कारण भी है। और यह कारण है–मैकमोहन रेखा। भारत-चीन के सारे सम्बन्ध मैकमोहन रेखा पर ही निर्भर हैं। यह सभी को पता है कि भारत का अक्साई-चिन और अन्य चौदह हजार पाँच सौ वर्गमील क्षेत्र अभी अवैध रूप से चीन-अधिकृत है। मैकमोहन रेखा हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि अरुणाचल प्रदेश, असम और संपूर्ण उत्तर-पूर्व की सुरक्षा इसी पर निर्भर है।

मैकमोहन रेखा का अस्तित्व तिब्बत के एक स्वतंत्र सार्वभौम देश के रूप में अस्तित्व पर ही निर्भर करता है। मैं 1914 के शिमला सम्मेलन की विस्तृत चर्चा तो यहाँ नहीं करूँगा, लेकिन मैं परमपावन दलाई लामा को उद्धृत करना चाहूँगा–"भारत सरकार यह मानती है कि भारत और तिब्बत की सीमा मैकमोहन रेखा के अनुसार तय हुई है। यह सीमा शिमला सम्मेलन में तय हुई थी और यह सम्मेलन केवल तिब्बत और ब्रिटिश सरकार

के बीच हुआ था। यदि निर्णय के समय तिब्बत का कोई स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय अस्तित्व नहीं था तो इसे इस प्रकार के समझौते में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं था। अत: यह स्पष्ट है कि यदि आप तिब्बत को सार्वभौम देश नहीं मानते तो आप शिमला सम्मेलन को भी नहीं मानते और इसलिए आप मैकमोहन रेखा को भी मान्यता नहीं देते।''

भले ही यह असाधारण लगे, पर हमारा विदेश मंत्रालय ठीक यही करता है। इसके प्रवक्ता कहते हैं–हम तिब्बत को चीन का एक स्वशासी क्षेत्र मानते हैं और चीन के आंतरिक मामलों पर कोई टिप्पणी नहीं करते। पर वे यह नहीं कहते कि हम दक्षिण अफ्रीका और फिजी के आंतरिक मामलों पर टिप्पणी करते हैं। लेकिन वह अलग बात है।

यदि तिब्बत 1914 में स्वाधीन नहीं था तो शिमला सम्मेलन में इसकी भागीदारी भी ठीक नहीं थी और तब इस सम्मेलन में जो समझौता हुआ वह भी ठीक नहीं था। फिर तो मैकमोहन रेखा सही में उतनी ही अमान्य है जितनी कि चीनी कहते हैं। सत्य तो यह है कि भारत अपनी सीमाओं की रक्षा तिब्बत की स्वतंत्रता को माने और निश्चित किये बिना नहीं कर सकता। यह जोखिम से भरी कूटनीति है और इस मामले में हम वाकई परमपावन दलाई लामा के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमें ऐसी स्थिति से निपटने का मार्ग बताया। उनका स्ट्रॉसबर्ग प्रस्ताव तिब्बत की ऐतिहासिक, वैधानिक स्वतंत्रता और सार्वभौमिकता को मंजूर करने का रास्ता तो बताता ही है, साथ ही एक ऐसी सीमित व्यवस्था करने का रास्ता भी बताता है जिससे तिब्बत कुछ हद तक चीन का संरक्षित क्षेत्र ही रहे। लेकिन जबकि हम इस प्रस्ताव का समर्थन करने में भी झिझकते हैं, कि यह चीनियों को नाराज कर देगा, चीनी हमसे संबंधित प्रश्नों पर ऐसी कोई संवेदनशीलता नहीं दर्शाते।

–सुनंद के. दत्त रे
संपादक, द स्टेट्समेन

चैकोस्लोवाकिया के साथ विश्वासघात और स्पेन में फासिस्ट सेनाओं की अनदेखी के लिए भारतीयों ने ब्रिटेन और पश्चिमी शक्तियों की कटु आलोचना की थी, जिसमें नेहरू की भूमिका अग्रणी थी। अपने यादगार और मार्मिक शब्दों में उन्होंने कहा था कि प्रजातन्त्र और शांति के नाम पर चैक और स्पेनी लोगों के साथ हुये ''विश्वासघात के कारण चेक और स्पेनी प्रजा की अनन्त दु:ख से पीड़ित आंखें अंग्रेजों की आने वाली पीढ़ियों का भी पीछा नहीं छोड़ेगी।'' जवाहरलाल नेहरू ने जब ये शब्द लिखे, उसके कोई एक दशक के कुछ बाद ही चीन की सशस्त्र सेना ने तिब्बत को रौंद डाला, और हमारी उत्तरी सरहद पर आ पहुंची। तिब्बत को पहले से ही इसका डर था, लेकिन भारत ने इस डर को आधारहीन बताकर उसे आश्वस्त कर रखा था। दलाई लामा भारत की सलाह मानते हुए तिब्बत लौट गये। लेकिन तिब्बत को फिर भी रौंद डाला गया। चीन ने सैन्य शक्ति के बल पर यथास्थिति को बदल डाला। उसे रोकने के लिए भारत ने कुछ भी नहीं किया।

यहां तक कि हमने तिब्बत की लड़ाई संयुक्त राष्ट्र संघ में भी नहीं लड़ी, जो कि हम कर सकते थे। शायद हमें काठ मार गया था। इस तरह हम डर गये थे कि हमने यह कहकर आसानी से मन मना लिया कि हम असहाय थे। अगर हम इतने भोले-भाले नहीं होते, अगर हम एशिया की वास्तविक स्थिति को समझते और मात्र रोमांटिक कल्पनाओं के संसार में नहीं खोये रहते, तो हम उस समय भी तिब्बत के (स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में) लोप होने के बाद उत्पन्न होने वाले खतरों को भांपने की दूरदृष्टि पा सकते थे। तिब्बत अकेला ही मसला नहीं था जिस पर हमारी सरकार अपनी असहाय स्थिति का बहाना लेकर अपने हाथ उठा देने को तैयार रहती थी। अनेक भारतीय, खासकर देश के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में रहने वाले लोग हमारे तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये उस 'विदाई' भाषण को नहीं भूल सकते जो उन्होंने चीनी सेनाओं के असम में ब्रह्मपुत्र के किनारे तेजपुर में आ धमकने पर वहां के लोगों को सम्बोधित करते हुए दिया था। हमने अपनी आत्मा को बहानों के द्वारा सांत्वना दे दी तथा अपने नैतिक क्रोध, स्पष्ट घोषणाओं और उनकी 'अनन्त दु:ख से पीड़ित आंखों' को भूल गये जो विश्वासघात के शिकार होकर चुप हो जाने पर मजबूर हो गये थे।

–रवीन्द्र वर्मा

भू. पू. केन्द्रीयमंत्री; अध्यक्ष, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान

अमरीका की नीति महत्त्वपूर्ण हो सकती है पर अमरीका अपनी स्वार्थ-लिप्साओं में इतना लिप्त है कि वह मानव अधिकारों का प्रश्न तभी उठाता है जब यह स्वार्थों से जुड़ता हो। कश्मीर में आज जो कुछ हो रहा है उसमें अमरीका ज्यादातर चुप्पी साधने का काम करता है। ...पर मैं समझता हूँ कि अमरीका की तुलना में अफ्रीका और एशिया के देशों को तिब्बत के मामले में अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। विशेषकर भारत को। और भारत की चुप्पी या ढुलमुल नीति मुझे तो बहुत ही लज्जास्पद जान पड़ती है। भारत के नेताओं को डर लगता है कि तिब्बत के बारे में बोलने से कहीं कश्मीर के मामले को न उठाया जाए। लेकिन मैं समझता हूँ कि उन्हें स्पष्ट रूप से कश्मीर और तिब्बत के भीतर क्या बुनियादी अंतर है इसका पूरा इतिहास बताना चाहिए। कश्मीर अपनी संस्कृति में हजारों वर्ष से भारत का अभिन्न भाग रहा है जबकि तिब्बत हमेशा सांस्कृतिक रूप से चीन से बिल्कुल भिन्न रहा है। भारत के प्रतिनिधियों को यह अंतर समझना चाहिए। चूंकि कश्मीर में मुस्लिम कट्टरपंथियों की आतंकवादी कारवाई हो रही है इससे डरकर और चीन के साथ मैत्री दिखाने की लालसा में तिब्बत पर चुप्पी साध लेना या उसे बलिदान कर देना–इस पर भारत के बुद्धिजीवियों और राजनीतिज्ञों को अपनी आवाज उठानी चाहिए।

–निर्मल वर्मा

साहित्यकार

1991 के दिसम्बर में जब चीन के प्रधानमंत्री लिपेंगे भारत यात्रा पर आये तब का यह अनुभव है। लिपेंगे की यह यात्रा विवादास्पद थी, हालांकि भारत सरकार के आमंत्रण पर ही वे आये थे।

इसके पूर्व हमारे प्रधानमंत्री चीन के दौरे पर गये थे और भारत सरकार की तरफ से भरसक प्रयास किये गये कि जब चीनी प्रधानमंत्री हमारे यहां आये तब उन्हें किसी भी प्रकार की असुविधा नहीं हो। उन प्रयासों में था–शहर के एक हिस्से में बड़ी संख्या में लोगों की रोकथाम करके उसे सील करना, इस राजधानी के नागरिकों को, भारतीय नागरिकों को, सड़कों पर चलने से रोकना, कुछ लोगों को कुछ खास इलाकों में न जाने की हिदायत देना, सुरक्षा प्रहरियों का छतों पर चढ़कर देखना कि लोग अपनी खिड़की न खोलें, संसद सदस्यों के घरों के फाटकों पर चिटखनियां चढ़ा देना। इस सबसे जिन लोगों को असुविधा हुई, उनमें से मैं भी एक था। इस तरह के तमाम इंतजाम अपने आप में प्रजातांत्रिक कहलाने वाले देश में शर्मनाक है। हममें से कुछ लोगों को संसद तक पैदल चलना पड़ा, क्योंकि सड़कें बंद थीं, यातायात की अनुमति नहीं थी। घर से संसद तक का जो रास्ता लगभग दस मिनट का है, इसमें करीब घंटा–घंटा भर लगा क्योंकि लोगों को काफी घूमकर जाने के लिए कहा गया था।

लेकिन तिब्बती समुदाय के यहां के लोग इस तरह ठेल दिये जाने के लिए तैयार नहीं थे, उन्होंने सरकार के हरेक आदेश की अवहेलना की, वे विरोध करने के लिए सड़कों पर आए, जैसा कि कोई भी आम नागरिक कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में विरोध किया ही जाना चाहिये। वे अपने मौलिक अधिकार का उपयोग करते हुए चीनी प्रधानमंत्री से कहना चाहते थे कि वे उनकी इस यात्रा के बारे में क्या सोचते हैं विशेषकर इस परिस्थिति में जबकि तिब्बती लोग आज़ादी की मांग कर रहे हैं। ऐहतियात के तौर पर उनमें से सैकड़ों लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। सुरक्षा कर्मी जिस किसी को भी तिब्बती समझता था चाहे वे 'थाई' हो या 'बर्मी', पकड़ लिया गया। जब चीनी प्रधानमंत्री राजघाट गांधी समाधि जा रहे थे, तिब्बती वहां प्रदर्शन करना चाहते थे। उनकी पिटाई की गई और अन्ततः उन्होंने गुस्से में बौखलाकर चीनी राष्ट्रीय ध्वज जलाना तय किया। इसके बदले और अधिक गिरफ्तारियां हुई। प्रत्येक गिरफ्तारी अन्यायपूर्ण थी। इस सबमें कुछ भी विधि सम्मत या न्याय संगत नहीं था।

इस कारण हमें इस मुद्दे को संसद में उठाने का अवसर मिला। बड़े योजना बद्ध तरीकों से इस मुद्दे पर होने वाली चर्चा को बंद कराने के प्रयास किये गये।

–जार्ज फर्नांडीस

रक्षा मंत्री 1998–

मेरे शुरू के वकालत के दिनों में एक वकील की कहानी प्रचलित थी, जो अपने मुवक्विलों को एक जज से अपनी दोस्ती और पहुँच के बारे में बताकर प्रभावित किया करता था। एक व्यक्ति ने जाँचना चाहा। जज साहब जब आराम से अपने बगीचे में धूप में बैठे थे वकील साहब घुसे। मुवक्विल ने दूर से चकित होकर देखा कि जज ने वकील को काफी अपमानित किया, उसकी टोपी घास पर फेंककर अपने पैरों से उसे मसल

दिया। फिर भी बिना परेशान हुए वकील साहब ने अपनी टोपी उठायी, उस पर से धूल झाड़ी और खुशी-खुशी अपने मुवक्विल के पास आकर गर्व से बोले–''देखा, साला कितना बेतकल्लुफ है''। कहानी की विश्वसनीयता संदिग्ध हो सकती है, लेकिन जब भी हमारे विदेश मंत्रलय के अधिकारी चीनी अधिकारियों से अपनी सबसे हाल की मुलाकात का ब्यौरा देते हैं मुझे यह हमेशा याद आ जाती है।

पिछले महीने चीन के विदेश मंत्री और उपप्रधान मंत्री भारत में कुछ देर के लिए रुके थे। राजा-महाराजाओं की तरह उनकी जी-हुजूरी में हमारे लोग जुटे रहे लेकिन वह ड्रेगन न तो हिला और न ही प्रभावित हुआ। उसने न तो शब्दों में और न ही व्यवहार में कोई मुरव्वत दिखायी। उसने ठीक वैसा ही व्यवहार किया जैसे उस जज ने वकील साहब के साथ किया था, फिर भी हमारे विदेश मंत्रालय के उच्चाधिकारियों ने मुस्कान ओढ़कर इस दौरे को 'द्विपक्षीय सम्बन्ध बढ़ाने' की दिशा में एक और महत्वपूर्ण कदम बताया जो हमारे विदेश मंत्रलय की भाषा का जाना पहचाना मुहावरा है।

–राम जेठमलानी

वरिष्ठ कानूनविद् केन्द्रीय मंत्री, 1998-

हाल में भारतीय जनता ने जाना कि भारत सरकार ने दो जाने-माने फिल्म निर्देशकों मार्टिन सॉरसेस और ज्याँ जाक् अनॉड को भारत में तिब्बत और दलाई लामा के जीवन पर बन रही फिल्मों की शूटिंग करने की इज़ाजत नहीं दी। दुनिया भर के लोग आश्चर्य चकित हैं कि जब बी.बी.सी. समेत कई एजेंसियाँ दलाई लामा पर वृतचित्र बना चुकी हैं तो भारत सरकार को एक वृतचित्र से भला क्या परेशानी हो सकती है? यह समझना कठिन है कि चीनी शासकों के प्रति ऐसी आदर भावना भारतीयों के किस उद्देश्य की पूर्ति करती है। चीनी शासक तो ऐसी बातों को इलाके के चौधरी को दी गई भेंट के रूप में लेते हैं।

–शंकर शरण

प्रेस सूचना अधिकारी, तिब्बती संसदीय एवं
नीति शोध केन्द्र, दिल्ली

क्या हममें राष्ट्रीय आत्मसम्मान की इतनी कमी है कि हम चीनी सरकार के एक छोटे से कर्मचारी का आदेश मानने को तैयार हो जायेंगे ? समाचार है कि बंबई में चीन के काउन्सल जनरल, कियांग पिक्सिंग ने एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय के उपकुलपति पर दबाव डाला कि वे वहाँ चल रही एक फोटो चित्र प्रदर्शनी बंद कर दें। 'निर्वासन में महिलाएं' नामक इस प्रदर्शनी में कुछ चित्र तिब्बती महिलाओं के भी थे। चीनी कर्मचारियों को यह नहीं भाया।

लेकिन उपकुलपति का क्या कहा जाय ? वे चीनी कर्मचारियों की माँग के आगे क्यों

झुक गए? क्या चीनी कर्मचारी ने केन्द्रीय सरकार पर विदेश मंत्रलय के सूत्रों द्वारा दबाव डाला था? तब यह समाचार ज्यादा प्रमुखता से सामने आता और तब यह प्रश्न कि क्या हममें राष्ट्रीय आत्म-सम्मान की कमी है और ज्यादा समीचीन हो जाता। या क्या उपकुलपति ही चीनी अधिकारियों से कुछ ज्यादा प्रभावित हो गए थे?

–रक्षत पुरी
पत्रकार

□

भारत में तिब्बती बसाहतें

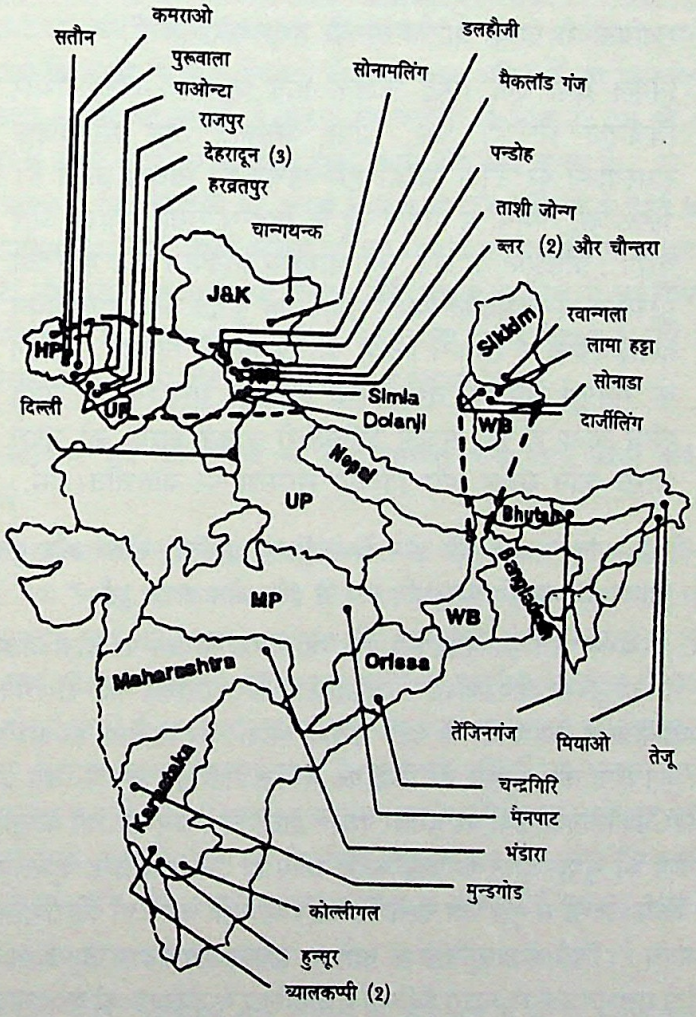

अहिंसा और हिंसा के बीच एक बहुत बड़ी जमीन है

निर्मल वर्मा

हिन्दी कथाजगत की कुछ अविस्मरणीय रचनाओं 'वे दिन', 'परिन्दे', 'लाल टिन की छत' और 'लन्दन की एक रात' के रचयिता से हिन्दी पाठक अच्छी तरह परिचित हैं।

निर्मल वर्मा एक सिद्ध लेखक होने के साथ-साथ गंभीर विचारक भी हैं। धर्म, भाषा, संस्कृति और सामाजिक समस्याओं पर उनके विचार हमें सोचने पर विवश करते हैं। 1996 की गर्मियों में निर्मल जी के निबन्ध संग्रह 'भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र' को भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा मूर्तिदेवी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह पुनीत कार्य परमपावन दलाई लामा ने सम्पन्न किया था। प्रस्तुत है तिब्बत बुलेटिन के भूतपूर्व संपादक तथा अभी तिब्बती संसदीय एवं नीति शोध केन्द्र में प्रेस सूचना अधिकारी **शंकर शरण** की उनसे भारत-चीन संबंध और तिब्बत समस्या पर बातचीत।-सं.

प्रश्न-हिन्दी जगत् में बहुत कम लोग हैं जो तिब्बत के लिए सोचते और मुखर होकर बोलते हैं। तिब्बत से आपकी सहानुभूति कब से और कैसे उत्पन्न हुई ?

नि.व.-दरअसल मेरी पृष्ठभूमि कुछ ऐसी रही है कि तिब्बत पर चीनी आक्रमण होने से पहले भी कम्युनिस्ट व्यवस्थाओं के इतिहास से मैं अपरिचित नहीं था। मैंने कई वर्ष चेकोस्लोवाकिया में बिताए थे। मैं वहां पर चेक् भाषा और साहित्य का अध्ययन करने गया था। उन दिनों का अनुभव मेरे लिए यह था कि सोवियत संघ ने जिस प्रकार एक छोटे से देश चेकोस्लोवाकिया पर बराबर दबाव डाला और जब वहां की कम्युनिस्ट पार्टी ने कम्युनिज्म का सुधार करने के लिए कदम उठाये तो उसे किस तरह कुचलने के लिए आक्रमण किया। तभी से मुझे पता चला कि सोवियत सत्ता का न तो अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे से कोई संबंध है, जिसे वे कम्युनिज्म के नाम पर बराबर प्रचारित करते रहे, न ही वे उन शक्तियों से मूलभूत रूप से अलग हैं जिन्हें वे अमेरिका या इंग्लैण्ड की तरह साम्राज्यवादी कहते रहे। जब किसी छोटे देश, चाहे उसमें कम्युनिस्ट पार्टी की ही व्यवस्था क्यों न हो,

यदि वहां पर सरकार की नीतियां किसी बड़ी कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों के विरुद्ध जाती हैं या उसकी महत्वाकांक्षाओं के रास्ते में रुकावट डालती हैं तो उस बड़ी कम्युनिस्ट व्यवस्था को चाहे वह चीन हो, सोवियत संघ हो, उसके सामने किसी तरह की कोई नैतिक हिचकिचाहट या अवरोध नहीं रहता कि वो बल के द्वारा या छल के द्वारा उस छोटे राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता, स्वतंत्रता को छीनने का प्रयत्न न करे। ऐसे अनुभव के बाद कम्युनिज्म के प्रति जो मेरा सम्मोहन या आकर्षण था वह कुछ इस बुरी तरह टूटा कि जब तिब्बत की अंदरूनी नीतियों में चीन ने हस्तक्षेप करना शुरू किया तो मुझे यह समझते देर न लगी कि यह वही कम्युनिस्ट प्रकार की साम्राज्यवादी लिप्सा है जिसका स्वरूप मैंने यूरोप में सोवियत संघ की नीतियों में देखा था।

अमरीका की नीति महत्त्वपूर्ण हो सकती है पर अमरीका अपनी स्वार्थ-लिप्साओं में इतना लिप्त है कि वह मानव अधिकारों का प्रश्न तभी उठाता है जब यह स्वार्थों से जुड़ता हो। कश्मीर में आज तो कुछ तो हो रहा है उसमें अमरीका ज्यादातर चुप्पी साधने का काम करता है।...पर मैं समझता हूँ कि अमरीका की तुलना में अफ्रीका और एशिया के देशों को तिब्बत के मामले में अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। विशेषकर भारत को। और भारत की चुप्पी या ढुलमुल नीति मुझक तो बहुत ही लज्जास्पद जान पड़ती है। भारत के नेताओं को डर लगता है कि तिब्बत के बारे में बोलने से कहीं कश्मीर के मामले को न उठाया जाए।

प्रश्न–सोवियत संघ की नीतियों का ऐसा स्वरूप सबसे पहले आपने कब महसूस किया था?

नि. व.–इसका धीरे-धीरे अहसास मुझे भारत में भी हुआ था जब 1956 में हंगरी में एक बहुत बड़े विरोध की आवाज उठी थी, जिसमें हंगेरियन कम्युनिस्ट सत्ता के विरुद्ध वहां के मजदूर, वहां की जनता, यहां तक कि कम्युनिस्ट पार्टी के लोगों ने भी अपनी आवाज उठाई थी। तब स्तालिन की मृत्यु हो चुकी थी और ख्रुश्चेव सत्ता में थे। ख्रुश्चेव ने अपनी सेनाएं हंगरी में भेजी और काफी बड़े रक्तपात के बाद वे इस विरोध को काबू में कर पाए थे। तब पहली बार मुझे लगा कि खुद को श्रमिकों की सरकार कहने वाली सत्ता किस तरह से दूसरे देश की व्यवस्था का दमन कर सकती है जहां चाहे खुद मेहनतकशों की सरकार मानी जाती है। यह एक शिक्षाप्रद अनुभव था। मुझे लगा कि एक दृष्टि से पश्चिमी साम्राज्यवाद और कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद के बीच कोई मूलभूत अंतर नहीं है।

प्रश्न–इससे पूर्व आप में साम्यवादी व्यवस्था के प्रति आकर्षण था ?

नि. व.–मेरे भीतर आकर्षण था। कॉलेज में और बाद में भी मैं समाजवाद के प्रति आकर्षित हुआ था। भारतीय समाजवाद में लोहिया और जयप्रकाश जी की किताबें मैंने

पढ़ी थीं। मुझे लगता था कि स्वतंत्रता के बाद भारत की आर्थिक समस्या तब तक नहीं सुलझ सकती जब तक कोई रेडिकल कदम इस असमता और शोषण को दूर करने के लिए न उठाया जाए। और मुझे लगता था कि कांग्रेस की नीतियां लोकतांत्रिक होने के बावजूद उस बुनियादी परिवर्तन के प्रति शिथिल हैं, उतनी उत्सुक नहीं हैं जितनी कि वामपंथी पार्टियों की नीतियां हैं। समाजवाद के प्रति आकर्षण मुझे कम्युनिस्ट पार्टी के नजदीक ले गया। इसका कारण यह भी था कि कम्युनिज्म के नाम पर चीन की क्रान्ति सफल हो चुकी थी। फिर सोवियत संघ से भी बड़ी आशाएं थीं क्योंकि उसने जर्मन फासिज्म को हराया था। मन में यह एक प्रबल चीज थी कि यदि सोवियत संघ में सोवियत सत्ता के प्रति जनता का विश्वास न होता तो वे स्वतंत्रता के लिए इतने बड़े पैमाने पर बलिदान नहीं करते। लेकिन जब शीत-युद्ध की राजनीति चली और फिर ख्रुश्चेव की गुप्त रिपोर्ट सामने आई तो पहली बार लगा कि जो 1936 के आस-पास सोवियत संघ में सीक्रेट ट्रायल्स हुए थे, बहुत से कवियों को लेबर कैंप में भिजवाया गया था, जिनके बारे में हम हमेशा प्रश्न पूछा करते थे मगर कभी उसका उत्तर हमें नहीं मिलता था,-और क्योंकि हम इतने अधिक फैनेटिकल थे कि जो कुछ सोवियत विरोध में लिखा जाता था, जैसे *ऑरवेल* या *कोएस्लर* जैसे व्यक्ति थे, या *सिरोनी* जैसे लेखक जो इटली की कम्युनिस्ट पार्टी में रहे थे मगर विक्षुब्ध होकर भाग आये थे, उनकी चीजें पढ़ते तो थे, मगर उन पर अधिक विश्वास नहीं हो पाता था। कम्युनिस्ट प्रचार इतना शक्तिशाली था कि इन विरोधी आवाजों पर हमारा विश्वास नहीं हो पाता था।

मगर जब वह सब घटनाएं होने लगीं-हंगरी, चेकोस्लोवाकिया पर सोवियत आक्रमण और खुद भारत में रणदिवे के समय कम्युनिस्ट पार्टी में संकीर्ण नीतियों का अनुकरण-इससे मुझे लगा कि न केवल कम्युनिस्ट पार्टी का लोकतंत्र में कोई विश्वास नहीं है बल्कि स्वयं मार्क्सवाद के आमूल परिवर्तन की परिकल्पना में भी बहुत बड़ा खोखलापन है। यद्यपि वह प्रचार का एक मुखौटा जरूर है।

अब मेरे जैसे व्यक्ति, जिसकी पृष्ठभूमि ऐसी रही हो, उसे समझने में देर नहीं लगी कि चीन का तिब्बत के प्रति रवैया बराबर धोखा-धड़ी का, छल का, प्रपंच का रहा है, और जवाहरलाल नेहरू का यह तरीका रहा कि वे चीन पर विश्वास करते रहे, उनका सोवियत संघ और चीन के प्रति हमेशा सद्भावना और सहानुभूति का रवैया रहा। चीनी क्रांति का बड़े उत्साह से उन्होंने स्वागत किया था इसलिये वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे... और तिब्बत के बारे में उनका कुछ ज्यादा गहरा ज्ञान नहीं था कि उसका क्या इतिहास रहा है। चीन की बराबर एक विस्तारवादी नीति रही। तिब्बत शक्तिशाली होता था तो स्वतंत्र रहता था वरना चीन उसे अपना उपनिवेश बनाने की कोशिश करता रहता था। नेहरुजी का चीनियों पर अंधविश्वास-सा था और दलाई लामा उन दिनों बहुत छोटे थे। तिब्बत अपने को बड़ा अरक्षित पाता था। उसका सबसे बड़ा सहारा नेहरु और भारत

थे। जब चीन को यह लगा कि दलाई लामा उसका खेल नहीं खेलने वाले हैं तो उसने तिब्बत में एक गहरा दमन शुरू किया। इसके परिणामस्वरूप दलाई लामा और हजारों तिब्बती शरणार्थियों को भारत आना पड़ा। इसके प्रति मेरे मन में कतई संदेह नहीं था पर कम्युनिस्ट पार्टी कहती थी कि दलाई लामा तिब्बत की सामंती शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रश्न – कम्युनिस्ट तो अब भी यही कहते हैं !

नि. व.–इसका मतलब आज तक, सोवियत संघ की घटनाओं के बाद भी, कम्युनिस्ट पार्टी ने कोई सबक नहीं सीखा है।

मुझे तिब्बत के ऊपर चीन की सुजरेनिटी (आधिपत्य) या सॉवरेनिटी (संप्रभुता) की बात किसी भी तर्क के आधार पर समझ नहीं आती थी। तिब्बत की सभ्यता, संस्कृति, उसका बौद्ध धर्म और अतीत बहुत कुछ भारत की सभ्यता–संस्कृति और बौद्धधर्म के निकट रहा है। तिब्बत से बौद्ध भिक्षु शताब्दियों से भारत आते रहे। यहां की कई पांडुलिपियों का उन्होंने अनुवाद किया जो तिब्बत के संग्रहालयों में रहा। कश्मीर और तिब्बत के बीच सांस्कृतिक संबंध थे। तिब्बत की एक स्वायत्त सांस्कृतिक अस्मिता थी जिसकी चीनी सभ्यता से कोई समानता नहीं थी। **नेहरू जी ने तिब्बत पर चीन की सुजरेनिटी मानी थी पर उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उस सुजरेनिटी का मतलब ये होगा कि वह एक दिन चीन का उपनिवेश बनकर रह जायेगा। किसी तरह की स्वायत्तता तिब्बत के हाथ में नहीं बचेगी।** ... इधर दलाई लामा ने जर्मनी में एक विनम्र घोषणा भी की कि हम चीन से बाहर होने की मांग नहीं कर रहे, उसके भीतर रह कर ही एक तरह की स्वायत्तता चाहते हैं। पर इस तरह की मांगों को भी ठुकरा दिया गया। इससे स्पष्ट होता है कि चीन के नेताओं में किसी तरह की इच्छा नहीं है कि वे किसी प्रकार की रियायत या तिब्बत के प्रति उदारता का बर्ताव करें। उलटे वे तिब्बत में जिस प्रकार चीनियों को भेजकर वहां की डेमोग्राफी को बदल रहे हैं, वहां की प्रकृति का विनाश कर रहे हैं, वहां अणुबमों की सामग्री का चूरा तथा करकट फेंक रहे हैं, उससे जान पड़ता है कि वे तिब्बत के प्राकृतिक साधनों का पूरा दोहन करने में लगे हुए हैं और तिब्बत के सांस्कृतिक चरित्र का आमूल परिवर्तन करने में सक्रिय हैं।

प्रश्न–कभी-कभी तो लगता है कि स्वयं चीनी भी तिब्बत को अपना हिस्सा नहीं मानते। अपने हिस्से के साथ कोई इतना बुरा बर्ताव नहीं करता। चीनी क्रान्ति के तुरन्त बाद ही चीनी सेना तिब्बत में गई थी। क्या उस समय भी आपको बुरा लगा था या आपने उस समय उतना ध्यान नहीं दिया था ?

नि. व.–उस समय चीन का तिब्बत के प्रति रुख उग्र और हिंसात्मक नहीं था। जब उन्होंने अपनी क्रांति की विजय को कॉनसोलिडेट कर लिया, सुदृढ़ कर लिया, तब वे तिब्बत

के प्रति अधिक आक्रामक नीतियाँ अपनाने लगे। उस समय तो बहुत उत्साह था हमारे भीतर चीनी क्रांति के प्रति। चीनी सभ्यता भी बड़ी महान सभ्यता रही है। सन् यात् सेन की क्रांति, फिर च्यांग काई शेक और जवाहरलाल नेहरु के सम्बन्ध बहुत अच्छे थे। जब जापानी आक्रमण चीन पर हुआ था, हमारी सहज रूप से सहानुभूति चीन के साथ थी। शायद इसी के कारण कुछ देर लगी यह समझ पाने में कि जिस कम्युनिस्ट पार्टी ने चीन को मुक्त किया था वही कम्युनिस्ट पार्टी सत्ता में आने के बाद किसी छोटे देश को अपना गुलाम बनायेगी–इसकी कल्पना कम हो पाती थी उन दिनों। मगर यह भी एक कारण था कि तिब्बत के बारे में हमारा ज्ञान बहुत कम था, अनुभव नहीं था, उसे हम बहुत पिछड़ा हुआ समझते थे।

प्रश्न–तिब्बती भी दुनिया से कटे हुए रहते थे। वे स्वयं भी इसे एक कारण मानते हैं जिससे कि चीन उन पर काबिज हो सका। अच्छा, अभी जो निर्वासित तिब्बती अपनी स्वतंत्रता या स्वायत्तता के लिए आवाज उठा रहे हैं उसमें कभी-कभी एक दुविधा-सी दिखती है। कभी लगता है कि वे चीन से पूर्ण स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, कभी लगता है कि वे चीन के अंदर रहकर किसी प्रकार की स्वायत्तता को भी स्वीकार कर सकते हैं। जैसा आपने कहा कि इतिहास भी ऐसा ही रहा है कि शक्तिशाली होने पर तिब्बत स्वतंत्र रहता आया है, अन्यथा चीन के अधीन रहा है। यह स्थिति थोड़ी पेचीदा लगती है। क्या इसे कुछ सरल किया जा सकता है? आपके विचार में स्वायत्तता या स्वतंत्रता में क्या उचित या संभव है?

नि.व.–मेरे विचार में यह प्रश्न तभी कुछ मायने रखेगा जब चीन की नीति में तिब्बत के प्रति कोई परिवर्तन आएगा। अभी तो आप स्वायत्तता की ही मांग क्यों न करें, यदि आपका आन्दोलन चीन पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाल सकेगा या अंतर्राष्ट्रीय आवाज इतना महत्त्व नहीं रखेगी कि चीन के नेताओं को भी विवश करे कि जब तक वे तिब्बत के मामले को नहीं सुलझाते पश्चिमी राष्ट्र, मुख्यत: अमरीका, भी उनके साथ किसी तरह का व्यापारिक संबंध नहीं रखेंगे। जब तक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और गोष्ठियों में मानवाधिकार का प्रश्न तिब्बत को लेकर प्रचारित नहीं होता तब तक स्वायत्तता या स्वतंत्रता, दोनों ही बात मुझे हवाई जान पड़ती है। आखिर दलाई लामा तो आखिरी सीमा तक गये थे जब उन्होंने कहा कि हम सीमित स्वायत्तता को मानने के लिये तैयार हैं। पर चीन पर इससे भी कोई असर नहीं हुआ।

प्रश्न–तिब्बत के लिए वातावरण बनाने में या चीन के नेताओं पर दबाव डालने में अमरीका की भूमिका क्या बहुत बड़ी होगी ?

नि. व.–अमरीका की नीति महत्त्वपूर्ण हो सकती है पर अमरीका अपनी स्वार्थ–लिप्साओं में इतना लिप्त है कि वह मानव अधिकारों का प्रश्न तभी उठाता है जब यह स्वार्थों से जुड़ता हो। कश्मीर में आज जो कुछ हो रहा है उसमें अमरीका ज्यादातर चुप्पी साधने का काम करता है। ...पर मैं समझता हूँ कि अमरीका की तुलना में अफ्रीका और एशिया

के देशों को तिब्बत के मामले में अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। विशेषकर भारत को। और भारत की चुप्पी या दुलमुल नीति मुझे तो बहुत ही लज्जास्पद जान पड़ती है। भारत के नेताओं को डर लगता है कि तिब्बत के बारे में बोलने से कहीं कश्मीर के मामले को न उठाया जाए। लेकिन मैं समझता हूँ कि उन्हें स्पष्ट रूप से कश्मीर और तिब्बत के भीतर क्या बुनियादी अंतर है इसका पूरा इतिहास बताना चाहिए। कश्मीर अपनी संस्कृति में हजारों वर्ष से भारत का अभिन्न भाग रहा है जबकि तिब्बत हमेशा सांस्कृतिक रूप से चीन से बिल्कुल भिन्न रहा है। भारत के प्रतिनिधियों को यह अंतर समझना चाहिए। चूंकि कश्मीर में मुस्लिम कट्टरपंथियों की आतंकवादी कारवाई हो रही है इससे डरकर और चीन के साथ मैत्री दिखाने की लालसा में तिब्बत पर चुप्पी साध लेना या उसे बलिदान कर देना–इस पर भारत के बुद्धिजीवियों और राजनीतिज्ञों को अपनी आवाज उठानी चाहिए।

प्रश्न–ऐसा लगता है कि डर से ज्यादा यह हमारे राजनीतिज्ञों का प्रिय तर्क हो जाता है कुछ न करने का। डर से अधिक यह अकर्मण्यता है।

आखिर तिब्बत की दृष्टि में, उनकी संस्कृति ही उनकी राजनीति है क्योंकि वे सांस्कृतिक, राजनीतिक, धर्म और धर्मनिरपेक्षता में हम जैसे सेक्युलरिस्टों की तरह भेद नहीं करते। और यह बहुत सुन्दर बात है क्योंकि उनके लिए धर्म वही है जो उनके समूचे जीवन को प्रभावित करता है। उनका धर्म वह नहीं है कि चर्च या मंदिर में जाकर पूजा करने के बाद हम व्यावहारिक दुनिया में लग जाते हैं। उनका व्यावहारिक और गैर-व्यावहारिक जीवन एक धर्मसूत्रता के साथ बंधा हुआ है।

नि.व.–उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि हम आज उतना भी नहीं बोल रहे हैं जितना मसला 1950 या 60 के दशक में उठाते थे, जब हम तिब्बत के मामले को सबसे आगे लाकर रखते थे और चीन से इस पर खासी बातचीत होती थी। हम तिब्बत के हित को अपने देश-हित के साथ जोड़कर देखते थे। यदि आज तिब्बत पूरी तरह चीन का भाग बन जाता है तो भारत की उत्तरी सीमाएं खुद खतरे में पड़ सकती हैं। यह बात तो खैर दूसरी है कि अभी भी वहां से नदियों का जल हमारे यहां प्रदूषित होकर आता है तो उससे हमारे आर्थिक स्वास्थ्य और पर्यावरण पर बुरा असर पड़ता है। मुझे तो यह लगता है कि भारत की नैतिक आवाज अमरीका से कहीं ज्यादा अर्थ रखेगी यदि भारत संयुक्त राष्ट्र या अन्य जगहों पर इन बातों को रखे। नेहरूजी ही थे जिन्होंने अपनी नासमझी में कुछ गलतियां तो कीं, पर उन्होंने ही इसे स्वीकार भी किया, भारत ने ही अपनी गलती को पहचाना भी। इसी अपराध-बोध से भारत ने दलाई लामा को शरण दी। कोई समृद्ध देश न होते हुए भी तिब्बती शरणार्थियों की सहायता के लिए जो कुछ कर सकता था, भारत ने किया। पर यह बात मुझे बहुत अखरती है कि दलाई लामा आज तक भारत

की संसद में नहीं बोल सके हैं जबकि उन्होंने अमरीका की सीनेट में भाषण दिया, और फ्रांस, इटली के राजनीतिज्ञों ने उन्हें बुलाया। पर भारत से इतना प्राचीन संबंध और पड़ोसी होते हुए भी हमारी संसद में उन्हें इतना महत्त्व नहीं दिया जाता। यह दुखद है।

प्रश्न–ऐसा लगता है कि पश्चिमी देशों में सरकार के स्तर पर शुरू से ही यह बात बन गई है कि जब दलाई लामा भारत में है और भारत ही कुछ नहीं बोलता तो पश्चिमी देश कितनी दूर तक जा सकते हैं।

नि.व.–कभी–कभी कुछ तिब्बती मित्र बोलते हैं कि यदि दलाई लामा भारत छोड़ कहीं और रहे होते तो शायद तिब्बत प्रश्न पर और सक्रियता दिखाई पड़ सकती थी।

प्रश्न–जी हाँ, ऐसा पता चला है कि कुछ सरकारें, जैसे लिथुआनिया की सरकार तिब्बत की निर्वासित सरकार को मान्यता देना चाहती है। शायद जर्मनी भी। पर जब तक भारत इसे मान्यता नहीं देता तब तक प्रोटोकॉल की दृष्टि से यह एक अजीब-सी स्थिति हो जाएगी। इससे ऐसा जरूर लगता है कि भारत में रहने से तिब्बती निर्वासित सरकार का समर्थन व्यापक नहीं हो पा रहा है। परन्तु ऐसा भी लगता है कि भारत में आम पढ़े-लिखे लोगों में–कट्टर वामपंथियों को छोड़कर–तिब्बत के प्रति सहानुभूति का भाव तो है मगर लोग ये नहीं समझ पाते कि तब करें क्या? एक बेबसी-सी भी महसूस करते हैं। क्या आप कोई सलाह दे सकते हैं कि तिब्बत की मदद के लिये भारत के लोगों को क्या करना चाहिए?

नि.व.–मुझे ऐसा लगता है कि तिब्बती निर्वासित सरकार को थोड़ा निर्भीक होकर भारतीय शहरों में, कम से कम बड़े शहरों में सीधे–सीधे, अगर राजनीतिक मंच पर नहीं तो सांस्कृतिक मंचों से अपनी बात करनी चाहिए। आखिर तिब्बत की दृष्टि में, उनकी संस्कृति ही उनकी राजनीति है क्योंकि वे सांस्कृतिक, राजनीतिक, धर्म और धर्मनिरपेक्षता में हम जैसे सेक्युलरिस्टों की तरह भेद नहीं करते। और यह बहुत सुन्दर बात है क्योंकि उनके लिए धर्म वही है जो उनके समूचे जीवन को प्रभावित करता है। उनका धर्म वह नहीं है कि चर्च या मंदिर में जाकर पूजा करने के बाद हम व्यावहारिक दुनिया में लग जाते हैं। उनका व्यावहारिक और गैर–व्यावहारिक जीवन एक धर्मसूत्रता के साथ बंधा हुआ है। तो इस बात से उन्हें नहीं डरना चाहिए कि यदि वे अपना संदेश भारत के बुद्धिजीवियों को, राजनीतिज्ञों को या जो कर्मठ लोग हैं, या आम जनता है वहां जाकर तिब्बत की समस्या पर, तिब्बत में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में, इस तरह कहें जिसमें भारत सरकार को ये न महसूस हो कि कोई राजनीतिक प्रोपेगंडा किया जा रहा है–क्योंकि तब उसे रोका जा सकता है। राजनीति उनका धर्म है और धर्म उनकी राजनीति है, इसलिए जो कुछ भी वे कहेंगे उसमें राजनीति की अनुगूँज तो रहेगी ही। और तिब्बत की अस्मिता और बौद्ध धर्म आपस में इतने गुंथे हुए हैं कि भारतीय जनता में उनके प्रति हमेशा सहानुभूति जागृत होती रहेगी। एक तो तिब्बतियों को स्वयं अपनी ओर से अधिक सक्रिय होना चाहिए

और डरना नहीं चाहिए। भारतीय सरकार उन पर कोई विरोधी कदम तभी उठाती है जब उसे लगता है कि वह बिना किसी विरोध के ऐसा कर सकती है। अगर किसी तिब्बती प्रदर्शन पर पुलिस यहां लाठी चलाती है और चारों तरफ से लोग और राजनीतिक पार्टियां सरकार की ऐसी नीति की आलोचना करती हैं तो आप देखेंगे कि सरकार धीरे-धीरे एक दूसरी तरह का रुख अपनाने लगती है। क्योंकि सरकार और सत्ताधारियों के मन में भी तिब्बतियों के प्रति कोई विरोध का भाव नहीं है। या तो वहां आलस्य है या फिर सहानुभूति ही है जो तभी मजबूत हो सकती है जब स्वयं तिब्बतियों की ओर से एक मुहिम या आंदोलन सतत् रूप से चलता रहे-सांस्कृतिक स्तर पर, धार्मिक स्तर पर और अन्य मंचों पर।

दूसरे, हमारी राजनीतिक पार्टियों को तिब्बत के प्रश्न को नैतिक रूप में बराबर एक मुहिम की तरह संसद और इसके बाहर उठाते रहना चाहिए। इसे भारतीय राजनीतिक जीवन के कॉनसेंस के रूप में प्रस्तुत करते रहना चाहिए। ये पार्टियां, जैसे कांग्रेस, कोई मोनोलिथिक तो नहीं है। इनमें तरह-तरह के विचारों के लोग हैं, तिब्बत के समर्थक लोग भी हैं। उन्हें हर अवसर पर इस प्रश्न को सामने रखना चाहिए। इस तरह तिब्बतियों तथा भारतीयों दोनों पक्षों से यह आना चाहिए। दोनों चीजें आपस में संबंधित हैं। तिब्बतियों का आंदोलन जितना ही शक्तिशाली होगा भारत सरकार उन्हें उतना ही स्कोप देगी कि वे अपना काम कर सकें। अगर तिब्बती डरते रहेंगे तो भारतीय सरकार भी उन्हें डराती रहेगी क्योंकि उसका फायदा इसी में है कि वे चुप बैठे रहें। हालांकि मिथ्या रूप में ही भारत सरकार ऐसा समझती है, वास्तव में तिब्बत के प्रश्न को उठाने में ही भारत सरकार का भी हित है। और यदि भारत सरकार यह उठाती है तो चीन सरकार आकर उसका मुंह थोड़े ही बंद कर देगी। भारत कोई चीन के अधीन तो नहीं है। यह स्वतंत्र देश है और एक स्वतंत्र देश को जो नैतिक और राजनीतिक रूप से उचित लगे उसे कहने का अधिकार है।

प्रश्न-हाँ, दुनिया में जो सरकारें तिब्बत के बारे में बोलती हैं उनके चीन से संबंध चल ही रहे हैं। खत्म नहीं हो गये। पर जहां तक तिब्बतियों की बात है, जो निर्वासन में हैं, उनकी रणनीति अभी तक यही रही है कि दुनिया के नेताओं से, सांसदों से, प्रमुख लोगों से मिलकर उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करने का प्रयास करना कि वे अपनी-अपनी सरकारों को प्रेरित करें ताकि वे चीन पर तिब्बत समस्या के समाधान के लिए दबाव डालें। यह पिछले कई वर्षों से चल रहा है। किन्तु चीनी नेतृत्व के पास पहुंचकर बात खत्म हो जाती है क्योंकि वे तो जो स्वयं कहते हैं उसे भी नहीं करते। देंग सियाओ पिंग ने कहा था कि तिब्बत की स्वतंत्रता को छोड़कर किसी भी बात पर बात हो सकती है। दलाई लामा ने 1988 में स्ट्रासबर्ग प्रस्तावों में स्वतंत्रता की बात भी नहीं की-केवल धार्मिक, संस्कृतिक स्वायत्तता चाही। फिर भी चीनियों ने बातचीत से इंकार कर दिया। इस तरह तिब्बतियों की रणनीति एक बंद गली में जाकर खत्म हो जाती है। आपके विचार में क्या कोई और रास्ता हो सकता है ?

नि.व.–आपका प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। इसके बारे में कई बार मैंने सोचा भी है और तिब्बती भी इस पर सोचते हैं। उनमें कभी-कभी गहरा असंतोष देखा जाता है कि उनके प्रयास निष्फल हो रहे हैं। दलाई लामा के प्रयासों से कोई परिणाम अभी तक नहीं मिला है, ऐसा लगता है। मैं समझता हूं कि दलाई लामा ने जहां तक अहिंसा को अपना उसूल बनाया है वहां तक तो बिल्कुल ठीक ही है। परन्तु अहिंसात्मक तरीके जिस तरह से अपनाए जा रहे हैं, केवल सरकारों को एप्रोच किया जाता है। तिब्बत के बाहर या अंदर तिब्बती लोग चीन के आधिपत्य के विरुद्ध किसी तरह का अहिंसात्मक आंदोलन ठोस रूप से नहीं चलाते हैं–जिसमें उन्हें कुछ बलिदान भी करना पड़े', जिसकी खबर सारे देश में फैलेगी कि तिब्बतियों को कष्ट दिये गए, उन्हें जेल भेजा गया। इससे एक दूसरी तरह का समर्थन तिब्बतियों के प्रति उभरता है। गांधीजी ने अहिंसा के भीतर ही ऐसा शक्तिशाली आंदोलन छेड़ा था जिससे दुनिया का ध्यान आकर्षित हुआ था। ऐसा कुछ करना चाहिए जिससे दुनिया को लगे कि देखो एक ये लोग हैं जो अपने देश के लिए अहिंसात्मक रूप से अपना बलिदान करने के लिए तैयार हैं। इसलिए ऐसे तरीके अपनाना जरूरी हो गया है कि दूसरे देशों की सरकारों पर निर्भर न रहकर स्वयं तिब्बतियों को लेकर आंदोलन आगे बढ़े। इसका स्वरूप क्या हो इस पर तो तिब्बती नेताओं को ही सोचना चाहिए पर मुझे लगता है कि हिंसा और अहिंसा के बीच एक बहुत बड़ी जमीन है जहां पर हर तरह की स्ट्रेटजी और टैक्टिक्स अपनाई जानी चाहिए।

प्रश्न– मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ कि अक्सर यह होता है कि कोई गोष्ठी आयोजित की जाती है; कुछ बड़े-बड़े लोग आते हैं, वही परिचित चेहरे–वही बातें होती हैं। कुछ महीने बाद फिर कोई गोष्ठी होती है। अब जो भारतीय सांसदों का मंच है वह भी शायद ही कभी स्वयं कुछ करता है। सांसदों के मुख्य क्रिया-कलाप दूसरे हैं। अपने स्वतंत्र राजनीतिक क्रिया-कलापों में वह तिब्बत पर शायद ही कभी चर्चा करते हैं।

नि. व.–यह बात आपने बहुत ठीक उठाई। आप स्वयं ही उसे महत्त्व नहीं देंगे तो और लोग कैसे देंगे।

प्रश्न–कुछ पुराने साम्यवादी हैं जो तिब्बत से सहानुभूति तो रखते हैं मगर उनका कहना है कि चीनियों के खिलाफ नारे लगाने, प्रदर्शन करने से तिब्बत का नुकसान ही होता है। चीनी चिढ़ जाते हैं। इसलिए अच्छा यह है कि चीनियों को कह-सुनकर तैयार किया जाए और जो भी वह देना चाहें उसी को लेकर तिब्बतियों का भला किया जा सकता है। चीन के खिलाफ बोलने से कोई फायदा नहीं है। आपको यह बात कैसी लगती है?

नि.व.–जो भी थोड़ा बहुत काम हो रहा है वह लोग उसे भी इस तर्क के पीछे नष्ट कर देना चाहते हैं। प्रदर्शनों का एक समाचार महत्त्व होता है, पर चीन उससे डर नहीं

* यह बातचीत 1996 में हुई थी।

जाता। किन्तु यदि उसे भी बंद कर दें तो चीन पर क्या दबाव रह जायेगा ? फिर क्या उसके मन में तिब्बत के प्रति प्रेम पैदा हो जाएगा? यह कैसा तर्क है! यह कुतर्क है। चीन को तो कोई भी बातचीत दलाई लामा से ही करनी पड़ेगी और दलाई लामा के न्यूनतम प्रस्तावों के प्रति भी चीन का क्या रुख है? वह जरा भी सहानुभूतिपूर्ण नहीं है। इसलिए वामपंथियों का तर्क मेरी समझ में नहीं आता।

प्रश्न–अमरीका के बारे में तो आपने कहा। पर अन्य पश्चिमी देशों में, सरकार या जनता के स्तर पर, तिब्बत के प्रति कैसा भाव है ?

नि.व.–पिछले वर्षों में स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। विशेषकर तब से, जब से दलाई लामा को नोबेल शांति पुरस्कार मिला है। वरना जब वे पेरिस या लंदन जाते थे तो कोई बड़ा राज्य अधिकारी उनसे नहीं मिलता था, छोटे-मोटे लोग मिलते रहते थे। राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री उनसे भेंट करने में कतराते थे क्योंकि चीन से व्यापारिक संबंध इन देशों के भी हैं। पर व्यापारिक-राजनीतिक हित ही सौ प्रतिशत सच नहीं है। थोड़ी-सी जगह बची रहती है जहां अंतर्मन भी कुछ कहना चाहता है–जहां कहीं अत्याचार हो रहा हो या किसी निर्दोष पर निर्ममता या बर्बरता बढ़ती जा रही हो। क्योंकि ये सरकारें कोई तानाशाही सरकारें तो नहीं हैं। जनता ही इन्हें चुनकर भेजती है तो जनता के प्रति भी उनका एक उत्तरदायित्व रहता है।जनता समाचार माध्यमों से घटनाओं के बारे में जानती रहती है। इसलिए अमरीका में भी राजनीतिक नेता छिपकर चीन का समर्थन क्यों न करें, खुले रूप से करने में कतराते हैं। यह एक बड़ी बात है। और यूरोप में तिब्बत की मदद करने की इच्छा अमरीका की तुलना में अधिक है।

प्रश्न–कुछ वर्षों से भारत और चीन के बीच सम्बन्ध सुधारने की चर्चा हो रही है। क्या आपको लगता है कि वास्तव में सम्बन्ध सुधर रहे हैं ? दूसरी बात यह है कि कब से और क्यों भारत और चीन के सम्बन्ध बिगड़े थे? यह प्रश्न इसलिए कि कुछ लोगों का मानना है कि तिब्बती शरणार्थियों के कारण ही भारत और चीन के सम्बन्ध बिगड़े थे।

नि.व.–मैं इससे बिल्कुल सहमत नहीं हूँ। मैं समझता हूँ कि भारत को चीन के प्रति एक नीति रखनी चाहिए जिसमें उसे तिब्बत के मामले को नहीं उलझाना चाहिए। तिब्बत का मामला भारत की सीमाओं का मामला है–यह एक प्रश्न है। इस पर किसी प्रकार का समर्पण नहीं होना चाहिए। इसे ध्यान में रखकर भारत चीन से संबंध सुधार सकता है तो वह तभी सुधारेगा जब उसमें इतनी शक्ति होगी, जब चीन को भी यह लगे कि उसे भारत के साथ संबंध सुधारने चाहिए। चीन के साथ भारत का सीमा-विवाद तिब्बत के प्रश्न से जुड़ा हुआ है और उसका स्थाई हल तब तक नहीं हो सकता जब तक दोनों मामलों को एक साथ न देखा जाए। और संबंध सुधार की किसी भी वार्ता में इस प्रश्न को कालीन के नीचे नहीं दबा देना चाहिए–जैसा भारत सरकार ने पिछले बीस-तीस वर्षों में करना शुरू कर दिया। अपनी सीमा या तिब्बत के मामले को छोड़कर कोई समझौता

नहीं किया जाना चाहिए। यह सुलझ न पाए यह एक बात है पर चीन को यह न लगे कि भारत ने उसे स्वीकार कर लिया है। यह स्पष्ट रहना जरूरी है। इसे कूटनीतिक रूप से किया जाना चाहिए।

फिर सांस्कृतिक आदान-प्रदान में हमारे लेखक चीन जाते हैं। उन्हें तिब्बत के बारे में वहां प्रश्न उठाना चाहिए। वहां के लेखकों तथा संस्कृति के बारे में जानकारी लेनी चाहिए।

मुझे इस बात पर गहरी आपत्ति है कि हमारे लोग तिब्बत को चीन का अंदरूनी मामला मानने लगे हैं।

प्रश्न–एक प्रश्न यह है कि दलाई लामा के प्रति कुछ भारतीय मित्रों का कहना है कि उनके नेतृत्व में धर्म और राजनीति एक जगह मौजूद है। इसलिए लोकतंत्र के लिए इसका परिणाम अच्छा कैसे हो सकता है। यहां कई लोग भारत के संदर्भ में अक्सर इस तरह की चर्चा करते ही रहते हैं तो क्या तिब्बत के सम्बन्ध में भी वही बात है ?

नि.व.–इसके बारे में मैंने संकेत किया था कि तिब्बतियों के लिए लौकिक और गैर-लौकिक संसार अलग-अलग नहीं है। देखा जाये तो भारतीयों का भी अलग-अलग नहीं है। पर हमारे तथाकथित धर्मनिरपेक्षियों ने यूरोप के सांस्कृतिक प्रभाव में 'सेक्युलर' और 'रिलीजियस' को दो खेमों में विभाजित करने की कोशिश की है। यद्यपि एक भारतीय के जीवन में ऐसा कोई भेद नहीं रहता। धार्मिक अनुष्ठान उसके लौकिक, सांसारिक जीवन को भी प्रभावित करते हैं। देखा जाए तो 'धर्म' का असली अर्थ यही है और इसी अर्थ में वह अंग्रेजी के 'रिलीजन' से बहुत अलग है। रिलीजन जहां एक खास तरह की निष्ठा या आस्था से सम्बन्ध रखता है, धर्म मनुष्य के जीवन के समूचे क्रिया-कलाप से जुड़ा है, इसका अर्थ व्यापक है। यह बात तिब्बती लोगों पर और भी गहराई से लागू होती है। वहां बौद्धधर्म की नींव बड़ी पुरानी और गहरी है। उसमें भिक्षु जीवन और गैर-भिक्षु जीवन के बीच उतना गहरा अंतराल नहीं है जितना कि भारत या और देशों में है–जहां बिशप, प्रीस्ट्स, पुजारी या मुल्ला हैं उनका एक अलग संप्रदाय बना रहता है, और जो लेइटी हैं उनका अलग – जो सांसारिक जीवन बिताते हैं। और इन दोनों के बीच कोई गहरा सम्बन्ध नहीं रहता। तो पहले यह समझना चाहिए कि तिब्बती समाज की एक विशिष्ट बात है जो उसकी अस्मिता को बनाती है। फिर जहां धर्म लौकिक जीवन से अलग हो जाता है वहां यह आश्वासन स्वत: ही नहीं मिल जाता कि वहां तानाशाही सत्ता नहीं कायम होगी। सोवियत संघ में तो धर्म को पूरी तरह निष्कासित कर दिया गया था पर वहां घोर तानाशाही का विकास हुआ। इसलिए यह कहना कि धर्म और राजनीति के मिलने से ही किसी तरह की अलोकतांत्रिक व्यवस्था के जमने का खतरा रहता है–यह अपने में भी गलत विचार है। दूसरी बात जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण है वह यह कि दलाई लामा ने पिछले वर्षों में अनेक ऐसे वक्तव्य दिए हैं कि अगर मुझे फिर से तिब्बत जाने का अवसर मिले और

वहां जीवन सामान्य हो जाए तो सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था वही नहीं रहेगी जो पहले थी। उन्होंने यह भी कहा है कि वहां एक लोकतांत्रिक व्यवस्था होगी। यहां निर्वासित तिब्बती सरकार की संस्थाएं भी लोकतांत्रिक तरीके से ही अपना कार्य करती हैं। यहां लोगों को यह मालूम नहीं है कि पिछले वर्षों में दलाई लामा के मिशन में रेडिकल चेंज आया है। और ये परिवर्तन कोई आधुनिकीकरण के मोह में नहीं किए हैं दलाई लामा ने। वह पश्चिमी लोकतांत्रिक संस्थाओं का अनुकरण मात्र नहीं करने जा रहे हैं। उन्होंने उन संस्थाओं का गठन करने पर जोर दिया है जो अपने धार्मिक-सांस्कृतिक चरित्र को अक्षुण्ण रखते हुए भी व्यक्ति की स्वतंत्रता को विकसित कर सकें। जो शायद पुरानी व्यवस्था में उतना नहीं हो पाता था। इससे समझना चाहिए कि तिब्बत में जिस लोकतंत्र का विकास होगा वह भारतीयों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत हो सकता है। भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं का विकास अपनी प्राचीन अस्मिता को खोकर किया गया है। दलाई लामा इसका उल्टा करने का स्वप्न देख रहे हैं। यह अत्यंत महत्त्व की बात है। इसकी गंभीरता को समझने का प्रयास करना चाहिए।

□

आध्यात्मिक पुनरुत्थान के साझेदार :

बौद्धधर्म तथा हिन्दूधर्म का परस्पर सम्बन्ध

रामस्वरूप

हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म परस्पर सहोदर हैं। इन दोनों को अपने ऐकात्म्य की विस्मृत चेतना को फिर से जगाना चाहिए। इन दोनों को दिव्य तथा परम के प्रति अपनी श्रद्धा को पुनःप्रतिष्ठित करना चाहिए। ये दोनों परस्पर सहयोग करके एक जीते-जागते अध्यात्म की अदम्य शक्ति बन सकते हैं। इन दोनों को एक साथ आगे बढ़कर समस्त संसार को अपनी अमृत वाणी सुनानी चाहिए। उस वाणी के अभाव में निकृष्ट मतवाद तथा जीवन-दर्शन अपना अड्डा जमाए बैठे हैं और मानव जाति को घोर अकल्याण की ओर ढकेल रहे हैं।

बौद्धधर्म, एक सहस्र वर्ष के दीर्घ प्रवास के बाद, फिर अपनी जन्मभूमि भारतवर्ष में लौटा है, और इस देश में उसका समुचित स्वागत किया जा रहा है। हिन्दूधर्म के साधारण अनुयायी द्वारा बौद्धधर्म के स्वागत का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि भगवान बुद्ध हिन्दूधर्म की अध्यात्म-चेतना के अभिन्न अंग हैं।

भगवान बुद्ध का जन्म हिन्दू कुल में हुआ था। चाहे हम बौद्धधर्म के उदय, उत्थान तथा पराकाष्ठा को दृष्टिगोचर करें, चाहे बौद्धधर्म के शिल्प, स्थापत्य, अथवा उसकी मूर्तिकला, भाषा, श्रद्धा, मनीषा, शब्दावलि, नामानुक्रमणिका, विनय-प्रणाली तथा अध्यात्म-साधना को लक्ष्य करें, हिन्दुत्व की भावना उसके उदय तथा उत्कर्ष में सर्वत्र व्याप्त है। बौद्धधर्म भले ही दीर्घकाल तक सुदूर विदेशों में वास करता रहा हो, किन्तु उसकी अध्यात्म-साधना की अभिव्यक्ति तथा उसका उर्ध्वस्थ अध्यात्म-साक्षात्कार अभी भी हिन्दुत्व का परिचय देता है।

हिन्दूधर्म का सर्वस्व बौद्धधर्म में परिभुक्त नहीं है। किन्तु बौद्धधर्म का सर्वस्व अवश्य ही उस तन्त्र के अन्तर्गत है जिसका तात्त्विक बोध हिन्दू धर्म के नाम से होता है।

यद्यपि हिन्दूधर्म का कोई भी साधारण अनुयायी, जिसकी चेतना में एक सुदूर अतीत

की स्मृति संचित है, इस प्रकार के मनोभाव का परिचय देता है, तो भी कतिपय वितण्डावादी विद्वान एक सर्वथा विपरीत निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं। इनकी शास्त्रीय गवेषणा का मूलभूत सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक दृष्टि तथा सम्प्रदाय को स्वत:सम्पूर्ण मान कर ही उसकी व्याख्या होनी चाहिए। अतएव ये विद्वान किसी भी धर्म-सम्प्रदाय की व्याख्या करते समय उसको उसकी प्राणवान् परम्परा से पृथक कर लेते हैं। इनमें से कई तो अपने आपको इसीलिए बौद्ध धर्म के पण्डित मान बैठे हैं कि उन्होंने बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया है। पण्डितों का यह परिवार आज प्रचार कर रहा है कि बौद्ध धर्म ने हिन्दूधर्म के विरुद्ध विद्रोह किया था। इनके मतानुसार यह विद्रोह केवल तत्कालीन जाति-व्यवस्था अथवा यज्ञप्रधान उपासना-पद्धति के विरुद्ध ही नहीं था, अपितु उस युग की समस्त अध्यात्म-साधना तथा तत्त्वमीमांसा के विरुद्ध भी था।

वस्तुत: कुछ जड़वादी विद्वान तथा लोकायत राजनीति के समर्थक समवाय बौद्धधर्म का स्वागत बढ़-बढ़ कर इसीलिए कर रहे हैं कि इनके मतानुसार बौद्धधर्म आत्मा और परमात्मा के विषय में हिन्दूधर्म के 'अतीन्द्रिय अन्धविश्वासों' का युगानुकूल प्रतिरोध करने में सफल हो सकेगा। इनका विश्वास है कि 'हिन्दू-धर्म के अन्धविश्वास देश को दुर्बल बना रहे हैं।' इनकी दृष्टि में भगवान बुद्ध नव्य-न्याय के एक ऐसे प्रवीण पण्डित थे जो केवल प्रत्यक्ष तथा अनुमान का ही आश्रय लेते थे। वे स्वभावत: ही संशयात्मा थे। इसलिए उन्होंने अध्यात्म की सर्वसम्मत मान्यताओं के थोथेपन को तुरन्त ही देख लिया। किन्तु वे लोक-मत-भीरु भी थे। इसलिए उन्होंने अध्यात्म के विषय में अपने प्रकृत मत को प्रकाश रूप में प्रकट नहीं किया। अध्यात्म के प्रति एक कूट-मौन का आश्रय लेकर, उन्होंने जनता में एक बुद्धगम्य शील का प्रचार किया। इस शील का नाम उन्होंने शीलक्रय बतलाया। और इस प्रकार उन्होंने एक ही बार में अन्धविश्वास के व्यूह को भेद दिया।*

इस प्रकार बौद्धधर्म को एक बुद्धिवादी और सामाजिक शील का प्रचार करने वाला सम्प्रदाय बताकर प्रस्तुत किया जा रहा है। उस सम्प्रदाय में अध्यात्म जैसे 'अवाञ्छनीय अन्धविश्वास' का कोई स्थान नहीं और शील को आत्मा अथवा परमात्मा के प्रपञ्च से मुक्त कर दिया गया है।

---

* यहां तक कि डा. राधाकृष्णन् भी, जो अध्यात्म-सम्बन्धी विचारों से अनभिज्ञ नहीं हैं, ऐसी बातें कहते हैं कि जिनसे बौद्धधर्म की इस लोकायत व्याख्या को ही समर्थन मिलता है। भगवान बुद्ध के विषय में उनका कथन है कि "वे बुद्धिवादी हैं क्योंकि वे किसी भी अपौरुषेय श्रुति का आश्रय लिए बिना वस्तुसत्य अथवा अनुभूति का अन्वेषण करना चाहते थे। उनकी आकांक्षा थी कि वे तर्क के बल पर ही लोगों का मार्गदर्शन करें...वे एक विशुद्ध, बुद्धिवादी धर्म-सम्प्रदाय की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। वे एक ऐसे कूटतार्किक हैं जो अपने प्रतिपक्षी के साथ संवाद करके उसे मोक्ष मार्ग की ओर ले जाना चाहते हैं।" एक अन्य अवसर पर उन्होंने भगवान बुद्ध को एक अर्वाचीन संशयवादी बनाकर प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं, "किसी भी विषय में कोई निश्चित मत प्रकट करने से विरत रहना ही बुद्ध का सिद्धान्त था।"

किन्तु सम्यक् विचार बौद्धधर्म की इन समस्त व्याख्याओं का प्रत्याख्यान करता है। यह सत्य है कि भगवान बुद्ध एक महान मनीषी थे जिनकी दृष्टि बाह्य रूपों को भेद कर तुरन्त ही अंत:सार पर आविष्ट हो जाती थी। किन्तु वे एक आधुनिक ढंग के बुद्धिवादी तो बिल्कुल नहीं थे। इसके विपरीत, वे उन कोरे बुद्धिवादी सिद्धान्तों के विषय में, जो प्रत्येक युग के वितण्डावादियों को प्रिय होते हैं, उत्कट जुगुप्सा ही प्रकट करते थे। उन्होंने बुद्धिवादियों के सिद्धान्त सम्बन्धी समस्त अध्यवसाय को 'दृष्टि-गहन, दृष्टि-कान्तार, दृष्टि-विशूक, दृष्टि-विस्पन्दित, दृष्टि-संयोजन' बतलाया था जो 'दु:खमय, विघातमय, उपायासमय, परिदाहमय है।'

कतिपय वितण्डावादी विद्वान एक सर्वथा विपरीत निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं। इनकी शास्त्रीय गवेषणा का मूलभूत सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक दृष्टि तथा सम्प्रदाय को स्वत:सम्पूर्ण मान कर ही उसकी व्याख्या होनी चाहिए। अतएव ये विद्वान किसी भी धर्म-सम्प्रदाय की व्याख्या करते समय उसको उसकी प्राणवान् परम्परा से पृथक कर लेते हैं। इनमें से कई तो अपने आपको इसीलिए बौद्ध धर्म के पण्डित मान बैठे हैं कि उन्होंने बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया है। पण्डितों का यह परिवार आज प्रचार कर रहा है कि बौद्ध धर्म ने हिन्दू धर्म के विरुद्ध विद्रोह किया था।

भगवान बुद्ध ने सत्य का साक्षात्कार करने के लिए वर्गीकरण, समतुलन, निर्णयन, निष्कर्षण तथा प्रयोगीकरण इत्यादि प्रणालियों का आश्रय नहीं लिया। ये प्रणालियां ही बुद्धिवाद का सर्वस्व हैं। भगवान बुद्ध तो शीलशुद्धि, ध्यान, समाधि, समर्पण, अक्षुण्ण दृष्टाभाव और अविरत अभीप्सा की बात कहते थे। इन्हीं साधनाओं के पथ पर आगे बढ़ने से साधक अपने साधारण चित्त का अतिक्रमण करता है और परमसत्य का प्रकाश हठात् अथवा उत्तरोत्तर उदय होता है।

उस सिद्धान्त को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता जो बौद्धधर्म को केवल शील की एक संहिता बनाकर प्रस्तुत करता है। भगवान बुद्ध ने स्वयं इस सिद्धान्त का प्रत्याख्यान स्पष्ट शब्दों में किया है। उन्होंने आग्रह किया है कि शील के विषय में उनके शिक्षापद 'मुख्य' नहीं वरन् 'गौण' हैं। उन्होंने स्वयं प्रज्ञापित किया है कि 'समाधि' तथा 'प्रज्ञा' के विषय में दिए गए उनके उपदेश ही सारभूत हैं। उनके मत में जो लोग उनके शील-सम्बन्धी शिक्षापदों को लेकर उनकी सराहना करते थे वे 'अज्ञ' और साधारण बुद्धि वाले अथवा 'पृथग्जन' थे *।

* यहां हम बौद्धधर्म की उस तृतीय व्याख्या का उल्लेख नहीं कर रहे जो विषादवादी है। उस व्याख्या के अनुसार बौद्धमत का मर्म है 'विवशता', 'सूनापन', 'निस्सारता', 'निरर्थकता' का बोध। सार्त्र जैसे मनीषियों में इस व्याख्या का परिचय प्राप्त होता है।

अतएव भगवान बुद्ध के तर्क तथा शील का एक पारमार्थिक और ऊर्ध्वस्थ आधार था। यह परमार्थ ही भगवान के शिक्षापदों का प्रकृत प्रकाश और सार है। इसी का उपदेश देने के कारण भगवान एक महामहिम जगद्गुरु और पथप्रदर्शक के नाते विख्यात हैं।

वस्तुत: कुछ जड़वादी विद्वान तथा लोकायत राजनीति के समर्थक समवाय बौद्धधर्म का स्वागत बढ़-बढ़ कर इसीलिए कर रहे हैं कि इनके मतानुसार बौद्धधर्म आत्मा और परमात्मा के विषय में हिन्दूधर्म के 'अतीन्द्रिय अन्धविश्वासों' का युगानुकूल प्रतिरोध करने में सफल हो सकेगा। इनका विश्वास है कि 'हिन्दूधर्म के अन्धविश्वास देश को दुर्बल बना रहे हैं।' इनकी दृष्टि में भगवान बुद्ध नव्य-न्याय के एक ऐसे प्रवीण पण्डित थे जो केवल प्रत्यक्ष तथा अनुमान का ही आश्रय लेते थे। वे स्वभावत: ही संशयात्मा थे। इसलिए उन्होंने अध्यात्म की सर्वसम्मत मान्यताओं के थोथेपन को तुरन्त ही देख लिया। किन्तु वे लोक-मत-भीरु भी थे।

इसी प्रकार भगवान बुद्ध की करुणा केवल लौकिक अथवा मानवताप्रवण नहीं थी। वस्तुत: वह सम्यक् सम्बुद्ध की अगाध और अम्लान करुणा थी–उन पुद्गल प्राणियों के प्रति जो जन्म, व्याधि, जरा और मरण के भवचक्र में फंसे हुए हैं। जिस शान्ति की वे शिक्षा देते थे उसे व्यक्तियों अथवा राष्ट्रों के बीच की गई सन्धि नहीं समझना चाहिए। उस शान्ति का उपदेश तो उपनिषद् में मिलता है–यतो वाचा निवर्तते। जिस आनन्द की बात वे कहते थे उसे शारीरिक क्षुधा-निवारण अथवा दैहिक सुखबोध अथवा मानसिक उल्लास नहीं समझना चाहिए। इसके विपरीत, वह आनन्द बारम्बार जन्म लेने के जंजाल से मुक्ति का आनन्द था।

इस संक्षिप्त विषयान्तर के बाद हम फिर उस प्रसंग की ओर लौटते हैं जिससे इस लेख का सूत्रपात हुआ था, अर्थात् बौद्धधर्म का हिन्दू धर्म के साथ क्या सम्बन्ध है।

इस सम्बन्ध की चर्चा कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है। प्रथमत: यह चर्चा हमें उन गहन चिन्तनों तथा आदर्शों को समझने में सहायता देगी जो संसार के आधे भाग में आदर-प्राप्त हैं। द्वितीयत: हमारे लिए यह समझना सम्यक् और शिक्षाप्रद रहेगा कि परमार्थ के विषय में अपने साक्षात्कार को उन दो अध्यात्म-परंम्पराओं ने किस प्रकार व्यक्त किया है जो संसार की सबसे प्राचीन, सर्वाधिक गुह्य, सर्वाधिक स्थायी, और सर्वाधिक सृजनशील परम्पराएं रही हैं। तृतीयत: यह चर्चा सभी साधकों के आत्मान्वेषण में सहायक होगी, उनका साधनापथ आलोकित करेगी और उनकी अपनी अनुभूतियों को मुखरित करेगी। इन दो अध्यात्म-परम्पराओं को समझना अध्यात्म-विद्या के गूढ़तम प्रसंगों को समझना है, योगाभ्यास और अध्यात्म-साधना के सम्पूर्ण स्वरग्राम से परिचय प्राप्त करना है।

भगवान बुद्ध का मौन

हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म का परस्पर सम्बन्ध दो कारणों से आच्छन्न हो गया है और अन्यथा समझा गया है। इन्हीं दो कारणों से उस सम्बन्ध की अन्तरंगता में भी ओट आयी है।

एक कारण है भगवान बुद्ध का वह मौन जो उन्होंने ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा इत्यादि प्रश्नों के प्रसंग में धारण किया। उपनिषद् साहित्य में ये ही प्रश्न सर्वप्रमुख हैं। दूसरा कारण है भगवान बुद्ध की व्यक्तिगत व्याख्या एवं व्यञ्जना। उस प्रकार की व्यञ्जना उपनिषदों में अविद्यमान नहीं है। किन्तु वहां वह एक बृहत्तर समष्टि का एक पक्ष मात्र है और इसलिए पलायन-प्रवृत्ति तथा दु:खवाद का वैसा एकांगी आभास नहीं उपजाती।

प्रथमत: हम भगवान बुद्ध के मौन की विवेचना करेंगे। आत्मा तथा परमात्मा के विषय में विवेचना न करने के दो कारण थे। उन्होंने उन समस्त प्रश्नों का उत्तर देना अस्वीकार कर दिया जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के आध्यात्मिक कल्याण के साथ क्रियात्मक रूप में सिद्ध नहीं होता था। अध्यात्म स्वभावत: ही क्रियापरक होता है। अध्यात्म कभी भी बुद्धिवादी सिद्धान्तों को लेकर व्यस्त नहीं होता।

भगवान बुद्ध के युग में तो यह मौन अत्यन्त आवश्यक भी था। बौद्ध साहित्य के अवलोकन से उस युग का जो परिचय प्राप्त होता है उससे यह स्पष्ट है कि देश में वितण्डावाद के अनेकानेक आत्मघातक सिद्धांत सर्वत्र व्याप्त थे और मत-मतान्तरों की इस विकट व्यूह-रचना में फंस कर मानव-बुद्धि सर्वथा विपथगामी बनने लगी थी। उस समय तत्त्वशास्त्र के बासठ सिद्धान्त परस्पर विवाद कर रहे थे-अठारह सिद्धान्त सृष्टि के विषय में और चवालीस सिद्धान्त प्रलय के विषय में। आहार को लेकर तपस्या करने की बाईस प्रणालियां थी, वस्त्र को लेकर तेरह प्रणालियां। मरण के उपरान्त आत्मा की स्थिति को लेकर अनवरत वाद-विवाद होता रहता था।

इन वाद-विवाद करने वालों में अक्रियावादी थे, दैववादी थे, जड़वादी थे, अकृतवादी थे, अनिश्चितत्ववादी थे। और अन्य अनेक प्रकार के वादी-प्रतिवादी तथा वितण्डावादी थे। प्रत्येक नगर में विशाल कुतूहलशालाएं बनी हुई थीं जहां पर ये सिद्धान्ती लोग समवेत होकर आत्मा-परमात्मा तथा दिक्-काल के विषय में विशद विवेचना करते रहते थे। बुद्धि के इस घात-प्रतिघात में अध्यात्म-साधना का प्रसंग यदि विस्मृत हो जाता था तो यह विस्मय का विषय नहीं। बुद्धि की कतरब्योंत भगवदाराधना का स्थान भरती जा रही थी।

इस प्रकार का वातावरण किसी भी अध्यात्म-साधक के मन में सत्यश: विरक्ति उपजाता है। वह बुद्धि के बुलबुले उठाने की अपेक्षा सम्यक् साधना को ही अधिक उपादेय मानता है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि भगवान बुद्ध ने इन प्रश्नों का

उत्तर देना अस्वीकार कर दिया। प्रवीण पण्डित उनके पास आकर इन प्रश्नों को अनेक प्रकार से पूछते थे। किन्तु भगवान बुद्ध ने मौन रहकर ही इन समस्त प्रश्नों का प्रत्युत्तर दिया।

यह सत्य कि भगवान बुद्ध की साधना सर्वथा क्रियापरक थी, उस संवाद से स्पष्ट हो जाता है जो बुद्ध ने आयुष्मान् मालुक्यपुत्त नाम के भिक्षु के साथ किया था। एक और भी कारण से भगवान बुद्ध ने तात्त्विक प्रश्नों की विवेचना करना अस्वीकार किया था। ये प्रश्न केवल निरर्थक ही नहीं थे, अपितु इनके उत्तर किसी बुद्धिगम्य भाषा में देना भी असम्भव था। केनोपनिषद् में कहा गया है : ''वहां न तो चक्षु-इन्द्रिय पहुंच सकती है, न वाक्-इन्द्रिय पहुंच सकती है, न मनस् ही। जिस प्रकार से इसको बतलाया जाए कि यह ऐसा है, वह प्रकार न तो हम स्वयं अपनी बुद्धि से जानते हैं, न दूसरों से सुनकर ही जानते हैं।'' भगवान बुद्ध ने भी अपने आप को ऐसी ही असमर्थता की स्थिति में पाया। अध्यात्म सम्बन्धी समस्त साहित्य के अनुसार जो बातें बुद्धि के परे हैं उनको बुद्धिगम्य सिद्धान्तों के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। अतएव इन प्रश्नों का जो भी उत्तर दिया जाए, वही 'अव्याकृत' है। भगवान बुद्ध बार-बार इस बात को दुहराते थे।

इसी बात के समान बात मुण्डकोपनिषद् के एक मन्त्र में कही गई है :

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

अर्थात् जिस प्रकार बहती हुई नदियां नाम-रूप गंवा कर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी महात्मा नाम-रूप से विहीन होकर परम से भी परे, दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाता है।

वस्तुतः मुक्त आत्मा अथवा जीव की स्थिति के विषय में कहा ही क्या जा सकता है? क्या उसको व्यष्टिगत अथवा समष्टिमय अथवा परम-को-प्राप्त कहा जा सकता है? क्या उस स्थिति का वर्णन अथवा आकलन सम्भव है ? क्या हम उसको शब्दों के सहज अर्थ में अस्तित्व अथवा अनस्तित्व कह सकते हैं ? वह स्थिति तो गम्भीर, अपरिमेय, दूरवगाह्य है।

वेदान्त का उत्तर इससे भिन्न नहीं है। यह सत्य है कि वेदान्त की भाषा अधिक सकारात्मक है। किन्तु उस भाषा में व्यक्त उत्तर तो इससे असदृश नहीं दिखता। माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार परमतत्त्व अदृष्ट, अग्राह्य, अचिन्त्य, अलक्षण, अव्यपदेश्य हैं।

किन्तु भगवान बुद्ध द्वारा मौन धारण कर लेने की अवस्था में भी क्या हम उनके आशय का आकलन कर सकते हैं ? आकलन से हमारा अभिप्राय यह नहीं कि हम उस सत्य

का साक्षात्कार उसी प्रकार कर लें जिस प्रकार कि भगवान बुद्ध ने किया था। बुद्धि के लिए तो वह सत्य सर्वथा अगम्य है। आकलन से हमारा आशय यही है कि क्या हम भगवान बुद्ध को अध्यात्म-साधना की परम्परा में यथास्थान प्रतिष्ठित कर सकते हैं ? अर्थात्, क्या भगवान बुद्ध एक अकारण अकस्मात् थे–इस अर्थ में कि उनको जो साक्षात्कार हुआ वह उनके पूर्व किसी अन्य को नहीं हुआ था और उनके अनन्तर भी, उनके कतिपय प्रवीण शिष्यों के अतिरिक्त, किसी को नहीं हुआ? अथवा वे अध्यात्म-साधना की एक ऐसी प्रमाण परम्परा के प्रमुख एवं प्रतापवान प्रतिनिधि थे जो कि उपनिषद्-ग्रन्थों में पूर्ण प्रकारेण विकसित हुई है तथा जो प्रत्येक युग में, प्रत्येक धर्म-सम्प्रदाय की श्रुति द्वारा प्रतिपादित की गई है? संक्षेप में, क्या वे अध्यात्म-साधना की उस परम्परा में प्रतिष्ठित थे जो, कुछ गौण प्रसंगों को छोड़ कर, सनातन एवं सार्वजनीन है, अथवा वे मानवजाति की अध्यात्म-परम्परा में एक अकारण, अकस्मात् एवं शुद्ध संयोगमात्र थे?

इस प्रकार प्रस्तुत किए जाने पर प्रश्न का उत्तर देना दु:साध्य नहीं रह जाता। भगवान बुद्ध की अध्यात्म-अनुभूति एक अकारण अकस्मात् नहीं थी। वह अनुभूति अप्रत्याशित एवं व्यक्तिगत भी नहीं थी। इसके विपरीत, वह अनुभूति सर्वथा प्रत्याशित एवं सार्वजनीन थी। और **यह मान लेने के लिए कि उनकी अध्यात्म-अनुभूति पूर्णरूपेण वेदान्त की परम्परा के अन्तर्गत थी, हमारे पास अनेक प्रमाण हैं। भगवान बुद्ध के शिक्षापदों पर मनन करने से तो यह निष्कर्ष अपरिहार्य हो जाता है। भगवान बुद्ध ने स्वयं भी इससे अधिक आग्रह नहीं किया। उन्होंने केवल यही आग्रह किया था कि उन्होंने वह ''पुरातन मार्ग पा लिया है, जिस पर पूर्व काल के सम्यक् सम्बुद्ध चले थे।''**

वेदान्त के अनुरूप ही बौद्ध धर्म में भी परम अनुभूति होने से पूर्व अहंकार का अतिक्रमण विधेय है। भगवान बुद्ध उपनिषद् के इस तत्त्वबोध का अनुमोदन करते हैं।

व्यावहारिक सत्ता के प्रत्याख्यान द्वारा ही नहीं, अपितु पारमार्थिक तत्त्व के प्रतिपादन द्वारा भी भगवान बुद्ध उपनिषदों का ही अनुसरण करते हैं। जिस शून्यवादी व्याख्या के लिए बौद्ध धर्म आज विख्यात है वह नागार्जुन इत्यादि भगवान बुद्ध के परवर्ती अनुयायियों की ही कृति है। भगवान बुद्ध के अपने शिक्षापदों में तो शून्यवाद का समर्थन करने वाला कोई सिद्धान्त नहीं मिलता। सम्बोधि प्राप्त करने के उपरान्त भगवान बुद्ध ने स्वयं कहा था : ''मैंने अमृत, अनुत्तर योगक्षेम निर्वाण को पा लिया''। उन्होंने निर्वाण की स्थिति उसको कहा था ''जिसमें न जन्म रहता है, न जरा, न व्याधि, न मरण, न शोक, न संक्लेश।'' उदान (सुत्तपिटक) में इस स्थिति को 'अजात, अभूत, अकृत, असंस्कृत' कहा गया है।

यह तो प्रायः प्रायः वेदान्त की ही भाषा है। ईशोपनिषद् में तत् को अविनाशी, अमर, अपापबिद्ध, अजन्मा, स्वयम्भू और परिभू कहा गया है; मुण्डकोपनिषद् में दिव्य, अमूर्त तथा शुभ्र, और श्वेताश्वतरोपनिषद् में अकाल, अमल तथा महद्यशस्। उस स्थिति में जिसको भगवान बुद्ध निर्वाण कहते हैं और जिसको वेदान्त ब्रह्मस्थिति बतलाता है, क्षय

तथा वृद्धि का पूर्ण अवसान हो जाता है। वह स्थिति माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार 'प्रपञ्चोपशम' कहलाती है, अर्थात् उसमें प्रपञ्च का पूर्ण शमन हो जाता है। वह स्थिति 'शाश्वतीसमा' अर्थात सर्वदा एकरस रहने वाली और 'गम्भीर, अपरिमेय तथा दुरवगाह्य' है।

सम्बोधि की अध्यात्म-अनुभूति का जो मनोहर वर्णन भगवान बुद्ध द्वारा दिया गया है वह परमतत्त्व के स्वरूप के विषय में उपनिषद् के शिक्षापदों का ही अनुमोदन एवं समर्थन करता है।

यहां पर निर्वाण की अनुभूति का वर्णन 'शून्यता' अथवा 'अभाव' की भाषा में व्यक्त नहीं किया गया, प्रत्युत उस अनुभूति को 'समाधि, आनन्द, विमुक्ति तथा सम्बोधि' की संज्ञा दी गई है। यह वही भाषा है जिसका व्यवहार उपनिषदों में हुआ है–अनिर्वचनीय शान्ति, सत्, चित्, आनन्द, विज्ञान, विमुक्ति, प्रकाश। अध्यात्म की परम्परा में इस स्थिति को 'शून्य' भी कहा गया है तथा 'पूर्ण' भी।

व्यावहारिक जगत् की निस्सारता

सम्बोधि को प्राप्त होते समय गौतम ने केवल एक 'गम्भीर, अपरिमेय, दुरवगाह्य' स्थिति में ही प्रवेश नहीं किया; उन्होंने केवल उस सत्य का ही साक्षात्कार नहीं किया जो कि उपनिषदों के वचनानुसार 'शान्ति' तथा 'आनन्द' तथा 'मुक्ति' से पूर्ण और अनिर्वचनीय है; अपितु व्यावहारिक जगत् की वास्तविक सत्ता का साक्षात्कार भी किया। और उस साक्षात्कार का विवरण उस विवरण से विभिन्न नहीं है जो वेदान्त इस जगत् के विषय में देता है। भगवान् बुद्ध ने एक क्षण में वह समस्त प्रपञ्च प्रत्यक्ष कर लिया जिसके द्वारा यह संसार, यह सृजन तथा संहार, और जीवन का यह चञ्चल प्रवाह सृष्ट होता है। उन्होंने उसको देख लिया जो अनन्त आवागमन का कारण है और जो अनावरत जन्म, जरा, व्याधि तथा मृत्यु के व्यूह का रचयिता है। उन्होंने कर्म के प्रचण्ड विधान को–प्रतीत्य-समुत्पाद के विधान को–देख लिया। "अविद्या के कारण संस्कार होता है, संस्कार के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम-रूप, नाम-रूप के कारण षडायतन, षडायतन के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जरा, मरण, शोक, परिदेय, दुख, दौर्मनस्य और उपायास।"

सिद्धान्त गहन है। जिन शब्दों द्वारा इस प्रक्रिया का वर्णन किया है उनके अर्थ साधना द्वारा ही अन्तर में अनुभूत किए जा सकते हैं।

उन्होंने इस प्रतीत्य-समुत्पाद का अनुलोम-प्रतिलोम मनन किया। उन्होंने देख लिया कि इस शृंखला में किस प्रकार समस्त दुःख-पुञ्ज का समुदय होता है। उन्होंने यह भी देख

---

* एडवर्ड कोञ्जे बौद्धधर्म के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उनके मत में 'शून्य' शब्द अभिधर्म सम्प्रदाय में भले ही ज्ञात रहा हो, पाली त्रिपिटक में उसका उल्लेख अल्प है। और पाली त्रिपिटक ही सबसे प्राचीन बौद्ध साहित्य है।

लिया कि किस प्रकार इसकी अन्तिम कड़ी के पूर्ण क्षय और निरोध से यह समूची शृंखला ध्वस्त हो जाती है और दुःख-पुञ्ज का विनाश हो जाता है। और ज्यों ही उन्होंने व्यावहारिक जगत् के विधान को देखा, त्यों ही वे बन्धन विमुक्त हो गए। तब उन्होंने यह उदान कहा, "गृहकार! अब मैंने तुझको देख लिया। तू पुनरेण गृह-निर्माण नहीं कर सकेगा। तेरी सब कड़ियां टूट चुकी हैं, गृह-शिखर बिखर गया है, चित्त निर्वाण को प्राप्त हो गया, तृष्णा का क्षय देख लिया।"

भगवान बुद्ध ने जो देखा वह उपनिषद् में विख्यात है–भगवान से विलग होकर यह मानव संसार, और पारमार्थिक सत्य से पृथक माना जाने पर यह व्यावहारिक जगत्, अकिंचित् है, अकिंचित् से भी न्यून है।

अहम्मन्यता का विनाश, सत्त्वशुद्धि, तृष्णा तथा मनस् द्वारा उद्भूत संसार का अतिक्रमण–ये कुछ ऐसी प्रक्रियाएं हैं जो प्रत्येक महान संत के जीवन में घटित होती हैं। किन्तु साधारणतया ये प्रक्रियाएं परोक्ष रूप में सम्पन्न होती रहती हैं। भगवान बुद्ध को नाम-रूपमय संसार के समुदय तथा निरोध के विषय में जो ज्ञान इतनी स्पष्टता तथा अन्तरंगता के साथ उपलब्ध हुआ था, वह तो दुर्लभ ही रहता है। इसके अतिरिक्त, अनेक संतों के लिए उनके बाह्य चित्त तथा सत्त्व का, एक मात्र में, शुद्ध एवं शान्त हो जाना ही ऊर्ध्वस्थ आत्मानुभूति की उपलब्धि के लिए पर्याप्त होता है। किन्तु भगवान बुद्ध के विषय में यह स्पष्ट है कि उनकी अनुभूति बाह्य तत्त्व की शुद्धि तथा शान्ति तथा अनासक्ति तक ही सीमित नहीं थी। उनमें तो उस समस्त संज्ञा का सम्पूर्ण निरोध तथा क्षय हुआ था जिससे कि नाम-रूपमय संसार का उद्भव होता रहता है। उनके संवाद (और उनकी मूर्तियां तथा चित्र भी) जिस शान्ति, आत्मबोध तथा अनासक्ति को व्यक्त करते हैं, उन सब पर परमार्थ की परिपूर्ण छाप अंकित है।

भगवान बुद्ध का साक्षात्कार सांख्य के साक्षात्कार के समान है कि उसमें भी सृष्टि अथवा आविर्भाव की क्रिया यद्यपि किसी परमपुरुष की अपेक्षा नहीं करती तो भी एक ऐसे विधान के वशीभूत रहती है जो कि परमपुरुष से कम पारमार्थिक नहीं। भगवान बुद्ध की वाणी में प्रतीत्य-समुत्पाद के विभिन्न अवयवों की व्याख्या, जिस पर नाम-रूप का समस्त संसार अवलम्बित है, साधारण मानव-मानस की अनुभूतियों का आभास उपजाती है। किन्तु उनको उन अवयवों के प्रवर्तन का जो ज्ञान प्राप्त हुआ था वह पारमार्थिक था।

भगवान बुद्ध की क्रियापरक पद्धति के अनुरूप ही उनके द्वारा प्रतिपादित सृष्टिक्रम के अवयव भी पृथक से प्रतीत होते हैं–कर्म, स्पर्श, संज्ञा, तृष्णा, इत्यादि। इसके विपरीत सांख्य अपनी बात को सिद्धान्तों एवं तत्त्वों की भाषा में व्यक्त करता है–प्रकृति, महत्, अहंकार, मनस्, तन्मात्र, इत्यादि।

दु:ख तथा आनन्द के विषय में हिन्दूधर्म तथा बौद्धधर्म की धारणाएं परस्पर पूरक ही हैं, परस्पर विरोधी नहीं हैं। नीचे की ओर से देखने पर, द्वन्द्व तथा अनेकत्त्व के दृष्टिकोण से, भगवान से विलग होकर, यह जगत् बौद्ध धर्म की धारणा के अनुरूप ही दु:ख, दौर्मनस्य,

जो लोग भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धासम्पन्न एवं भक्तियुक्त हैं उनके लिए जिस प्रकार यह उचित है कि वे उस परम्परा के प्रति भी श्रद्धासम्पन्न तथा भक्तियुक्त हो जिसने भगवान बुद्ध को जन्म दिया, उनका पालन-पोषण किया और उनके पिता, गुरु तथा प्रेरक का पद ग्रहण किया उसी प्रकार एक श्रद्धासम्पन्न हिन्दू के लिए भी यही उचित है कि वह बौद्ध धर्म के प्रति अपनत्व का भाव रखे। एक श्रद्धासम्पन्न बौद्ध के लिए जिस प्रकार यह अपरिहार्य है कि वह एक श्रद्धासम्पन्न हिन्दू भी बने, वैसे ही एक श्रद्धासम्पन्न हिन्दू के लिए भी यह अपरिहार्य है कि वह बौद्धधर्म के प्रति अपना दायित्व निभाये।

अनित्यत्व तथा वेदना का आगार है। किन्तु ऊपर की ओर से देखने पर, उस एक अथवा तत् के सर्वतोमुखी दृष्टिकोण से, यह सब कुछ आनन्द में सरोबार है, यह सब-कुछ मां भगवती की मुग्धकारी लीला है अथवा, हिन्दूधर्म की परम्परागत भाषा में, श्रीकृष्ण अथवा शिव की प्रेममयी एवं आनन्दमयी लीला है। तैत्तिरीय उपनिषद् का वचन है : "**आनन्दो ब्रह्मेति व्यजनात्। आनन्दादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिविशन्तीति।**" अर्थात आनन्द ही ब्रह्म है, यह जान लिया। आनन्द से ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्द से जीते हैं (तथा) इस लोक से प्रयाण करते हुए आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।

तो फिर हिन्दूधर्म तथा बौद्धधर्म के बीच विरोध कहां रह जाता है ?

उपसंहार

भगवान बुद्ध, उनकी अध्यात्म-अनुभूति तथा उनके शिक्षापद हिन्दू-परम्परा के ही अन्तर्गत थे। वे उपनिषद् की परम्परा के उत्तराधिकारी थे। उनको किसी अन्य अर्थ में समझा ही नहीं जा सकता। उनको उस परम्परा से पृथक करना, जिसका उन्होंने अनुमोदन, पोषण एवं प्रतिनिधित्व किया था, और उनको अलग से समझने की चेष्टा करना, केवल भ्रान्ति का ही प्रसार करता रहा है और इस कारण उनके शिक्षापदों की दुर्गति ही हुई है। उन्होंने स्वयं किसी अभिनव आविष्कार का दावा नहीं किया। उन्होंने तो यही दावा किया था कि उन्होंने एक 'पुरातन पथ को देख लिया' और वे एक 'पुरातन पथ' पर चल रहे हैं। अत: जो लोग भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धासम्पन्न एवं भक्तियुक्त हैं उनके लिए जिस प्रकार यह उचित है कि वे उस परम्परा के प्रति भी श्रद्धासम्पन्न तथा भक्तियुक्त हो जिसने भगवान बुद्ध को जन्म दिया, उनका पालन-पोषण किया और उनके पिता, गुरु तथा प्रेरक

का पद ग्रहण किया उसी प्रकार एक श्रद्धासम्पन्न हिन्दू के लिए भी यही उचित है कि वह बौद्धधर्म के प्रति अपनत्व का भाव रखे। एक श्रद्धासम्पन्न बौद्ध के लिए जिस प्रकार यह अपरिहार्य है कि वह एक श्रद्धासम्पन्न हिन्दू भी बने, वैसे ही एक श्रद्धासम्पन्न हिन्दू के लिए भी यह अपरिहार्य है कि वह बौद्धधर्म के प्रति अपना दायित्व निभाये।

अपने आप को भगवान बुद्ध के उपासक बतलाने वाले कुछ अद्यतन बौद्ध उस परम्परा को लाञ्छित करने की होड़ लगा बैठे हैं और संयम की सीमा लांघते रहते हैं। यह सारा अध्यवसाय उनके अज्ञान का ही द्योतक है।

भगवान बुद्ध के भक्त किसी भी बौद्ध को भगवान तथागत, तदुपरान्त सम्राट अशोक की तरह भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व करना चाहिएं। हिन्दूधर्म किसी एक किताब में बन्द अथवा केवल एक पैगम्बर द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय नहीं है। वह तो मनुष्य की उस अनामा अध्यात्म-परम्परा और ज्ञान-सम्पदा का आगार है जिसे अनेकानेक ऋषियों और सन्तों ने संजोया है। हिन्दूधर्म तर्क द्वारा सजायी गई किसी मीमांसा की महारनी नहीं है। इसके विपरीत वह अनाम को नामांकित करने की और अकथनीय को वाणी में व्यक्त करने

इन मतवादों ने यूरोप को अपना पहला शिकार बनाया। बाद में वे एशिया की ओर बढ़े। चीन को इनके करालपाश ने दबोच लिया है। किन्तु चीन की सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जड़ें गहरी हैं, चीनी जनता ने बहुत अनाचार सहा है और वह समय बदलने की बाट जोहना जानती है। अतएव यह निस्सन्देह है कि चीन अपने नए शासकों की बर्बरता से बच कर निकल जाएगा। अधुना चल रहे उद्वेग और विध्वंस के शान्त हो जाने पर चीन की जनता की सौम्य तथा उदात्त गुणसम्पदा फिर विजय प्राप्त करेगी। वस्तुतः चीन द्वारा आत्मोद्धार की साधना के संकेत मिलने लगे हैं।

की साधना है। वह उस परात्पर की प्रतीति को भाषा प्रदान करने का प्रयत्न है जिसके साथ अनेक प्रकार के सम्पर्क स्थापित करने के लिए साधकों ने अपने-अपने आधार और अधिकार के अनुरूप प्रत्येक युग में स्पृहा की है।

हिन्दूधर्म एक विशाल जलाशय के समान है जिसमें से अनेक नदियां निकलती हैं और जिसमें वे नदियां अनेक अपरिचित और उर्वर अंचलों में प्रवाहित होने के बाद पुनः समाहित हो जाती हैं। यह धर्म एक ऐसा सृजनशील तन्त्र है जिसने अनेक सुन्दर और सजीव आकृतियों को प्रकट किया है। स्वयं अनैतिहासिक अर्थात् सनातन होते हुए भी, इस धर्म ने अनेक ऐसे सम्प्रदायों और आम्नायों को जन्म दिया है जिनके इतिहासों में अनेक उतार-चढ़ाव मिलते हैं। यह धर्म हृदयगुहा में प्रतिष्ठित केवल एक ही प्रभु की आराधना करता है। किन्तु समय-समय पर इसने अनेक ऐसे शास्ता और सिद्धों का पोषण किया

है जिनकी शक्ति और दृष्टि अनुपम थी और जो ऊर्ध्वस्थ तथा अन्तस्थ देवताओं के अवतार कहलाए।

बौद्धधर्म, जैनधर्म, ब्रह्मवाद, शाक्तमत, वैष्णवमत, सिक्खपन्थ तथा अद्वैत एक ही जननी की कुलीन सन्तान हैं। इनमें से कोई भी मार्ग, जब तक वह अपनी सर्वसाधारण परम्परा और अपने सर्वसाधारण उद्‌गम को नहीं भुलाता, अपने अनुयायी को पूर्ण तृप्ति प्रदान करता है। किन्तु यदि किसी मार्ग को संकीर्ण सम्प्रदाय बनाकर, समष्टि का प्रत्याख्यान किया जाता है तो वह एकांगी और विकृत हो जाता है। हिन्दूधर्म एक ऐसी वीणा है जिसमें से अनेक मधुर स्वर निकलते हैं। स्वरग्राम की समष्टि में प्रत्येक स्वर अपने-अपने स्थान पर सार्थक है। वेद कहता है–एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति। इसी प्रकार धर्म भी एक ही है, और शाश्वत दर्शन भी एक ही है। वह है सनातन धर्म जो हिन्दूधर्म का पुराना नाम है। किन्तु सनातन धर्म की अभिव्यक्तियां अनेक हैं। विविध सम्प्रदाय एक ही सनातन धर्म के विविध पक्ष हैं, अगम्य की ओर गमन के विविध मार्ग। वे सब के सब स्तुत्य हैं और सब अपनी-अपनी श्रद्धा के सुमन एक ही वेदी पर चढ़ाते हैं।

इन मतवादों ने यूरोप को अपना पहला शिकार बनाया। बाद में वे एशिया की ओर बढ़े। चीन को इनके करालपाश ने दबोच लिया है। किन्तु चीन की सांस्औतिक तथा आध्यात्मिक जड़ें गहरी हैं, चीनी जनता ने बहुत अनाचार सहा है और वह समय बदलने की बाट जोहना जानती है। अतएव यह निस्सन्देह है कि चीन अपने नए शासकों की बर्बरता से बच कर निकल जाएगा। अधुना चल रहे उद्वेग और विध्वंस के शान्त हो जाने पर चीन की जनता की सौम्य तथा उदात्त गुणसम्पदा फिर विजय प्राप्त करेगी। वस्तुतः चीन द्वारा आत्मोद्धार की साधना के संकेत मिलने लगे हैं।

भारत की जनता भी इन निऔष्ट मतवादों के मोहजाल से नहीं बच पा रही। नए भारत में उसके आध्यात्मिक उत्तराधिकार को प्रतिगामी, भाररूप और अकल्याणकारी कहा जा रहा है। देश के राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक जीवन की बागडोर जिन लोगों के हाथों में आई है वे भारत की पुरातन निष्ठाओं को न तो समझते हैं, न उन निष्ठाओं के प्रति सहृदय अथवा सहनशील हैं। किन्तु यह संशय का विषय नहीं है कि वे लोग असफल रहेंगे और अदूर भविष्य में भारत फिर अपने स्वधर्म पर आरूढ़ होगा।

---

* बौद्धधर्म अपने विश्व-प्रसार में शायद हिन्दूधर्म के पूर्ववर्ती प्रसार का ही अनुगमन कर रहा था। बौद्धधर्म वहां-वहां ही पहुंचा जहां हिन्दूधर्म पहले से ही प्रतापित तथा प्रतिष्ठित हो चुका था। उन देशों में बौद्धधर्म ने अपने लिए वहां की जनता के हृदय स्थायी तौर पर जीत लिए और वहां का कुछ भी नष्ट किए बिना वहां जम गया। नए देशों की मनीषा द्वारा पुष्ट होकर, बौद्धधर्म नए-नए रूपों में पल्लवित हुआ और सब स्थानों पर पूर्णतया स्वदेशीय बन गया। परदेश का कोई दूरवर्ती और अपने-आपको उसका प्रभु मानने वाला प्रतिष्ठान उसका प्रवर्तन नहीं कर रहा था। इसके विपरीत, बौद्धधर्म ने स्थानीय धरती से ही रस संजोया। इसीलिए बौद्धधर्म किसी ऐसे साम्राज्यवाद का वाहन नहीं बना जो दूर से उन देशों का शोषण करे। उसका केन्द्र तथा तन्त्र सदा प्रत्येक देश के भीतर ही रहा। इसीलिए वह अपने सभी अनुयायियों की वाणी में बोल पाया।

पाश्चात्य साम्राज्यवाद ने धरा के अनेक अंचलों को विध्वस्त किया है। केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, संस्कृति के नाते भी। उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका के देशों में वहां के स्वदेशीय धर्मों का लोप हो गया है। अफ्रीका महाद्वीप के स्वदेशीय धर्म भी इस्लाम तथा ईसाइयत द्वारा सुनियोजित रूप से आक्रान्त हैं। आर्थिक साम्राज्यवाद पीछे हटता जा रहा है। किन्तु धार्मिक तथा आध्यात्मिक धर्षण अबाध, अभूतपूर्व और उद्दाम आवेग के साथ आगे बढ़ रहा है। पुराने साम्राज्यवाद की तुलना में यह अनवरत चलने वाला धर्षण अधिक विध्वंसकारी है।

आज जिन मतवादों का घटाटोप है उनके अनेक नाम हैं, अनेक रूप हैं। उनमें से कई-एक लौकिक कहलाते हैं, कई-एक धर्म का छद्मवेश धारण किए हुए हैं। किन्तु उनकी गुण-सम्पदा एक-समान है। वे सब के सब मतान्ध, संकीर्ण, स्वेच्छाचारी, दम्भपूर्ण तथा महत्त्वोन्मादी हैं। वे कहते हैं कि सत्य पर उनका एकाधिकार है और उस सत्य को वे दूसरों पर बलात् थोपना चाहते हैं। उनमें अन्तर्मुखी भावना, उदात्त उदारता और बृहद् मानवीयता का अभाव है। उन सबका आधार है मानव की एक अधकचरी मीमांसा तथा परमाराध्य के विषय में एक विकृत दृष्टि। अपने-आप को धर्म कहने वाले मतवादों की चर्चा हम इस समय नहीं करेंगे। उदाहरण के रूप में हम दो प्रमुख मतवादों की विवेचना करेंगे-कम्युनिज्म तथा उदारवादी गणतन्त्र। ऊपर से देखने पर इन दोनों के बीच द्वन्द्व दिखलाई देता है। किन्तु वस्तुतः इनके बीच अनेक साम्य हैं। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक मतवाद हैं। इन दोनों के प्रकार और प्रवाह एक ही मनीषा का पोषण करते हैं। सोवियत रूस का कम्युनिज्म नितान्त नास्तिक माना जाता है। दूसरी ओर उदारवादी गणतन्त्र के जो प्रकार हमें विभिन्न देशों में दिखलाई देते हैं वे नितान्त भोगपरक और व्यक्तिपरक हैं। गणतन्त्र में सत्य तथा नीतिमत की समीक्षा व्यावहारिक, लौकिक तथा सापेक्ष पद्धति से की जाती है। उस समीक्षा में शिवम् की भावना का, परमार्थ-चिन्तन का और सृष्टि में सामञ्जस्य देखने का द्रुतगति से विलोप होता जा रहा है। निस्सारता और निरर्थकता का बोध एक उपासना-पद्धति बनता जा रहा है। सत्य केवल उसे समझा जाता है जो सुविधाजनक हो, अथवा अनोखा और मनोरञ्जक हो। गणतन्त्र की सारी संस्कृति में सनसनी की स्पृहा व्याप्त है, छिछोरा विलास ही मनोरञ्जन का माध्यम बन गया है। प्रत्येक प्रसंग में तत्परायणता को तुच्छ समझा जाता है। इस प्रकार गणतन्त्र का जन-जीवन खोखला होता जा रहा है। अतएव गणतन्त्र का उदार जड़वाद रूस के अधिक दृढ़व्रती और आक्रामक जड़वाद के सामने नहीं ठहर पाएगा। रूस का जड़वाद अधिक संयमी और अनुशासन-परायण है।

दूसरी ओर यह भी कहना पड़ेगा कि उदारवादी गणतान्त्रिक देश राजनीति की दौड़ में भले ही मात खा जाएं, उनकी सांस्कृतिक तथा आर्थिक प्रणालियां अन्ततः जीत जाएंगी। भोगवाद तथा विलासवाद में बड़ा सम्मोहन है और उनसे पार पाना कठिन है। उनकी मार

सूक्ष्म और कूट होती है। वे जल की तरह भीतर पैठ जाते हैं, व्याप्त होते रहते हैं, संयम की जड़ें गला डालते हैं। वे अपने शिकार के सहयोग से ही शिकार को भीतर से खोखला करते रहते हैं। आंखें तरेरने वाला तानाशाह, मुस्कराते रहने वाले पूंजीशाह के सामने नहीं ठहर पाता। दण्ड जहां विफल हो जाता है, वहां प्रलोभन सफल हो जाता है। सौख्य से भरे भविष्य का सपना आतंक से भरे भविष्य के दुःस्वप्न पर हावी होता दिखता है।

यह समस्त विवेचना यह मान कर की गई है कि विद्यमान उद्योगवादी संस्कृति स्थायी रहेगी। किन्तु इस संस्कृति के क्षय तथा दिवालिएपन के संकेत मिलने लगे हैं। मनीषा की दृष्टि से देखा जाए तो यह संस्कृति अभी भी थोथी दीख पड़ती है। मनुष्य की गहन अभीप्साओं की पूर्ति वह नहीं कर पा रही। नवयुवक वर्ग में विवशता का बोध बढ़ रहा है, विद्रोह जाग उठा है। कल्याण के विषय में अज्ञ होने के कारण यह वर्ग अकल्याणकारी दिशाओं की ओर अग्रसर है।

निष्ठाओं के प्रसंग में विभ्रम तथा विडम्बना की इस स्थिति में, सर्वसाधारण विफलता तथा विस्मृति की इस बेला में, क्या कोई मानवजाति को फिर से जगा सकता है, उसे अपनी अध्यात्म-परम्परा का स्मरण करा सकता है, भगवत्परायण और आत्मान्वेषी जीवन की ओर उन्मुख कर सकता ? इस पुनर्जागरण में, इस पुनरुत्थान में भारतवर्ष की क्या भूमिका रहेगी–उस भारतवर्ष की जो अत्यन्त प्राचीन काल से अध्यात्म-यज्ञ का पुरोधा रहा है?*

□

* मूल पुस्तिका 'बौद्धधर्म तथा हिन्दूधर्म का परस्पर सम्बन्ध' का संक्षेप। ले. रामस्वरूप, अनु. सीताराम गोयल; भारत-भारती प्रकाशन, 2/18 अन्सारी रोड, नई दिल्ली-110002, दिसम्बर 1987.

तिब्बत, चीन और हिन्दुस्तान

डॉ. राममनोहर लोहिया

तिब्बत की बात तो कई बार मैं दोहरा चुका हूँ। उसे तो खाली गिना देता हूँ। एक, भाषा; दूसरे, लिपि; तीसरे, रहन-सहन; चौथे, धर्म; पाँचवें, जमीन का ढलाव; छठे, इतिहास; सातवें, लोक इच्छा। इन सातों कसोटियों पर तिब्बत चीन का हिस्सा हरगिज नहीं है। चीन से ज्यादा हिन्दुस्तान के नजदीक है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि तिब्बत हिन्दुस्तान का अंग है, लेकिन तिब्बत का और हिन्दुस्तान का बिल्कुल नजदीकी संबंध है। अगर मोटी, बाजारू भाषा में मुझे कहना पड़े तो तिब्बत, तिब्बत है; स्वतंत्र है, उसका अपना ढंग है, उसके लोगों की स्वतंत्र रहने की इच्छा है। वही सबसे बड़ा सत्य है।

तिब्बत के लोग स्वतंत्र रहना चाहते हैं। उनका इलाका कोई पाँच लाख वर्ग मील का है। उनकी आबादी कोई 40-50 लाख की है। वह कोई छोटा-मोटा इलाका तो है नहीं। स्वतंत्र रहना चाहते हैं; उनको स्वतंत्र रहना चाहिए। लेकिन उसके बाद दूसरे नंबर का सवाल उठता है कि तिब्बती किसके ज्यादा नजदीक हैं। अस्सी सैकड़ा वे हिन्दुस्तानियों के नजदीक हैं तो मुश्किल से पन्द्रह-बीस सैकड़ा वे चीनियों के नजदीक होंगे। इससे ज्यादा उनका चीन से कोई ताल्लुक है नहीं।

जब तक इतिहास पर एक लंबी दृष्टि से सोच-विचार नहीं करेंगे, बड़ी चीज को पकड़ नहीं पाएंगे। पिछले हजार बरसों में हिन्दुस्तान गिरा हुआ रहा, पिटा हुआ रहा है। गुलाम रहा है, कमजोर रहा है। . . .क्या इनके सबब रहे उसे छोड़ दीजिए। हम यह मान कर चलें कि पिछले हजार बरस में हिन्दुस्तानी नपुंसक रहा है और परदेशी अपनी ताकत से इस मुल्क को गुलाम बनाता रहा है। बाबर आता है परदेशी शक्ल में तो फतह करता है मुल्क को, और तैमूर लंग का तो कहना ही क्या! और जब बाबर की औलाद बहादुरशाह की शक्ल में देशी बन जाती है तो शायरी करने के सिवाय उसके पास और कुछ रह नहीं जाता। देशी और परदेशी की यह लड़ाई रही और इस हजार बरस में जो कुछ भी हिमालय के बारे में हुआ है-संधियाँ, लड़ाई या हिमालय के ऊपर राजकीय अधिकार, उसको उदाहरण बनाकर यह कहना कि यह हिमालय की शक्ल है, निहायत गंदी बात

---

2 जनवरी 1963 को दिल्ली में दिये गये भाषण से।

संदर्भ : 'तिब्बत मुक्ति आन्दोलन, सं. डॉ. आनन्द कुमार। साहित्य सहकार प्रकाशन-दिल्ली, 1994

होगी। पिछले हजार बरस को ही क्यों देखा जाए? क्यों न पिछले दो-तीन हजार बरस को देखा जाये, चार हजार बरस को देखा जाए? आखिर पिछले हजार बरस में चंगेज खाँ भी तो हुए हैं। उसके अलावा चीनी राजाओं की कभी ताकत रही वे आगे बढ़े, हमारे हिमालय की तरफ भी किसी-किसी जमाने में आये। और हम हिन्दुस्तानी पिछले हजार बरस में कभी भी अपने मुल्क के बाहर की बात सोचने के लायक थे ही नहीं। मुल्क के अन्दर की बातों में ही इतना फंसे रहते थे कि हमेशा हमको गुलामी से बचने के लिए तैयार रहना पड़ता था, लड़ाई करनी पड़ती थी। यह रही हिन्दुस्तान की हालत। मैं अर्ज करूँगा कि पिछले हजार बरस के इतिहास और सुलहनामों को कोई भी हिन्दुस्तानी कभी उदाहरण के रूप में न ले। यह बड़ी भारी गलती होगी, अगर वह लेगा।

तिब्बत और चीन के मामलों में जितने भी सुलहनामे हैं, उनसे एक बात तो यह साबित होती है कि चाहे 10-15-20 बरस के लिए ही सही क्यों न हो, तिब्बत ने चीन के ऊपर राज किया। अगर सुलहनामों को ही आप आधार बनाना चाहते हों तो क्यों न चीन को तिब्बत के मातहत बना दिया जाए ? दूसरे, यह बात साबित होगी कि जो कोई सुलहनामे मिलते भी है तिब्बत और चीन के संबंध बताने वाले, तो वे सिर्फ इतना बताते हैं कि तिब्बत का राजा चीन को किसी प्रकार की भेंट दिया करता था। उसे सत्ता नहीं, एक तरह का दूर का आधिपत्य कहा जा सकता है। अंदरूनी मामलों में कोई मतलब रहता नहीं था तिब्बत के राज से, उस वक्त भी जब चीन की ताकत ज्यादा होती थी। अंदरूनी मामलों में बिल्कुल नहीं, विदेशी मामलों में भी नहीं क्योंकि तिब्बत ने जाने कितनी संधियाँ की हैं दूसरे देशों से - बिना चीन के रहते हुए, या चीन जिसमें दखल नहीं देता था।

अंग्रेजी विदेशी नीति

इसी सिलसिले में एक बात और ध्यान देने लायक है। हिन्दुस्तान में अंग्रेजी सरकार के काम करने के तरीके और दृष्टि। . . .इस लंबे किस्से को छोटा करके, इतना ही मैं बता दूँ कि जब रूस से अंग्रेज अपनी होड़ चलाता था और रूस से डरता था कि कभी रूस हिन्दुस्तान पर कब्जा न कर ले, तो उसे जरूरत थी किसी ऐसे दोस्त को पकड़ने की जो कमजोर हो; और कमजोर की हुकूमत या इलाके में वह कम-से-कम अपनी मनेजरी कायम कर देता। उसने ऐसे दोस्त को पकड़ा। चीन 19वीं सदी में कमजोर रहा है। अंग्रेजों ने चीन को पकड़ा। औरों ने भी पकड़ा, लेकिन ज्यादा अंग्रेजों ने। जो भी संधि-सुलहनामे पुराने थे, बड़े लचर थे, पतले थे। उनका सहारा लेकर अंग्रेज ने चीन के आधिपत्य को तिब्बत पर कायम किया; कानूनी ढंग से, और उसको असल में चलाया खुद। क्योंकि वे चीन की तरफ से बोल सकते थे, काम कर लेते थे। . .

चीनी लोग अंग्रेजों की नजीर देते हैं। अंग्रेजों ने तिब्बत के ऊपर चीन की सत्ता, इसलिए मानी कि चीन का राजा कमजोर, नपुंसक था। इसलिए उसकी सत्ता मान ली और उस सत्ता का इस्तेमाल उन्होंने खुद किया। तिब्बत के ऊपर इनका सिक्का चलता था। अंग्रेजों

का तिब्बत के ऊपर चीन की सत्ता मान लेना कोई भी मतलब नहीं रखता। यह तो 19वीं सदी की होड़ का नतीजा रहा है। उनके अपने अंतर्राष्ट्रीय रिश्तों को चलाने के तरीकों का नतीजा रहा है।

और जब चीन वाले कहते हैं कि यह मैकमोहन रेखा अंग्रेजों की बनाई हुई है, साम्राज्यशाही रेखा है तो मैं खुद भी कहता हूँ कि यह साम्राज्यशाही रेखा है, मैकमोहन रेखा उसकी असली रेखा नहीं, असली रेखा बनानी है तो कहीं और बनेगी।. . .

कैलाश-मानसरोवर

इस मैकमोहन रेखा के मामले में कैलाश-मानसरोवर वगैरह का भी प्रश्न है।कौन कौम हैं जो अपने बड़े देवी-देवताओं को परदेश में बसाया करती है ? छोटे-मोटे को बसा भी दे लेकिन बड़ों को, शिव और पार्वती को परदेश में बसायें ? यह कभी हुआ है ? शिव-पार्वती के किस्से कब गढ़े गए ? मैं तो बिल्कुल एक आधुनिक आदमी की तरह बोल रहा हूँ। हो सकता है कि कुछ आधुनिक लोग कहें कि अंतर्राष्ट्रीय बहस में, कूटनीति की बहस में शिव-पार्वती को क्यों लाते हो ? मैं मानकर चलता हूँ कि ये किस्से कभी भी गढ़े गए, कभी भी ये किस्से बनाये गए - हिन्दुस्तानियों ने बनाए। कब बनाए इसके ऊपर तहकीकात करो। मान लो 400-500 बरस पहले बनाए या 4-5 हजार बरस पहले। जब भी ये किस्से बनाए गए तब कैलाश और मानसरोवर भारत का हिस्सा जरूर रहा होगा। तभी तो कैलाश और मानसरोवर में इन बड़े देवी-देवताओं को बसाया, नहीं तो और कहीं बसाते। खाली पिछले 2-3 सौ बरस की टूटी-फूटी, सड़ी किसी संधि को, दस्तावेज को लेकर साबित कर देना कि तिब्बत चीन के साथ जुड़ा हुआ है, यह कोई मतलब नहीं रखता है। आखिर जमीन के ढलाव जैसे सबब जो होते हैं उनके ऊपर हिन्दुस्तानी और चीनी अफसरों ने बड़ी लंबी-चौड़ी बातें की हैं। वह इलाका ले लो जहाँ की नदियाँ चीन की तरफ बहती हैं, वह तो बिल्कुल साफ कैलाश और मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र का इलाका है।

इसलिए, बार-बार मुझ जैसे लोगों ने कहा कि मैकमोहन रेखा हिन्दुस्तान और चीन की रेखा तो है ही नहीं, थी नहीं, हो नहीं सकती, होनी नहीं चाहिए। अगर तिब्बत आज़ाद रहता है तब हम अपने कैलाश और मानसरोवर के इलाके का जो कभी हिन्दुस्तान के राजकीय हिस्से थे, तिब्बत की रखवाली में ला सकते हैं, क्योंकि तिब्बत हमारा भाई है, नेपाल की ही तरह, करीब-करीब। हिन्दुस्तान की गद्दी पर हमेशा नपुंसक लोग नहीं बैठे रहेंगे।

एक-चीज से आप जरूर बचकर रहना कि हिमालय के बारे में एक गलतफहमी चीनियों ने बड़ी अच्छी तरह फैलायी। असल में शुरूआत उन्होंने नहीं की, शुरूआत तो की है दूसरों ने। जो यह क्रिस्तान पादरी हुआ करते थे-बड़े लायक हुआ करते थे। कोई-कोई इतिहास भी पढ़ा करते थे, किताबें भी लिखते थे। उन्होंने खोज-खोज कर एक बात को निकाला कि

हिमालय के इलाके में मंगोल लोग बसते हैं। हम भी इसी इतिहास को पढ़ते हैं। हमारे बच्चों को करीब-करीब हर स्कूल, कालेज में क्या सिखाया जाता है ? बताया जाता है कि आर्य, मंगोल, द्रविड़ ये सब जातियाँ थीं जो अलग-अलग इलाकों में बसी हुई हैं - और इधर-उधर फैलती हैं और हिमालय के इलाके में जो लोग बसे हुए हैं - नेपाली या तिब्बती या मोनपा या अभोर या डाफला - इन सबको मंगोल नाम दिया जाता है। और हम 45 करोड़ हिन्दुस्तानी भी इस गलतफहमी के शिकार बन जाते हैं। प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखते हैं कि चीनी का पीला रंग, चपटी नाक और तिरछी आँखें। हिमालय के उन लोगों को छोड़ दीजिए जो भारतीय हिमालय के, कश्मीर के या कुछ हिमालय प्रदेश और पंजाब के इलाके में पड़ते हैं, लेकिन ज्यादातर ये तिरछी आँख और चपटी नाक और पीले रंग ने इतना सितम ढाया है हिन्दुस्तानी दिमाग के ऊपर कि यह सोच बैठा है कि हिमालय तो ऐसे लोगों से बसा हुआ है जो कि चीनियों के साथ ज्यादा नजदीक है।. . .

वास्तव में देखा जाए तो हिमालय के इलाके में जो लोग बसते हैं उनका चीनियों के साथ शारीरिक सम्बन्ध भी करीब-करीब नहीं है। दिमागी तो है ही नहीं। लिखावट, भाषा का है ही नहीं, लेकिन शारीरिक सम्बन्ध तक भी नहीं है।

हिमालय के बारे में कालिदास ने कुमार संभव में जो दो सबसे पहले श्लोक लिखे हैं, वे श्लोक हैं हिमालय की तपस्या के बारे में। देवालय तो नहीं लेकिन सारी दुनिया के लिए हिमालय की कितनी जबरदस्त जगह रहती है उसके बारे में। उसका अर्थ मैं पहले बता देता हूँ, फिर श्लोक दूँगा। उत्तर दिशा में एक पर्वतराज है। जिसका नाम है हिमालय, जो पूर्व और पश्चिम के समुद्र में इस तरह गोता लगाए हुए बैठा है जैसे दुनिया को नाप रहा हो, जिसके हजारों अनन्त किस्म के धन हैं, रत्न हैं, फिर भी एक दोष जो उसकी तकदीर को खराब करता है, नहीं जाता वह है बर्फ, हिम, जिससे उसका नाम पड़ा हिमालय। लेकिन अगर गुणों का समूह इकट्ठा हो जाय–सब गुण ही गुण हों–तो एक दोष के होने से कुछ बिगड़ता नहीं; जैसे चन्द्रमा की किरणें आती हैं तो उसके एक दोष को, धब्बे को, वे छिपा लिया करती हैं।

मैंने कई बार अध्यापकों से कहा कि आप कोशिश करो, पता लगाओ, चीनी साहित्य में, वाङ्मय में, चीनी कथाओं-किंवदंतियों में भी, कि हिमालय के लिए कुछ है क्या ? कोई कविता इस ढंग की है, इस पैमाने की है या इस तरह के किस्से कहानियाँ हैं ? अभी तक किसी ने वह मुझको ढूँढ़ कर नहीं दिया। शायद है भी नहीं। इस पैमाने का तो खैर है ही नहीं, लेकिन कोई छोटे पैमाने का भी नहीं है। अगर कोई हिन्दुस्तानी विद्यार्थी या प्रोफेसर इस काम को करे तो बड़ा अच्छा होगा। एक तरफ तो पिछले 3-4 हजार बरस का हिमालय का हिन्दुस्तानी दिमाग के लिए स्थान, और दूसरी तरफ चीनी दिमाग के लिए हिमालय का स्थान, इसका पता चलेगा। मेरा जो ख्याल है वह बिल्कुल साबित हो जाएगा कि चीन का हिमालय के साथ सम्बन्ध बहुत कमजोर है और वह चंगेज खाँ और कुबलाई खाँ जैसों तक ही सीमित है। वे श्लोक हैं :

अस्त्युत्तरस्या दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य स्थित पृथिव्या इव मानदण्डः।।
अनंत रत्न प्रमवस्य यस्य हिमं न सौभाग्य विलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांक्।

अब इस हिमालय की रक्षा करने की बारी आ गई। . . .अभी जो पिछले ढाई-तीन महिनों में चपत खाई है, उसके और सबब न बताकर खाली इतना कहूँ कि हिन्दुस्तानी दिमाग में सरकार ने खासतौर से और जनता ने भी, इस हिमालय की अवहेलना की है जो हिमालय हमारे साहित्य, हमारी किंवदंती, हमारी कथाओं, हमारे देवालयों के साथ जुड़ा हुआ है।

एक राक्षस ने एक नन्हे बच्चे की हत्या की। जिस वक्त यह हत्या हुई थी उस वक्त हिन्दुस्तान में बहुत कम लोग बोले। प्रायः सभी अचेत थे, चीन से दोस्ती करने की इतनी उत्कट इच्छा हो रही थी कि सब नीति, सब धर्म, सब आदर्श भूल कर न सिर्फ चुप रहे, बल्कि उस हत्या में किसी हद तक मदद पहुँचाई, यह कहकर कि चीन से समझौता कर लो, चीन से दोस्ती कर लो।

और लद्दाख के इलाके पर जब दूसरी बार चीन ने कब्जा किया, और सिंक्याँग और तिब्बत में सड़क बनाने के लिए लद्दाख का इस्तेमाल किया, तब दिल्ली सरकार के अफसरों ने क्या कहा था? वह जुमला भी अपने मुँह से निकालना बहुत ही गंदी चीज है। मैं समझा नहीं सकता कि किसी हिन्दुस्तानी के मुँह से वह जुमला कैसे निकल सकता है, सो भी प्रधानमंत्री के मुँह से। वह था कि लद्दाख का कुछ इलाका जो चीनियों के कब्जे में चला गया है, वह पथरीला है, ऊसर है, और उस पर घास की एक दूब तक उगती नहीं। इसमें कई दोष हैं। एक दोष हो और कई गुण हों तो वह छिप जाता है। इसमें तो दोष ही दोष हैं। मातृभूमि का कोई भी टुकड़ा परदेशियों के हाथ में चला जाय तब उसके बारे में निरादर के शब्द कहना सपूत का नहीं, कपूत का काम है। जब यह परदेशियों के कब्जे में न रहे, अपना हो, स्वतंत्र हो, खुदमुख्तारी वहाँ पर हो, तब उसको सुधारने के लिए जो भी आप बोलो, लेकिन जब वह परदेशियों के कब्जे में चला जाए उस वक्त उसका निरादर करना क्या मतलब रखता है ?. . .

हिमालय की रक्षा करना ताकत का सवाल है। यह ताकत किस तरह की होगी, कब आएगी यह बात अलग है लेकिन कम-से-कम हम अपना दिमाग तो बनाएँ कि हिमालय हमारा कौन लगता है? अगर हमारे दिमाग में वह फितूर बना रह गया-तिब्बत वाला, अंग्रेजी साम्राज्यशाही के दस्तावेजों वाला, मंगोल वाला या यह कि एक उधर वाली ताकत के साथ दोस्ती रखने के लिए इन सब सच्चे मामलों के ऊपर पर्दा डाल देना हो, तब हिमालय पर कुछ भी सोच-समझ नहीं पाएंगे।

□

तिब्बती संस्कृति के प्रतीक-चिह्न

यहां तिब्बती संस्कृति के कुछेक प्रतीक-चिह्नों का परिचय दिया है। किसी भी प्रजा की आस्था का परिचय उसके सांस्कृतिक या धर्म-प्रतीक चिह्नों से होता है, उसका जीवन दर्शन तथा उसके आदर्शों का पता चलता है। ये कलाकृतियाँ नहीं हैं लेकिन जीवन के ध्येय और लोक-मंगल को जिस अर्थ में जो प्रजा समझती हैं, उसी बोध में से उनके प्रतीकों की रचना होती है।

अष्ट मांगलिक चिह्न

रत्न-छत्र

इस जीवन में जीव-जगत् को रुग्णता, अहितकारी शक्तियों, बाधाओं इत्यादि से, तथा तीनों निम्न कोटियों में सभी प्रकार के तात्कालिक एवं निरन्तर दुखों से, तथा भविष्य के जन्मों में मनुष्य या देवों की कोटियों में भी अस्थाई एवं स्थाई दुखों से सुरक्षित करने वाले कल्याणकारी क्रिया-कलापों का प्रतीक यह रत्न-छत्र है।

स्वर्ण-मीन

यह मांगलिक चिह्न समस्त जीव-जगत की अभयावस्था को सूचित करता है। मछली जिस प्रकार पानी में डूबने की आशंका के बिना निर्भयता और स्वतंत्रता के साथ एक से दूसरे स्थान पर तैरती रहती है, उसी प्रकार संसार के दुःखों के सागर में अभय प्राप्त कर स्वाधीनता के साथ सहज विचरण करने की जीवनावस्था का प्रतीक-चिह्न स्वर्ण-मीन है।

निधि-कुम्भ

दीर्घ जीवन, सम्पदा और समृद्धि की अनन्त वर्षा तथा इस संसार के समस्त लाभों एवं मुक्ति का प्रतीक यह निधि-कुम्भ है।

पद्म-पुष्प

शरीर, वाक् एवं मन के विकारों से पूर्ण अविकारी होने का तथा पूर्ण आनन्द की मुक्तावस्था में कल्याणकारी कार्यों के खिल उठने का प्रतीक यह कमल का फूल है।

दक्षिणवर्ती शुभ्र शंख

दाहिनी तरफ वलयों वाला अर्थात् दाहिने हाथ में धारण किये जाने वाला यह सफेद शंख ऐसी धर्म शिक्षा के गहन, दूर तक सुनाई देने वाले तथा मधुर नाद का प्रतीक है, जो भिन्न-भिन्न स्वभाव, प्रकृति तथा इच्छा-आकांक्षा वाले अनुयायियों के अनुकूल होते हुए उन्हें अविद्या की तंद्रा से जागृत करता है तथा उन्हें अपना तथा अन्यों का कल्याण साधने को प्रेरित करता है।

श्री व्यूह

धार्मिक विचार तथा सांसारिक गतिविधियों के बीच परस्परावलम्बन का प्रतीक यह मांगलिक चित्र है। ज्ञान और विधि के ऐक्य को, मार्ग के समय शून्यता एवं प्रतीत्य-समुत्पाद के बीच उपस्थित होती अविभाज्यता तथा अंत में बुद्धत्व की प्राप्ति के समय ज्ञान तथा अपार करुणा के पूर्ण ऐक्य को भी यह मांगलिक चित्र दर्शाता है।

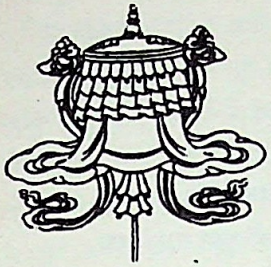

विजय पताका

अपने खुद के या अन्य के शरीर, वाक् या मन की गतिविधियों द्वारा बाधाओं तथा नकारात्मक स्थितियों पर विजय का चिह्न यह पताका है। यह समस्त हानिकारक तथा अपकारक प्रभावों पर बौद्ध विचार की पूर्ण विजय को भी दर्शाता है।

स्वर्ण-चक्र

शिक्षा तथा साक्षात्कार में, सभी क्षेत्रों तथा सभी कालों में, आनंद और मुक्ति के कल्याणमय कर्म करने में समर्थ बनाने वाले बौद्ध-विचार में घूमते हुए बहुमूल्य चक्र की मांगलिकता को यह स्वर्ण-चक्र अंकित करता है।

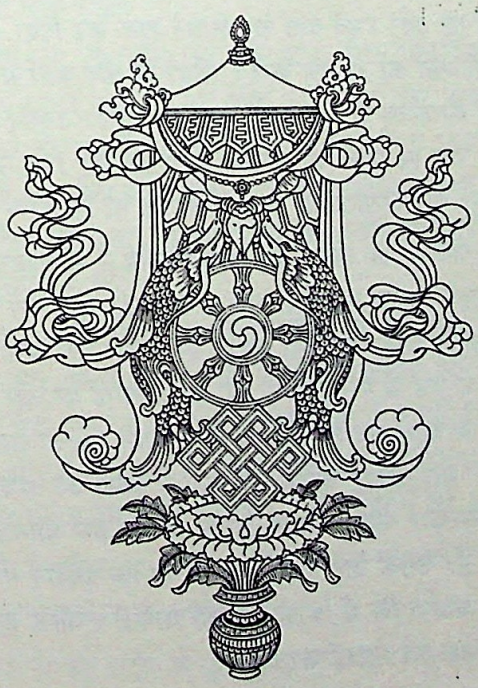

संयोजित रूप में अष्ट मांगलिक चिह्न

एक भिक्षुणी के अनुभव

दमन और साधना

यह आप बीती युवा भिक्षुणी सुश्री दावा की है जो तिब्बत से भागकर फरवरी 1993 में भारत पहुंची। ल्हासा के एक मठ में रहने वाली इस भिक्षुणी को 1989 में एक प्रदर्शन के दौरान गिरफ्तार किया गया था। यह उसका पांचवां प्रदर्शन था। तीन साल की कैद का एक बड़ा हिस्सा उसने गुत्सा जेल में और बाकी छह महीने त्रीज़ाम हवालात में बिताए।

"मेरा घर ल्हासा के निकट एक गांव में था। वहां हर जगह की तरह साल में चार बार सार्वजनिक राजनैतिक बैठक होती थी जिसमें सभी को आना पड़ता था। न आने पर प्रतिदिन चार युआन का जुर्माना होता था। 1986 में जिन दिनों यह बैठक हुई तब मैं ल्हासा के एक मठ में प्रवेश के लिए गई हुई थी। इन बैठकों में श्रमशिविरों की घोषणा होती थी जिसमें सभी को मुफ्त काम करना पड़ता था।

1989 के पतझड़ के दिनों में मैंने और मेरी साथी दो भिक्षुणियों ने तय किया कि हम चीन सरकार के तिब्बत पर कब्जे के खिलाफ प्रदर्शन करेंगी। एक दिन हम तीनों शहर के एक बाजार में गईं और हमने वहां नारे लगाने शुरू कर दिए। हमारे नारे थे 'चीनियो तिब्बत छोड़ो', 'तिब्बत को आज़ाद करो'। थोड़ी देर बाद कहीं से चीनी सरकार के और तिब्बत जनसुरक्षा कार्यालय के कई एजेंट वहां आ पहुंचे। उन्होंने हमें दबोच लिया और हमारे पेट में और पीठ पर घूँसों की बरसात शुरू कर दी। फिर उन्होंने हमारे हाथ पीछे की ओर बांध दिए। मेरी रस्सी इतनी सख्त बांधी गई थी कि उसने मेरा मांस काट दिया।

पुलिस चौकी 'गोगांजू' ले जाते समय रास्ते में जीप में भी हमारी पिटाई की गई। वहां पहुंचते ही हमें अलग-अलग कमरों में भेज दिया गया। वहां मेरी पूछताछ से पहले मेरा 'छुबा' (चोगा) उतार दिया गया। मेरे शरीर पर केवल मेरी कमीज बची थी। पूछताछ के दौरान बिजली के डंडे से मेरी छातियों पर, मेरे जननांगों पर और मुंह के भीतर बिजली के झटके दिए गए जो बहुत तकलीफदेह थे। वे बार-बार एक ही सवाल पूछ रहे थे "तुमने नारे क्यों लगाए?" मेरा जवाब यही था कि मठों में प्रवेश की व्यवस्था भ्रष्टाचार से भरी हुई है और चीनी सरकार भले ही दावा करती रहे कि हमें धार्मिक आज़ादी है, लेकिन असल में यह झूठ है। उसके बाद उनका सवाल था कि प्रदर्शन में मेरे साथ बाकी लोग कौन थे। मैंने उन्हें बताया कि मैं किसी को नहीं जानती क्योंकि हाल ही में ल्हासा आई हूं। वे नहीं माने और मेरी पिटाई करते रहे।

---

* साभार : 'तिब्बत देश' 10, रिंग रोड, लाजपत नगर, 7 नयी दिल्ली-110 024; सं. विजय क्रान्ति, सितम्बर-अक्टूबर, 1996

यह सवाल-जवाब कोई आधा घंटा चला और उसके बाद हमें गुत्सा जेल भेज दिया गया। वहां मुझे और मेरी दोनों साथिनों को पूरा दिन धूप में सूरज की ओर मुंह करके खड़ा रखा गया। हमें आपस में बात करने की भी मनाही थी। आखिरकार शाम को मुझे जांच कक्ष में ले जाया गया। वहां मुझे लोहे के एक डंडे और रस्सी से पीटा गया। उसके बाद एक मेज पर मुझे खड़ा करके मेरे हाथ पीछे की ओर बांध दिए गए। रस्सी का दूसरा हिस्सा छत में लगी एक कुंडी में बांध दिया गया और नीचे से मेज हटा ली गई। मुझे लगभग 15 मिनट तक हवा में लटकाए रखा गया। मेरी बांहों और कंधों में बेतहाशा दर्द हो रहा था और मैं लगभग बेहोश हो गई। बाद में जब मुझे नीचे उतारा गया और मेरे हाथ खोले गए तब मैं पानी वाला मग भी नहीं पकड़ पा रही थी। मैं बार-बार इनकार कर रही थी कि इससे पहले भी मैंने किसी प्रदर्शन में हिस्सा लिया है। मैंने उन्हें किसी भी साथी का नाम नहीं बताया। हर बार मेरा एक ही जवाब था, "तुम भले ही मुझे जान से मार दो मुझे और कुछ नहीं बताना"।

पूछताछ लगभग डेढ़ घंटे तक चलती रही। तब वे मुझे एक कोठरी में ले गए और मेरे सारे कपड़े उतार दिए गए। एक चीनी जांचकर्ता ने बिजली वाले डंडे से मेरे सारे शरीर पर झटके लगाए। उसके बाद मेरे कपड़े मुझे दे दिए गए और मुझे कोठरी में अकेले बंद कर दिया गया। उस शाम न तो मुझे खाने को कुछ दिया गया और न ही मेरे मांगने के बावजूद मुझे पानी दिया गया।

लगभग एक महीने बाद एक दिन मुझे और सात अन्य भिक्षुणियों को बाहर कतार में खड़ा करके सजाएं सुनाई गईं। दो को सजा नहीं सुनाई गई। बाकी हम सभी पांचों को तीन-तीन साल की कैद सुनायी गई। लेकिन न तो हमें और न ही हमारी ओर से किसी को हमारी बात कहने का मौका दिया गया। हमें केवल हमारी सजा की घोषणा वाला पत्र हाथ में पकड़ा दिया गया। बाद में पता चला कि बाकी दो भिक्षुणियों को आठ और नौ साल की कैद सुनाई गई थी।

अगले 19 दिन तक हमें अलग-अलग कोठरियों में बंद रखा गया। बाद में हमें तीन-तीन और चार-चार के समूहों में रखा गया। हम लोगों को जेल के शौचालयों की सफाई का काम दिया गया। हर रोज हमें शौचालयों में से नंगे हाथों से टट्टी उठानी होती थी। कई बार तो हमें हाथ धोने के लिए साबुन भी नहीं दिया जाता था। और कई बार तो हाथ धोने का मौका दिए बिना हमें वापस काठरियों में बंद कर दिया जाता था।

हर रोज हमें टट्टी से भरी दो-दो बाल्टियां जेल के खेत में डालनी होती थीं। इस काम के लिए कोई समय तय नहीं किया जाता था।

जेल में तीन मौकों पर मेरे शरीर से खून निकाला गया। हर बार मुझे यह कहा गया कि यह खून जांच के लिए लिया जा रहा है और इसका मुझको ही फायदा होगा। लेकिन हर बार खून देने के बाद मुझे भारी कमजोरी महसूस हुई।

त्रीज़ाम जेल में हालात थोड़े से बेहतर थे। यहां हमें थोड़ा सा चावल भी मिलता था जबकि गुत्सा में केवल 'टिंग-मोमो' (भाप में पकी मैदे की फीकी रोटी) ही मिलती थी। त्रीज़ाम में मेरी तो नहीं लेकिन दूसरे कई कैदियों की बहुत पिटाई की गई। जेल से छूटने के कुछ दिनों बाद ही मैंने तिब्बत से भागकर भारत जाने का फैसला कर लिया।"

□

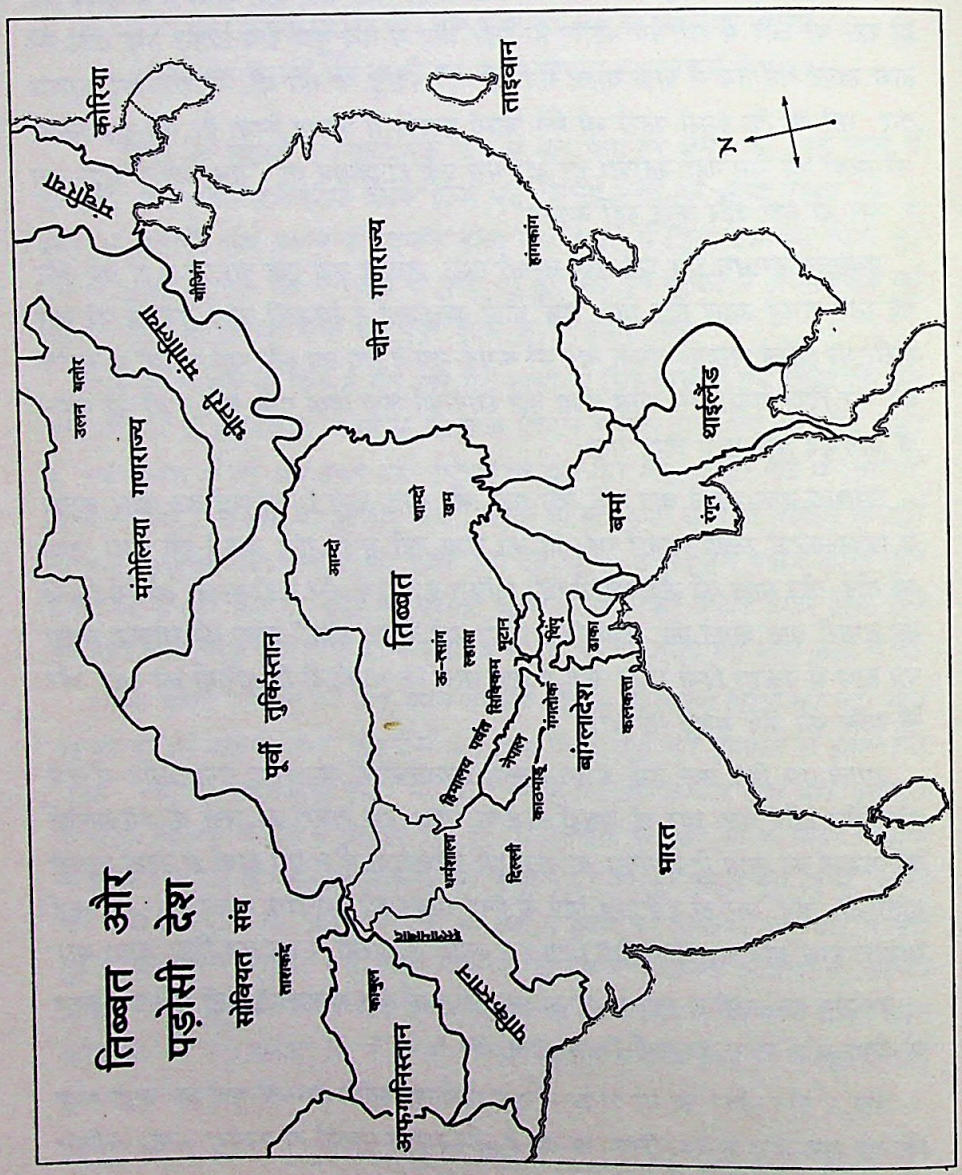

क्या आप जानते हैं?

* तिब्बत का क्षेत्र पचास लाख वर्ग मील का अर्थात् फ्रांस से लगभग पांच गुना बड़ा है, भारत से आधा एवं चीन से तिहाई है।

* तिब्बत 1949 में चीन के आक्रमण से पहले एक पूर्णतया स्वतंत्र देश था।

* इस अधिग्रहण के बाद चीनी अत्याचारों के कारण बारह लाख से अधिक तिब्बती प्राणों से हाथ धो बैठे हैं।

* 1959 में न्यायविदों के अंतर्राष्ट्रीय आयोग ने पाया कि तिब्बत में संस्कृति का विनाश किया गया।

* एक लाख 30 हजार से अधिक तिब्बतियों को तिब्बत छोड़ने को मजबूर किया गया। अब वे भारत और नेपाल में राजनैतिक शरणार्थी के रूप में रहे हैं। प्रति वर्ष लगभग 4,000 नए शरणार्थी हिमालय के दुर्गम पथों को पार कर इस ओर आते हैं। अभी तक 12 लाख से अधिक निर्वासित स्थिति में हैं।

* 1966-67 की सांस्औतिक क्रांति के दौरान चीनी सेना ने 6000 से अधिक बौद्ध विहारों को नष्ट कर करोड़ों डालर की कीमती प्रतिमाओं और कलाशिल्पों को लूट कर बेच दिया।

* चीन सरकार अपनी नीति के तहत चीनी नागरिकों को आर्थिक प्रलोभन देकर तिब्बत में बसा रही है। लिहाजा यहां चीनियों की संख्या तिब्बतियों से ज्यादा हो गई है। 60 लाख तिब्बतियों की तुलना में 75 लाख चीनियों के यहां बस जाने से तिब्बती अपने ही देश में अल्पसंख्यक हो गए हैं।

* तिब्बत की विस्तृत जमीन पर परमाणु कचरा डालकर चीन तिब्बत के पर्यावरण के विनाश पर तुला है। औद्योगिक कचरे से नदियां प्रदूषित की जा रही हैं। वनों की कटाई हो रही है और कीमती खनिजों और संसाधनों को चीन तथा दूसरे देशों को निर्यात किया जा रहा है।

ज्योति और तमस

आचार्य रजनीश

मनुष्य की आंतरिक खोज की प्रयोगशाला के रूप में तिब्बत को छोड़ दिया जाना चाहिए। लेकिन संसार के एक देश ने भी तिब्बत पर इस घृणित आक्रमण के विरुद्ध आवाज नहीं उठायी है। और चीन ने न केवल इस पर आक्रमण किया, बल्कि उसका विलय कर लिया है अपने नक्शे में। अब चीन के नये नक्शे में तिब्बत उनका भू-भाग है। और हम सोचते हैं कि यह दुनिया सभ्य है, जहां निर्दोष लोग, जो किसी की हानि नहीं कर रहे हैं सहज की नष्ट किये जाते हैं। और उनके साथ ही सम्पूर्ण मनुष्यता का कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण भी नष्ट हो जाता है। यदि मनुष्य में कुछ भी सभ्य होता तो हर राष्ट्र चीन द्वारा तिब्बत पर किये गये आक्रमण के विरुद्ध खड़ा हो जाता। यह चेतना पर पदार्थ का आक्रमण है। यह अध्यात्म की ऊंचाइयों पर भौतिकवाद का आक्रमण है।

दुर्भाग्यवश, तिब्बत अंधकार के गर्त में पड़ गया हैं। इसके मठ बन्द कर दिये गये है, इसके सत्य के खोजियों साधकों को श्रम-शिविरों में काम करने के लिए विवश कर दिया गया है। संसार में एकमात्र देश तिब्बत, जो अपनी समस्त प्रतिभा और मेधा को एकाग्र कर अपनी निजी आंतरिकता और उसके खज़ानों की तलाश में काम करता रहा है, उसे साम्यवादी हमले ने रोक दिया है।

यह इतनी कुरूप दुनिया है कि किसी ने इसका प्रतिवाद तक नहीं किया बल्कि उलटे, क्योंकि चीन बड़ा और शक्तिशाली है, ऐसे देशों तक ने जो इतने अधिक शक्तिशाली हैं जितन चीन कभी नहीं हो सकता-जैसे कि अमरीका-उन्होंने भी स्वीकार कर लिया हैं कि तिब्बत चीन का है। यह बिल्कुल बकवास है। मात्र इसलिए कि चीन एक शक्तिशाली राष्ट्र है और सभी देश चीन को अपनी ओर रखना चाहते है, न तो सोवियत संघ ने चीन के दावे को अस्वीकार किया, न ही अमरीका ने। चीन और सोवियत संघ को छोड़ो, भारत तक ने प्रतिवाद नहीं किया है।

इतना सुन्दर प्रयोग था यह! तिब्बत के पास लड़ने के लिए कोई हथियार नहीं थे, और लड़ने के लिए कोई सेना नहीं थी। और उन्होंने इसके बाबत कभी सोचा ही नहीं था। उनका सारा प्रयास अंतमुर्खी तीर्थयात्रा का था।

मनुष्य की अंतरात्मा के उद्घाटन का ऐसा संकेन्द्रित प्रयास कहीं भी नहीं हुआ है। तिब्बत में हर परिवार अपने बड़े पुत्र को किसी मठ को दे दिया करता था, जहां उसे ध्यान करना था और जागरण के समीपतर आते जाना था। यह हर परिवार के लिए आहलादकारी था कि कम-से-कम उनमें से एक सम्पूर्ण हृदय से, चौबीस घंटे अंतरात्मा पर काम कर रहा था। वे भी काम करते थे, पर वे सारा समय नहीं लगा सकते थे। उन्हें भोजन, कपड़ा और मकान की भी व्यवस्था करनी होती थी-और तिब्बत में यह एक कठिन बात है। जलवायु बहुत सहायक नहीं है; तिब्बत में रहना एक विशाल संघर्ष है लेकिन फिर भी हर परिवार अपने पहले बच्चे को मठ में दे दिया करता था।

अगर मानवता थोड़ी सचेत होती तो तिब्बत को आज़ाद कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि यह एकमात्र देश है जिसने लगभग दो हजार वर्ष किसी अन्य कार्य में नहीं, बल्कि केवल ध्यान की गहराई में जाने को ही समर्पित किये हैं। और यह सम्पूर्ण विश्व को कुछ ऐसा सिखा सक्रता है जिसकी महती आवश्यकता है।

वहां सैकड़ों मठ थे। और इन मठों की तुलना किसी भी कैथॅलिक मठ से नहीं की जानी चाहिए। इन मठों की पूरी दुनिया में कोई तुलना नहीं है। इन मठों का सरोकार सिर्फ एक बात से था: तुम्हें स्वयं के प्रति जगाना। शताब्दियों में हजारों विधियां निर्मित की जाती रही हैं कि तुम्हारा कमल खिल सके और तुम अपने परम खजाने-उस मणि को पा सको। ये केवल प्रतीकात्मक शब्द है।

तिब्बत का विनाश इतिहास में पहचाना जायेगा, खासतौर से जब आदमी थोड़ा और जागरूक तथा मानवता कुछ और मानवीय होगी। यह बीसवीं सदी की सबसे बड़ी विपदा है कि तिब्बत भौतिकवादियों के हाथों में पड़ गया है, जो यह नहीं मानते कि तुम्हारे अंतर में कुछ है। वे मानते हैं कि तुम केवल पदार्थ हो और तुम्हारी चेतना पदार्थ का उपजात मात्र है। और यह सब बगैर आंतरिक का कोई अनुभव किये - मात्र तार्किक, बौद्धिक चिंतन।

संसार में एक भी कम्युनिस्ट ने ध्यान नहीं किया है, लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि वे सभी आंतरिक को इनकार करते हैं। कोई नहीं सोचता कि 'बाह्य' कैसे हो सकता है यदि कोई 'आंतरिक' न हो? उनका अस्तित्व एकसाथ है। वे अविच्छेद्य है। और 'बाह्य' केवल 'आन्तरिक' की सुरक्षा के लिए है, क्योंकि 'आन्तरिक' अत्यंत सुकुमार और

सुकोमल है। परन्तु 'बाह्य' को स्वीकार किया गया है और 'आन्तरिक' को इनकार। और यहां तक कि यदि कभी इसे स्वीकार भी किया गया, तो संसार इतने गन्दे राजनीतिकों से प्रभावित है कि वे आन्तरिक अनुभवों का भी कुरूप लक्ष्यों के लिए उपयोग करते हैं।

मुझे पता चला कि अमरीका अब अपने सैनिकों को ध्यान का प्रशिक्षण दे रहा है ताकि वे बिना घबड़ाये, बिना पागल हुए, बिना कोई भय महसूस किये लड़ सकें, ताकि अपने खंदकों में चुपचाप, शान्त और स्थिर और प्रकृतिस्थ पड़े रह सकें। किसी ध्यानी ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि ध्यान का उपयोग युद्ध लड़ने के लिए भी किया जा सकता है। लेकिन राजनीतिकों के हाथों में सब कुछ कुरूप हो जाता है- ध्यान तक।

अब अमरीका की सैनिक छावनियां ध्यान की शिक्षा दे रही हैं ताकि उनके सैनिक लोगों की हत्या करते समय शान्त और स्थिर रह सकें।

लेकिन मैं अमरीका को चेतावनी देना चाहता हूं कि तुम आग के साथ खेल रहे हो। तुम ठीक-ठीक नहीं समझ रहे हो कि ध्यान क्या करेगा। तुम्हारे सैनिक इतने शांत और स्थिर हो जाएंगे कि वे अपने शस्त्रों को फेंक देंगे और हत्या करने से सीधे इनकार कर देंगे।

एक ध्यानी हत्या नहीं कर सकता। एक ध्यानी विध्वंसक नहीं हो सकता। तो एकदिन वे आश्चर्यचकित होने वाले हैं कि उनके सैनिक अब लड़ाई में उत्सुक नहीं रहे। युद्ध, हिंसा, लाखों लोगों का संहार-यह सब संभव नहीं है यदि कोई थोड़ा भी ध्यान को जानता हो। तब न वह केवल स्वयं को जानता है, वह दूसरे को भी जानता है जिसकी वह हत्या कर रहा है। वह उसका ही भाई है, वे सभी एक ही निस्सीम अस्तित्व के अंग है।

सोवियत संघ में भी वे ध्यान में उत्सुक हैं, लेकिन उद्देश्य वही है-तुम्हारा आत्मसाक्षात्कार नहीं, बल्कि तुम्हें मजबूत बनाना ताकि तुम हत्या कर सको, बम फेंक सको और पारमाणविक हथियारों और प्रक्षेपास्त्रों का उपयोग कर सको, समूचे राष्ट्रों को ध्वस्त करने के लिए।

अगर मानवता थोड़ी सचेत होती तो तिब्बत को आज़ाद कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि यह एकमात्र देश है जिसने लगभग दो हजार वर्ष किसी अन्य कार्य में नहीं, बल्कि केवल ध्यान की गहराई में जाने को ही समर्पित किये हैं। और यह सम्पूर्ण विश्व को कुछ ऐसा सिखा सकता है जिसकी महती आवश्यकता है।

लेकिन साम्यवादी चीन उस सब कुछ को नष्ट कर देने का प्रयास कर रहा है जिसे दो हजार वर्षों में निर्मित किया गया है। उनकी सारी युक्तियां, ध्यान की उनकी सारी विधियां-उनके समस्त आध्यात्मिक वातावरण को प्रदूषित किया जा रहा है, विषाक्त किया जा रहा है। लेकिन वे सीधे-सादे लोग हैं; वे अपना बचाव नहीं कर सकते। उनके पास अपनी सुरक्षा के कोई साधन ही नहीं है-टैंक नहीं, बम नहीं, विमान नहीं, सेना नहीं। एक

निर्दोष जाति जिसने दो हजार वर्ष तक बिना किसी युद्ध के जीया है। वह किसी को बाधा नहीं पहुंचाती। वह सबों से इतना दूर है कि वहां पहुंचना भी कठिन काम है-वे संसार की छत पर रह रहे हैं। सर्वोच्च पहाड़ शाश्वत बर्फ उनका घर है। उन्हें अकेला छोड़ दो! चीन का कुछ जायेगा नहीं, लेकिन पूरा संसार उनके अनुभव से लाभान्वित होगा।

और संसार को उनके अनुभव की जरूरत पड़ेगी। संसार धन, शक्ति, प्रतिष्ठा और जो भी वैज्ञानिक तकनीकी ने पैदा किया है उस सबसे ऊब रहा है। ये सब निर्मूल्य हो गये हैं।

मनुष्य की आंतरिक खोज की प्रयोगशाला के रूप में तिब्बत को छोड़ दिया जाना चाहिए। लेकिन संसार के एक देश ने भी तिब्बत पर इस घृणित आक्रमण के विरुद्ध आवाज नहीं उठायी है। और चीन ने न केवल इस पर आक्रमण किया, बल्कि उसका विलय कर लिया है अपने नक्शे में। अब चीन के नये नक्शे में तिब्बत उनका भू-भाग है।

और हम सोचते हैं कि यह दुनिया सभ्य है, जहां निर्दोष लोग, जो किसी की हानि नहीं कर रहे हैं सहज की नष्ट किये जाते हैं। और उनके साथ ही सम्पूर्ण मनुष्यता का कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण भी नष्ट हो जाता है।

यदि मनुष्य में कुछ भी सभ्य होता तो हर राष्ट्र चीन द्वारा तिब्बत पर किये गये आक्रमण के विरुद्ध खड़ा हो जाता। यह चेतना पर पदार्थ का आक्रमण है। यह अध्यात्म की ऊंचाइयों पर भौतिकवाद का आक्रमण है।

तिब्बती मंत्र 'ॐ मणि पद्मे हुम्' सम्पूर्ण आन्तरिक तीर्थयात्रा का सारभूत रूप है। यह बताता है कि प्रारम्भ कैसे करना, फूल जब खिलेगा तो क्या होगा, अपने आन्तरिक खजाने का तुम्हारा चरम अनुभव क्या होगा।

□

* 'ॐ मणि पद्मे हुम्' से सम्पादित

तिब्बत मुक्ति-साधना

कृष्णनाथ

भारत तिब्बत का जो ऐतिहासिक सम्बन्ध है वह विदित है। भारत से ही सातवीं शताब्दी में बौद्धधर्म तिब्बत गया। उसके पूर्व की आदिम संस्कृति और बौद्धधर्म को उसने नया रूप, रूपाकार संस्कार दिया। तब से एक संक्षिप्त अन्तराल को छोड़ कर, तिब्बत में शताब्दियों से बौद्धधर्म, दर्शन, साधना, आयुर्वेद, ज्योतिष, चित्रकला, आदि सुरक्षित थे। वैसे ही जैसे बरफ में चीजें बिगड़ती नहीं। 1959 ई. में परमपावन दलाई लामा को अपने अनुयायियों के साथ अपना देश छोड़ कर भारत आना पड़ा। तबसे तिब्बत मूल के प्राय: 60 लाख लोगों के मुकाबले प्राय: 70-80 लाख चीनी वहां बसाये गये हैं। तिब्बत से निकलने वाली नदियों के जरिए सम्पूर्ण हिमालय और उत्तरी भारत का जल प्रदूषित हो रहा है। तिब्बत की वन-वनस्पति की जो भी सम्पदा है उसका नाश चीनी कर रहे हैं। तिब्बतियों को पूजा-पाठ करने, सभा करने, अपनी भाषा-संस्कृति का पालन करने की स्वतंत्रता नहीं है। इसके प्रति 1980 के दशक से अनेक बार ल्हासा, खम प्रदेश और शेष तिब्बत में विद्रोह हो रहा है। मानव स्वतंत्रता और अधिकारों का इतने बड़े पैमाने पर हनन हो रहा है और भारत सहित शेष विश्व इसे देख रहा है। यह कौन-सी विवशता है?

तिब्बत की स्वाधीनता का आन्दोलन उतना ही पुराना है जितना चीन द्वारा उसकी पराधीनता। 1949 में कम्युनिस्ट चीन ने तिब्बत को अपने कब्जे में लेने की कुचेष्टा प्रारम्भ की। तभी डॉ. राम मनोहर लोहिया ने वक्तव्य दिया कि एक राक्षस शिशु को दबोच रहा

* विचार-विमर्श के लिए प्रोफेसर सामदोङ रिंपोछे, प्रोफेसर अवध किशोर शरण, पंडित रमाशंकर त्रिपाठी के प्रति आभारी हूँ। प्रथम प्रारूप का सम्पादन प्रो. ए. के. शरण साहब ने किया।कृतज्ञ हूँ-ले.

है। 1959 में तो परमपावन दलाई लामा को तिब्बत छोड़ कर भारत की ओर निष्क्रमण करना पड़ा। तब से भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी, डॉ. अम्बेडकर, श्री जयप्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया, श्री दीनदयाल उपाध्याय तथा अन्य भारतीय नेता तिब्बत पर चीन के कब्जे के विरोध में; और तिब्बत की स्वाधीनता के पक्ष में बोलते रहे हैं। हाल के वर्षों में प्रोफेसर सामदोङ्म रिंपोछे ने प्रवासी तिब्बती संसद के अध्यक्ष के नाते इस आंदोलन का सूत्र सम्हाला है। उन्होंने इसे तिब्बत की 'मुक्ति-साधना' की संज्ञा दी है। यह संज्ञा मात्र नहीं है। इसमें गम्भीर अर्थ निहित है। यह मात्र राजनीतिक मुक्ति का आन्दोलन या संघर्ष नहीं है, मुक्ति की साधना है।

एक लाख से अधिक तो हमारे बनारस के एक मुहल्ले भेलूपुर में रहते हैं। दिल्ली के करोल बाग की ही आबादी4 लाख से अधिक है। इतनी कम संख्या में होते हुए और विषम जलवायु और परिस्थिति में रहते हुए भी, तिब्बती समुदाय ने भारत की संस्कृति को समृद्ध किया है। अनेक संस्कृत ग्रंथ तो मूल में उपलब्ध नहीं थे, तिब्बती कंग्युर में तिब्बती अनुवाद में ही उपलब्ध थे। ये अनुवाद इतने प्रामाणिक और सटीक हुए थे कि उनकी सहायता से दर्शन और साधना के अनेक ग्रंथों का पुनरुद्धार हो सका है। कालचक्र तंत्र की *विमलप्रभा टीका* का तिब्बती स्रोतों की सहायता से सम्पादन हो रहा है। नागार्जुन की *शून्यता संप्रति* का पुनरुद्धार हो चुका है। आचार्य कमलशील का *भावना क्रम* सम्पादित प्रकाशित है। *चौरासी सिद्धों की जीवनी* तिब्बती से पुनर्रचित होकर हिन्दी और तिब्बती में अब उपलब्ध है। तिब्बती संस्थान, सारनाथ से ऐसे अनेक प्रकाशन हुए हैं। दुर्लभ बौद्ध ग्रंथ-योजना के जरिए नेपाल से प्राप्त पाण्डुलिपियों पर भी सारनाथ में काम हो रहा है। फिर, कालचक्र तंत्र का बोधगया, सारनाथ, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश में एक से अधिक अभिषेक परम पावन दलाई लामा ने देने की कृपा की है। इसमें देश-विदेश के लाखों साधकों ने तंत्र में प्रवेश का अधिकार प्राप्त किया है। अनेक असाध्य रोगियों की तिब्बती आयुर्वेद पद्धति से धर्मशाला और दिल्ली में स्थापित केंद्रों से चिकित्सा हो रही है। तिब्बती थंका और अन्य चित्रकला, तिब्बती हस्तशिल्प, तिब्बती कालीन और ऊनी वस्त्र अनेक घरों की शोभा बढ़ा रहे हैं। फिर तिब्बती योग और तंत्र के केन्द्र सारे पश्चिमी विश्व में स्थापित हैं। ये हिमाचल प्रदेश में स्थित धर्मशाला को अपना केंद्र मानते हैं।

तिब्बत की मुक्ति-साधना सामूहिक साधना है। यह युवक-युवतियों तथा अधेड़-वय प्राय: सभी की है। सामूहिक साधना में कुछ ऐसी गति, शक्ति आती है जो मात्र वैयक्तिक साधना में नहीं आती। इस साधना में आध्यात्मिक साधना की भाँति दो अंतों में पतित

होने की गुंजाइश रहती है। एक तो अति-उत्साह का अन्त। बड़े जोर-शोर से ऐसे इसमें पड़ना-मानो हमने शुरू किया नहीं कि मुक्ति मिली। और जब मुक्ति नहीं मिली तो ऐसे निरुत्साह और उदासीन हो जाना कि अब नहीं मिली तो कभी नहीं मिलेगी। इन दोनों अंतों से बच कर निरंतर काम करते रहना है।

तिब्बत मुक्ति के लिए करने जैसा क्या है ? एक काम तो सत्ता के गलियारों या प्रकोष्ठों में या 'लॉबी' में तिब्बत की मुक्ति के लिए संसादों से पैरवी करते रहना जिसे 'लॉबींग' कहते हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का प्रश्न है। इसलिए जन-जागरण जरूरी है। संसद के साथ-साथ जिन राज्यों की सीमाएं तिब्बत से मिलती हैं, जैसे कश्मीर-लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, अरुणाचल प्रदेश, उन राज्यों की असेम्बलियों में भी इस प्रश्न को विधायकों के द्वारा बार-बार उठाने और दबाव बनाने के लिए 'लॉबी' करना चाहिए। इसमें भी संसद और विधानसभा और मंत्रिमण्डल तो देखने-बोलने में सरकार हैं। बिना दिखाई पड़े और बिना बोले सरकार तो अफसर चलाते हैं। विशेषकर विदेश के मामले में 'साऊथ ब्लॉक' के विदेश मंत्रालय के अफसर और प्रतिरक्षा मंत्रालय के अफसर। इनमें चीन के प्रति समाया हुआ भय कैसे दूर हो ? क्योंकि ये धीरे से हर आने वाले प्रधान या विदेश या प्रतिरक्षा मंत्री को कह देते हैं कि तिब्बत का प्रश्न उठाना हमारे हक में नहीं है। और ये जो मंत्री वगैरह आते-जाते हैं वे अपनी ही सत्ता और स्वार्थ में इतने उलझे रहते हैं कि वे अपने अफसरों की कही-सुनी बातों पर चलते हैं। वे नहीं जानते कि तिब्बत की स्वतंत्रता भारत की सुरक्षा है। वे यह भी नहीं जानते कि चीन में परम्परागत रूप से जो उसके सामने झुकता है उसे चीन दब्बू समझता है और उसका सम्मान नहीं करता। जो वियतनाम की तरह छोटा देश होने पर भी भिड़ जाता है, दबता नहीं, उसकी इज्जत करता है। इसलिए यह पाठ सरकार के अफसरों को कैसे पढ़ाया जाए और कैसे सांसदों तक पहुँचाया जाए कि यह एक समस्या है और एक काम है।

फिर तिब्बत की स्वाधीनता के इतिहास, भूगोल, भाषा, संस्कृति, पर्यावरण आदि के बारे में खोज करना और उसे लोगों में फैलाना भी जरूरी है क्योंकि देश के करोड़ों लोगों को तिब्बत का कोई परिचय ही नहीं। यह तक पता नहीं कि हमारे पवित्रतम तीर्थ कैलाश-मानसरोवर तिब्बत में हैं और चीन के कब्जे में हैं। चीन इसे कमाई का जरिया बनाये हुए है। न यह पता है कि भारत और चीन की तो सीमा मिलती ही नहीं। भारत और तिब्बत की सीमा एक है और वह तीर्थ रही है। तिब्बत के तीर्थ भारत में और भारत के तिब्बत में। उसका कोई विवाद नहीं। फिर चीन से कैसा सीमा-विवाद और कैसा समझौता ? और यह स्थिति प्राचीन काल में या मध्य काल में ही नहीं, आधुनिक ब्रिटिश काल में, आज़ादी से पूर्व 1947 तक रही है। मार्च 1947 में नयी दिल्ली में आयोजित एशियन रिलेशंस कांफ्रेंस में तिब्बत का प्रतिनिधि स्वतंत्र एशियाई देश के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित था। 1956 में बुद्धाब्द 2500 के आयोजन में दलाई लामा (और पंचेन

लामा) तिब्बत के राष्ट्राध्यक्ष के रूप में भारत आये थे। यहां सारनाथ पधारे थे। इनकी सूचना और संचार का काम भी महत्व का हैं।

संचार माध्यमों में इलेक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया का बढ़ता हुआ रोल है। उसका ठीक इस्तेमाल एक कला है। उसे सीखकर तिब्बत मुक्ति साधना का प्रचार-प्रसार किया जा सकता है।

फिर, समय-समय पर जो कार्यक्रम चलाये जाएं, जैसे हस्ताक्षर अभियान, उन्हें चलाते रहना है। ठीक हरकत करते रहना जरूरी है।

अपने-अपने स्थान पर विंश्वविद्यालय, विद्यालय या सार्वजनिक सभा के लिए भारतीय-तिब्बती विशिष्ट वक्ताओं को आमंत्रित करना, उनकी यात्रा, प्रचार, सभा के आयोजन करना यह जरूरी काम है।

तिब्बती हस्त-शिल्प की चीजों को खरीद कर या उनकी बिक्री में मदद कर, तिब्बती अस्मिता विषयक स्मृति-चिह्न जैसे झण्डा, हिमशिखर सहित नील-वस्त्र, 'टी शर्ट', बिल्ला वगैरह भेंट कर इस संदेश को फैलाया जा सकता है।

तिब्बती मुक्ति का अन्तर्राष्ट्रीय आयाम भी महत्त्व का है। भारत की जिम्मेदारी तो प्रथम है। किन्तु जनतांत्रिक देशों का अगुआ होने के नाते अमेरिका की तथा पश्चिमी-पूर्वी यूरोपीय देशों की भी बहुत बड़ी भूमिका है। फिर चीन के पड़ोसी एशियाई-प्रशांत क्षेत्रों के देशों का दबाव भी पड़े तो फर्क पड़ेगा। इनमें से अधिकांश में धर्म संस्कृति का प्रसार रहा है। बौद्ध विश्व की सुप्त या दबी चेतना को भी जगाने की जरूरत है।

फिर, चीन के तीन उपनिवेशों में जैसे चीनी तुर्किस्तान, इनर मंगोलिया और तिब्बत में जो मुक्ति आन्दोलन हैं उनमें परस्पर सम्बन्ध बनाने की जरूरत है।

चीन में माओ के बाद जो आधुनिकीकरण शुरू हुआ है, उसका जो भी लाभ है, वह तटीय प्रदेशों को है। प्रत्यन्त प्रदेश उससे छूटे हुए हैं। तटीय देशों में भी सरकार और कम्युनिस्ट पार्टी के अफसरों का नव-धनी वर्ग आधुनिक साज-सज्जा और दिखावटी भोग कर रहा है। इसके चलते वह इन तटीय प्रदेशों में भी शासक वर्ग, जनता और कार्यकर्ता से दूर होता जा रहा है। प्रत्यन्त प्रदेशों से तो दूर है ही। यह वैषम्य अन्दर-अन्दर आम असंतोष को बढ़ाता जा रहा है। आधुनिकीकरण और बाजारू अर्थव्यवस्था का यह अन्तर्द्वन्द्व कम्युनिस्ट चीन को अन्दर से नष्ट करने वाला है। अपने आप यह द्वन्द्व दीर्घकाल में मारक बनता है।

चीन के अन्दर जो जनतांत्रिक और स्वतंत्रता प्रेमी युवा शक्ति का त्यान मन चौक में विस्फोट हुआ है, वह प्रवासी चीनियों के साथ सारी दुनिया में कमोबेश फैल गया है उससे कुछ सम्पर्क हुआ है। उसे और गहरा बनाने की जरूरत है। भारत में चल रही इस मुक्ति-साधना का अन्तर्राष्ट्रीय विभाग भी होना चाहिए। किसी सरकारी विभाग की तरह

नहीं, किन्तु शोध और सम्पर्क सूत्र में, जैसे भारत के स्वतंत्रता संग्राम में कांग्रेस का विदेश विभाग था।

तिब्बत की मुक्ति के लिए करने लायक काम की सूची में अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार जो चाहे जोड़ या घटा सकते हैं। जो भी करें इस भाव से कि यह साधना है। इस साधना के साध्य और साधन दोनों पवित्र हों तो सिद्धि कदम चूमेगी। किन्तु यह गुह्य साधन नहीं है। जाहिर भी है, साधना कहने में एक खतरा है। कोई यह कह सकता है कि असली मुक्ति तो मन की है। मन अगर मुक्त है तो चाहे चीनी शासन करें या कोई और क्या फर्क पड़ता है? और अगर मन राग, द्वेष, मोह के अधीन है तो स्वाधीन भी हो तो क्या?

यह भी कहा जाता है कि भला हो चीन का जिसने तिब्बत पर कब्जा कर लिया तो तिब्बत में छिपी बौद्ध साधना, धर्म और संस्कृति भारत और पश्चिम तथा शेष दुनिया में फैल गयी। तो कोई चीनी हमलावरों को साधुवाद भी दे सकते हैं। उन्होंने बड़ा उपकार किया अन्यथा हमें परमपावन दलाई लामा का दर्शन कहां हो पाता!

भारत में ब्रिटिश राज के विरुद्ध जब स्वाधीनता संग्राम चल रहा था तो अंग्रेजी सत्ता-व्यवस्था से सुविधा प्राप्त दार्शनिक और चिन्तक पहले किस्म का प्रज्ञावाद उचारते थे कि असली और अन्तिम मुक्ति तो अविद्या और अहंकार और भय से मुक्ति में है। सरकारी प्रकाशन अंग्रेजी शासन के तहत जो भौतिक और नैतिक प्रगति हो रही है उसका बखान भी करते थे। ऐसे ही चीन से भय या स्वार्थ, या सबसे ऊपर अज्ञान के कारण तिब्बत की मुक्ति-साधना के क्रम में कहा जा सकता है। बल्कि कहा जा रहा है। तो मुक्ति या बोधि या सत्य या सुन्दर इनमें अन्दर-बाहर का बँटवारा नहीं है। ऐसा नहीं कि चीन तिब्बत की छाती पर बैठा है और 12 लाख तिब्बतियों, तिब्बत की कुल आबादी के पाँचवें भाग का नरसंहार कर चुका है। तिब्बत में ही तिब्बतियों को दूसरे दर्जे का और अल्पसंख्यक बना रहा है। आणविक कचरा डाल रहा है, वन-वनस्पति का सफाया कर रहा है और उपनिवेश कायम किये हुए है। परमपावन दलाई लामा के नेतृत्व में प्राय: एक लाख तिब्बती निर्वासित हैं, शरण के लिए भारत और विश्व के हर कोने में बिखर गये हैं, फिर भी वे आज़ाद हैं। अपने देश, गाँव व घर में सूखी रोटी खा कर पड़े रहना प्रवास में जाने से ज्यादा सुख देता है। फिर, तिब्बत में जो धर्म, दर्शन, संस्कृति और साधना सुरक्षित थी वह सारी दुनिया में फैल जरूर गयी है किन्तु उसकी वह पवित्रता और शुद्धता नहीं है जो उस दुर्गम प्रदेश में थी। तिब्बत जैसा चारों ओर से पर्वतों से घिरा अगम्य प्रदेश साधना का प्राकृतिक दुर्ग होता है। वह किला ढह गया है। वह भूमि नहीं, शांति का क्षेत्र नहीं तो तिब्बती साधना भी अपनी सुगंध बिखेर कर नष्ट हो जाने वाली है। इसलिए तिब्बत का अविलम्ब स्वाधीन होकर शांति और अहिंसा का क्षेत्र बनना न सिर्फ तिब्बत के लिए बल्कि मनुष्य जाति की अमूल्य धरोहर के संरक्षण-संवर्द्धन के लिए जरूरी है। इसमें तनिक भी विलम्ब घातक है।

साधना में भी स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना सुगम होता है। जैसे बाहर पृथ्वी को देखे और फिर अन्तर में उसकी भावना करे। स्थूल, बाह्य, प्रगट रूप से तो कुचला हुआ हो और अन्दर-अन्दर मुक्ति का अनुभव करे यह कौन-सी रीति है ?

फिर, जो चीन ने तिब्बत में सड़क बनाई, स्कूल खोले, बिजली दौड़ायी, संचार, पर्यटन बढ़ाया, जो आर्थिक निर्माण किया वह कब्जा बनाये रखने के लिए, शांति के दिनों में चीनी माल और सेवा के लिए, बाजार और उससे लाभ के लिए; और युद्ध के दिनों में पल्टन में भरती और सैनिक छावनी और अड्डे बनाये रखने के लिए है। वास्तव में इसका सारा संदर्भ साम्राज्यवादी-औपनैवेशिक है। और यह साम्राज्यशाही एक ऐसा विषैला पात्र है जिसमें दूध भी रखा जाए तो विषैला हो जाता है। बीसवीं सदी के मध्य जो समुद्र पार साम्राज्य थे वे ढह गये। ब्रिटेन, पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस आदि के उपनिवेश जो एशिया, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका के महाद्वीपों में थे वे सभी स्वाधीन हो गये। भारत की स्वाधीनता ने विश्व में इस स्वाधीनता की अगुआई की। किन्तु जो भूमि से जुड़े भूखण्डों में उपनिवेश थे, जैसे रूस के और चीन के वे समुद्र पार के उपनिवेशों से कम उजागर थे। इसलिए शुरू में कायम रहे। किन्तु 1980 के दशक में सोवियत संघ के नाम पर चल रहे रूसी साम्राज्य के अन्तर्गत एशिया और पूर्वी यूरोप के गणराज्य भी स्वाधीन देश बन गये। मध्य एशिया में ही पाँच गणराज्य अब स्वाधीन हैं-कज़ाकिस्तान, ताज़िकिस्तान, उज़्बेकिस्तान, किर्गिस्तान, तुर्कमेनिस्तान। पश्चिमी तुर्किस्तान, जो सोवियत रूसी साम्राज्य के अधीन था, अब स्वाधीन है। पूर्वी तुर्किस्तान, जिसे चीन सिक्यांग का नाम देकर अपना प्रदेश बताता है, वह मुस्लिम प्रदेश पश्चिमी तुर्किस्तान की तरह स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा है। इसी तरह 'आऊटर मंगोलिया' या मंगोलिया स्वाधीन है। इनर 'मंगोलिया' चीन के कब्जे में है। जैसे कि तिब्बत है।

अगर इतिहास चक्र है, कालचक्र है तो जैसे पहले समुद्र पार के साम्राज्य एक-एक कर ढहे वैसे अब भूमि पार के साम्राज्य के ढहने का क्रम है। रूसी साम्राज्य के ढहने से यह सिलसिला शुरू हुआ है। इस प्रकार तिब्बत की मुक्ति चीन की साम्राज्यशाही-तानाशाही से मुक्ति है और जनतंत्र और स्वतंत्रता की वापसी है।

कालचक्र की गति अचिंत्य है। अगर यह चक्र कहीं अटक जाए, जैसे जगन्नाथ का रथ रुका रहता है तो उसे चलाने के लिए बहुतों को पराक्रम करना होता है तब वह चलता है। बल्कि दौड़ता है। लेकिन इसके लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न ('क्रिटिकल मिनिमम एफर्ट'), सम्यक व्यायाम, जरूरी होता है। जब वह चल निकलता है तब तो वह स्वचालित होता है, किन्तु प्रारम्भ में प्रयत्न जरूरी है। खाली यह देख लेने से कि तिब्बत या हम मुक्त हो गये, मुक्त नहीं हो जाते। देखने के साथ-साथ, ज्ञान के साथ इच्छा और क्रिया का मेल स्वातंत्र्य के लिए आवश्यक है। और स्वातंत्र्य में आनन्द है।

स्वातंत्र्य साधना के एक चतुर्भुज की कल्पना की जा सकती है। इसकी एक भुजा

राजनैतिक, दूसरी आर्थिक, तीसरी सामाजिक, और चौथी मानसिक-आध्यात्मिक है। इन चारों भूमियों पर जब साधना दृढ़ हो तो मुक्ति है, अन्यथा नहीं। इनमें से किसी एक को खारिज करने से या बाह्य-आन्तरिक द्वन्द्व को तानने से मुक्ति अपूर्ण है इसलिए मृषा है।

भारत में लगभग 35 वर्ष पूर्व करीब 60 हजार तिब्बती शरणार्थी आये। आजकल इनकी संख्या लगभग 1 लाख है। इन तिब्बती भाई-बहनों ने परमपावन दलाई लामा के प्रेरणादायक नेतृत्व में अपनी सहज हिमालयी प्रकृति और संस्कृति को विकृत नहीं होने दिया। विषम परिस्थिति में भी तिब्बती समुदाय मेहनत-मशक्कत कर अपनी जीविका कमाता है, पूजा-पाठ करता है और खुश रहता है। अलग-थलग तो रहना इसकी नियति है। अन्यथा भारत, जो मनुष्यों का महासागर है उसमें यह खो जाएगा। किन्तु बौद्ध धर्म, दर्शन, साधना, व्यापार, तीर्थयात्रा आदि के जरिए यह शेष भारत से और विश्व से जुड़ता भी है। बौद्ध धर्म-दर्शन की परम्परा में लुम्बिनी, बोधगया, वाराणसी, कुशीनगर आदि मध्य प्रदेश थे, तिब्बत और अन्य हिमालयी प्रदेश और विंध्य के दक्षिण के प्रदेश प्रत्यंत देश। किन्तु आज स्थिति इससे भिन्न है। बौद्ध धर्म, दर्शन, साधना की दृष्टि से, विशेषकर महायान की दृष्टि से, प्रवासी तिब्बत जैसे मध्य प्रदेश हैं और वाराणसी इत्यादि प्रत्यंत प्रदेश क्योंकि गंगा-यमुना के मैदानों में बौद्धधर्म शताब्दियों से लुप्त हो गया था। हिमालय के सीमांत प्रदेशों में, भारतीय मूल और तिब्बती प्रकार का महायान बौद्धधर्म प्रचलित था। लेकिन शेष भाग से इसका सम्पर्क न था। अन्तर्हिमालयी आदान-प्रदान तो लद्दाख से लगा कर अरुणाचल प्रदेश तक तिब्बत से था- व्यापार में भी; धर्म, भाषा संस्कृति में भी। जब परमपावन दलाई लामा के नेतृत्व में, जो सृजनशील अल्पमत भारत आया, उसमें महायान बौद्धधर्म, दर्शन, योग, तंत्र के बड़े विद्वान और साधक भी आये।

इस सिलसिले में एक प्रश्न सालता है कि तिब्बत एक स्वाधीन देश रहा है। 1950 के दशक से चीन के कब्जे में है। मुक्ति के लिए छटपटा रहा है और स्वराज उसका जन्मसिद्ध, स्वयंसिद्ध अधिकार-कर्त्तव्य है। अपने विश्वास, पूजा, साधना, अस्मिता के लिए तिब्बत की स्वाधीनता सूर्य की तरह स्वयंप्रकाश है। 'प्रसाद' के शब्दों में ''स्वयंप्रभा समुज्वला स्वतंत्रता'' उसे पुकारती है। किन्तु ऐसा क्यों होता है कि अल्पकाल में यह स्वयंसिद्ध सत्य निर्बल रहता है और साम्राज्यवाद-उपनिवेशवाद का असत्य प्रबल होता है ? क्या यहां भी ग्रेशम का नियम काम करता है ? यह नियम है कि अल्पकाल में खोटा सिक्का खरे सिक्के को बाजार से बाहर कर देता है। दीर्घकाल में तो वह खोटा सिक्का पकड़ में आता है और उसे चलाने वाला धोखाधड़ी में पकड़ा जाता है। जैसे कि दीर्घकाल में

सत्य की ही विजय होती, सत्यमेव जयते। किन्तु दीर्घकाल में जब हम सभी मर जाएंगे तब सत्य की विजय होगी ? या कब होगी ?

मुक्ति तो एक क्षण में होती है। जैसे बोधि। *एकक्षणाभि सम्बोधः*। बोधि तो एक क्षण में है। किन्तु वह क्षण कठिन साधना के बाद आता है। वह होती तो है एक क्षण में ही, किन्तु वह क्षण कब आएगा ? इसमें समय का तत्त्व महत्त्व का है। काल बलवान है। ऐसा नहीं कि तिब्बत मुक्ति-साधना हजार साल तक चले, सौ साल चले, यहां तक कि दस साल चले तब मुक्ति हो। तिब्बत की प्रकृति, परिस्थिति भिन्न है। भारत अंग्रजी राज के प्राय: सौ साल बाद आज़ाद हो सका, किन्तु तिब्बत मुक्ति-साधना 100 साल तक कैसे चल सकती है ? तब तक तो तिब्बत में तिब्बती मानुष और तिब्बती धर्म, दर्शन, संस्कृति सभी कुछ नष्ट हो चुका होगा। अभी ही तिब्बत के पूर्वी भाग को चीन में मिला दिया गया है, चीन का प्रान्त बना दिया गया है। तथाकथिक 'तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र' में भी चीनी बसाये जा चुके हैं। सुनते हैं प्राय: 60 लाख तिब्बतियों के मुकाबले प्राय: 70 लाख चीनी बसाये जा चुके हैं। चीन की जनसंख्या का विस्फोट उसके तट देश में समाता नहीं है, इसलिए वह प्रशांत महासागर के पार अमेरिका के पश्चिमी तट पर, प्रशांत के द्वीपों और दक्षिण-पूर्व एशिया, दक्षिण-एशिया, पश्चिम एशिया सब दूरेंजहां सींग समाये घुस जाना चाहता है। जहां उसे कोई हांकता नहीं, टोकता नहीं, बल्कि भाई-भाई कहकर सिर नवाता है, वहाँ तो और भी घुस जाता है। तिब्बत के उपनिवेश में शांति के दिनों में उसे बसने के लिए भूमि और युद्ध के दिनों में अड्डा मिल गया है। इसलिए वह वहां से आसानी से हटने वाला नहीं है। और चीनी आदमी नहीं, व्यवस्था दुख देती है। इसमें कभी-कभी तो चीनी अफसर से ज्यादा उससे स्वार्थवश जुड़ा तिब्बती जुल्म ढाता है। भारत की तरह तिब्बत में भी पुश्तैनी गुलामों का एक वर्ग है। वह साम्यवाद के आवरण के पीछे चीनी साम्राज्यशाही का दलाल है। चाकर है। वह तिब्बत की मुक्ति में अपनी हानि देखता है और अपने लाभ-लोभ के लिए तिब्बती भाई-बहनों पर चीनी अफसर से भी ज्यादा कठोर व्यवहार करता है। इस वर्ग में तिब्बत में स्थापित चीनी शासन के तिब्बती अफसर और कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता शामिल हैं। ये चाहे तिब्बती जनसंख्या के एक प्रतिशत हों, या अधिक, किन्तु शासन की जगहों में होने के चलते ज्यादा विपत्तिकर हैं।

जो हो, तिब्बत मुक्ति-साधना के साथ-साथ समय बलवान है। तिब्बत का प्रश्न बीसवीं सदी में प्रारम्भ हुए एशियाई स्वाधीनता आन्दोलन का अपूर्ण काम है। यह स्वाधीनता के 'एजेंडा' का एक विलंबित काम है। इसे इस शताब्दी के अंत होते-होते पूरा होना है। इक्कीसवीं सदी में स्वाधीन तिब्बत का प्रवेश एशिया में स्वाधीनता और शांति के एक नये सहस्त्राब्द की शुरुआत करे, ऐसी हमारी मंगलकामना है। दृष्य-अदृष्य शक्तियों से प्रार्थना है।

□

सत्यः परेशान, किन्तु पराजित नहीं

प्रो. सामदोंग रिंपोछे

दुनिया की छत कहा जाने वाला तिब्बत इस समय चीन के अधीन है। 10 मार्च, 1959 से वहाँ चीनी शासक लूट-खसोट मचाये हुए हैं। वे तिब्बतियों का न केवल सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विनाश कर रहे हैं, बल्कि उनकी संस्कृति एवं धर्म का भी लोप करने पर तुले हुए हैं। इधर तिब्बतियों के धर्मगुरु परमपावन दलाई लामा भारत में निर्वासित जीवन जीते हुए तिब्बत मुक्ति-साधना में संलग्न हैं। लाखों तिब्बती उनकी टीस के मुताबिक साधनारत हैं। प्रस्तुत है तिब्बती जन प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष, प्रख्यात तत्त्व चिन्तक एवं *केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ* के निदेशक प्रोफेसर एस. रिंपोछे से **डॉ० विजय शंकर चौबे** की बातचीत के प्रमुख अंश-सं०

प्रश्न-तिब्बत की वर्तमान स्थिति क्या है?

प्रो. रिंपोछे-तिब्बत की वर्तमान स्थिति अत्यन्त खराब है। दिनोंदिन दयनीय होती जा रही है। चीन द्वारा उस पर ढ़ाये जा रहे कहर गहरे घाव कर रहे हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक शोषण एवं पर्यावरणीय दोहन के साथ ही, वह तिब्बत की सांस्कृतिक परम्पराओं एवं धार्मिक मान्यताओं पर भी प्रहार करने लगा है। चीनी ऐसे कुकर्म करते जा रहे हैं, जिससे इस धरती से तिब्बत का नाम-निशान तक मिट जाए।

प्रश्न-इस धरती से तिब्बत का नाम न मिटे इसके लिए आप क्या कर रहे हैं?

प्रो. रिंपोछे-तिब्बत की अस्मिता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए हम सतत् प्रयत्नशील हैं, इसके लिए हमने तीन तरीके अपनाए हैं। सर्वप्रथम, सांस्कृतिक धरोहर को कायम रखने के लिए हम निर्वासित तिब्बती अपनी शिक्षा-दीक्षा, कला आदि से जुड़े हुए हैं। सच कहिए तो भारत से मिली बौद्ध संस्कृति ही हमारी असली संस्कृति है, जिसे यहाँ रहकर बरकरार रखने में हमे मदद मिल रही है। वैसे भी निर्वासित तिब्बतियों की संख्या 12 लाख है। जो जहाँ है, वहीं अपनी पहचान बनाये हुए है। इसके अतिरिक्त हमारा दूसरा प्रयास तिब्बत

की वास्तविक स्थिति से सबको अवगत कराना है और तीसरा तरीका है विश्व जनमत जगाने का, जिससे हमें काफी लाभ हुआ है।

प्रश्न–क्या सचमुच निर्वासित तिब्बती अपनी पहचान बनाये हुए हैं ? जबकि पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव जोरों पर है।

प्रो. रिंपोछे–हाँ, निर्वासित तिब्बती अपनी पहचान बनाये हुए हैं, किन्तु कुछ युवक-युवतियां पश्चिम से प्रभावित हैं। उन्हें सुधारा जा रहा है। अपनी पहचान को बनाये रखने के लिए उन्हें प्रशिक्षित भी किया जा रहा है।

प्रश्न–क्या तिब्बत में रह रहे लोग भारतीय बौद्ध परम्परा एवं तिब्बती संस्कृति को कायम किये हुए हैं ?

प्रो. रिंपोछे–हाँ, तिब्बत में रह रहे मूल तिब्बती अपनी संस्कृति को बरकरार रखे हुए हैं, किन्तु उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, क्योंकि वहाँ चीन का क्रूर एवं अमानवीय दमन जारी है। इसी नाते तिब्बती चीनी शासन का प्रतिरोध भी नहीं कर पा रहे हैं।

प्रश्न–यह ठीक है कि तिब्बत में लोग चीन से आतंकित हैं। खुलकर कुछ नहीं कर पा रहे हैं, किन्तु निर्वासित तिब्बतियों के सामने ऐसी बात नहीं है, फिर क्या हो रहा है?

प्रो. रिंपोछे–हमारी लड़ाई अहिंसक है, अतः उस परिधि में रहकर जितना हो सकता है, उतना हम कर रहे हैं। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए तिब्बती युवक-युवतियों को प्रशिक्षित कर रहे हैं। बौद्ध धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, कला, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि को पुनर्जीवित करने में हम लगे हुए हैं। साहित्य सर्जन में अनुवाद, पुनरुद्धार, सम्पादन एवं लेखन आदि जारी है।

प्रश्न–तिब्बत की मुक्ति-साधना के संदर्भ में संसार के अनेक देश आप की मदद कर रहे हैं, जैसा कि आप मानते हैं। इस समय भारत से आप को कैसी अपेक्षाएं हैं?

प्रो. रिंपोछे–भारत गौतम, गांधी आदि अनेक महामनीषियों का देश है। इसे हम आर्यभूमि कहते हैं। हम तिब्बती जो कुछ हैं, वह भारत की बदौलत हैं। हमारा समूचा आचार-विचार एवं चिन्तन भारतीयता से आप्लावित है। यह हमारा गुरु देश है। इतिहास इस बात का गवाह है, जब-जब शिष्य के ऊपर संकट आये हैं, गुरु ने उसका निवारण किया है। भारत से हमें बड़ी अपेक्षाएं हैं। हमारी अपेक्षाओं के अनुरूप वह मदद भी कर रहा है। तिब्बत मुक्ति साधना के संदर्भ में जितनी सुविधाएं हमें अपेक्षित हैं, उनकी परिपूर्ति यहाँ से हो रही है।

प्रश्न–राजनीति के क्षेत्र में भारत कितनी मदद कर रहा है ?

प्रो. रिंपोछे–राजनीति के क्षेत्र में भारत तिब्बत के मसले पर चीन से कोई बात करेगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। नवम्बर, '96 में चीन के राष्ट्रपति जियांग जेमिन भारत आये थे।

उस समय भी यहाँ से राजनीतिक पहल नहीं हुई। हाँ, बुद्धिजीवियों एवं समाज-सेवियों ने तिब्बत की मुक्ति के लिए ज्ञापन दिये तथा धरना एवं प्रदर्शन किए।

प्रश्न–चीन के राष्ट्रपति की भारत-यात्रा को ऐतिहासिक माना गया, आप कहाँ तक सहमत हैं ?

प्रो. रिंपोछे–राष्ट्रपति जियांग जेमिन की भारत यात्रा ऐतिहासिक हो या न हो, किन्तु महत्त्व की अवश्य रही है। क्योंकि वे विदेश यात्रा कम करते हैं और जब यात्रा करते हैं तो सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए। एक बात बता दूं, भारत में उन दिनों खूब कहा गया कि चीनी राष्ट्रपति की यह पहली यात्रा है, जो अनुचित है। भारत में जब ब्रिटिश हुकूमत थी, तब भी वहाँ के तत्कालीन राष्ट्रपति चांकाई सिक यहाँ आये थे। हाँ, आज़ाद भारत में उनकी यह पहली यात्रा हो सकती है।

प्रश्न–भारत-चीन के बीच जो समझौते हुए, उनके विषय में आप के क्या ख्याल हैं?

प्रो. रिंपोछे–चीन ने भारत के साथ समझौता नहीं, बल्कि चाल की है। उसकी विश्वासघाती चाल का भारत भुक्तभोगी रहा है। इसीलिए भविष्य में इसे सतर्क रहने की आवश्यकता है।

प्रश्न–आप भारत के भविष्य की क्यों चिन्ता करते हैं?

प्रो. रिंपोछे–भारत के भविष्य की ही नहीं, बल्कि भूत और वर्तमान की भी हमें चिन्ता है। इसकी प्रतिष्ठा हेतु हम तिब्बत के हित का बलिदान भी कर सकते हैं। हमें विश्वास है कि भारत की अस्मिता बनी रही तो निश्चित ही समूचे संसार में शांति, मैत्री एवं सत्य का उपस्थापन होगा और तिब्बती भी अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं परम्परा आदि को बरकरार रखने में सफल होंगे।

प्रश्न–कहा जाता है कि भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु तिब्बत को चीन का अंग मानते थे।

प्रो. रिंपोछे–नहीं, पण्डित नेहरु ने कभी भी तिब्बत को चीन का अंग नहीं माना। उन्होंने कहा था–"Tibet is autonomous (under self-government) region of China." अर्थात् तिब्बत चीन का स्वायत्तशासी क्षेत्र है। उन्होंने इसे कभी भी Part of China अर्थात् चीन का अंग नहीं कहा। स्वायत्तशासी क्षेत्र एवं अभिन्न अंग नहीं कहा। स्वायत्तशासी क्षेत्र एवं अभिन्न अंग में काफी अन्तर है। वैसे चीन भी तिब्बत को स्वायत्तशासी क्षेत्र मानता है।

प्रश्न–चीन द्वारा तिब्बत को स्वायत्तशासी क्षेत्र कहने का क्या अभिप्राय है?

प्रो. रिंपोछे–तिब्बत को स्वायत्तशासी क्षेत्र कहना चीन की चाल है। सन् 1951 के 17 सूत्री समझौते के तहत उसने तिब्बत को स्वायत्तशासी क्षेत्र माना और सांस्कृतिक स्वतंत्रता भी प्रदान की, किन्तु बाद में वह स्वयं मुकर गया। 'सांस्कृतिक क्रान्ति' के नाम पर उसने

न केवल तिब्बतियों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाया, बल्कि मानवता को भी कुचलना शुरू कर दिया।

प्रश्न–तिब्बती जनप्रतिनिधि सभा के आप अध्यक्ष हैं। एक अध्यक्ष के रूप में आप तिब्बत मुक्ति पर प्रकाश डालें।

प्रो. रिंपोछे–तिब्बत मुक्ति के विषय में मेरा स्पष्ट मत है। मुझे पूरा विश्वास है कि तिब्बत आज़ाद होकर रहेगा। वस्तुत: तिब्बत की आज़ादी समूची मानवता की आजादी है। आजादी का हमारा दावा सत्य पर आधारित है। सत्य परेशान भले ही हो, किन्तु वह कभी पराजित नहीं हो सकता। हमारा आंदोलन अहिंसक है। विशुद्ध गांधीवादी है। गांधीवादी तरीके से दक्षिण अफ्रीका आज़ाद हुआ। स्वयं भारत में जिन अंग्रेजों को भगाना असंभव था उन्हें गांधी ने साकार किया। समूची दुनिया के लिए वह उदाहार्य पुरुष हैं। हमारा दृढ़ निश्चय है कि तिब्बत भी आज़ाद होकर रहेगा। अगर तिब्बत आज़ाद नहीं हुआ तो समूचे संसार से सत्य, न्याय एवं मानवता का नाम मिट जाएगा। धर्म के स्थान पर अधर्म होगा और फिर उसके बाद जो कुछ होगा, उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकेगा।

प्रश्न–आप भारत के भविष्य की क्यों चिन्ता करते हैं ?

प्रो. रिंपोछे–भारत के भविष्य की ही नहीं, बल्कि भूत और वर्तमान की भी हमें चिन्ता है। इसकी प्रतिष्ठा हेतु हम तिब्बत के हित का बलिदान भी कर सकते हैं। हमें विश्वास है कि भारत की अस्मिता बनी रही तो निश्चित ही समूचे संसार में शांति, मैत्री एवं सत्य का उपस्थापन होगा और तिब्बती भी अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं परम्परा आदि को बरकरार रखने में सफल होंगे।

प्रश्न–तिब्बत की आज़ादी की कोई समय सीमा है?

प्रो. रिंपोछे–तिब्बत की आज़ादी के लिए हम तत्पर हैं। मुक्ति साधना में रत हैं, किन्तु इसकी कोई समय सीमा नहीं है। तिब्बत की परतंत्रता एक दुर्योग था। किन्तु संयोग आने पर स्वतंत्रता हासिल हो जाएगी।

प्रश्न–संयोग कब आएगा?

प्रो. रिंपोछे–कुछ कहा नहीं जा सकता। सोवियत रूस बिखर जाएगा, इसका अंदाज नहीं था। जर्मनी एक हो जाएगा, इसकी कल्पना तक नहीं थी। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में अनेक घटनाएं घटीं, जो संयोगवश थीं। संयोग एवं वियोग एक प्रक्रिया है, जिसका पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता, किन्तु इतना जरूर है कि तिब्बत मुक्ति-साधना में हम सफल होंगे।

प्रश्न–भारत के अलावा वे कौन-से देश हैं, जो आप की खुलकर मदद कर रहे हैं?

प्रो. रिंपोछे–तिब्बत मुक्ति के संदर्भ में खुलकर साथ देने वाले देशों की संख्या अमेरिका एवं यूरोप की अपेक्षा एशिया में कम है। वैसे एशिया में भी हमारे सहयोगियों की संख्या में दिनोंदिन बढ़ोत्तरी हो रही है। जापान, द. कोरिया, वियतनाम, थाईलैण्ड, ताईवान आदि देशों में तिब्बत समर्थकों की संख्या बढ़ रही है। नेपाल हमारी समस्या पर ध्यान नहीं देता था, किन्तु अब वह भी इधर उन्मुख है।

प्रश्न–एशियाई देशों को तिब्बत की समस्या की ओर उन्मुख होने से क्या लाभ होगा, जबकि चीन इस महाद्वीप की सबसे बड़ी हस्ती है।

प्रो. रिंपोछे–बेशक, चीन एक हस्ती है। समूची दुनिया में वह बड़ी शक्ति के रूप में माना जाता है। उससे लोग अपना व्यापार भी बनाये रखना चाहते हैं। बड़े-बड़े देश भी उससे रिश्ते संजोए हुए हैं, किन्तु इस धरती पर अब कोई ऐसा देश नहीं है, जो तिब्बत की समस्या से वाकिफ न हो। हमारे पक्ष में बढ़ता जनाधार तिब्बत की सच्चाई का प्रतीक है। परमपावन दलाई लामाजी बार-बार कहते हैं कि जो तिब्बत मुक्ति-साधना में हमारा साथ दे रहे हैं, वे तिब्बत के पक्षधर अथवा चीन के विरोधी नहीं हैं। वे तो न्याय के पक्षपाती हैं और अन्याय के विरोधी हैं। वस्तुत: हमारी मांग न्यायोचित है इसका समर्थन करना हर न्यायप्रिय एवं मानवतावादी का पुनीत कर्त्तव्य है। इससे न केवल दैशिक, अपितु जैविक समस्याओं का समाधान होगा।

□

तिबेतन वीमेंस एसोसिएशन की मुख्य मांगें

चीन सरकार से मांग :

* वह तिब्बती महिलाओं को स्वास्थ्य सुविधाएं, विशेषकर प्रजनन, परिवार नियोजन और यौन स्वास्थ्य का पूरा लाभ दे।
* वह इस बात का आश्वासन दे कि नजरबंद की गई तिब्बती महिलाओं का यौन-शोषण नहीं किया जाएगा। और यदि ऐसा अपराध होता है तो अपराधी को सजा दी जाएगी।
* तिब्बत का विकास तिब्बती जनता पर केंद्रित हो और स्थानीय तिब्बतियों की जरूरतों के अनुसार हो।
* तिब्बत के ग्रामीण क्षेत्रों में तिब्बतियों, खासकर महिलाओं को साक्षरता कार्यक्रम के दायरे में लाया जाए।

राष्ट्र संघ के शरणार्थियों सम्बन्धी उच्चायोग से मांग :

* वह शरण दाता राष्ट्रों से अनुरोध करे कि शरणार्थियों से अंतर्राष्ट्रीय संधियों और समझौतों के वैध सिद्धान्तों के अनुरूप व्यवहार किया जाएगा।
* रिसेप्शन सेंटर और ट्रांजिट कैंप पर शरणार्थियों की सुरक्षा की व्यवस्था हो और उन्हें सब सुविधाएं दी जाएं।
* सीमावर्ती क्षेत्रों में तिब्बती शरणार्थियों, खासकर महिलाओं की सम्मानजनक व्यक्तिगत सुरक्षा सुनिश्चित की जाए।
* शरणार्थियों की घूमने-फिरने की स्वतंत्रता, कल्याण व नागरिक अधिकार तय करने वाले नियम महिलाओं और पुरुषों पर समान रूप से लागू किए जाएं।
* महिला शरणार्थियों को शरण देने सम्बन्धी निर्देश तैयार किए जाएं क्योंकि महिलाओं को अधिक अत्याचार झेलने पड़ते हैं।

विश्व की महिलाओं से अपील

* तिब्बत में महिलाओं पर अत्याचार की जांच के लिए और महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिनिधि से संपर्क किया जाए।
* विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों और सम्मेलनों में तिब्बती महिलाओं से जुड़े मुद्दों को उठाया जाए।

संगठन की प्रमुख सुश्री सोमो त्सेरिंग से 'तिब्बत देश' के संपादक विजय क्रांति की बातचीत

परिशिष्ट 1*

चीनियों और तिब्बतियों के बीच संधि

(तिब्बती वर्णन से अनूदित)

12 अगस्त 1912

तीन सूत्री प्रस्तावों पर वार्त्ता करने के लिए गोरखा साक्षी की उपस्थिति में चीनी और तिब्बती प्रतिनिधि मिले। इस प्रस्ताव को 6ठे माह के 29वें दिन को अम्बांन लेन और चुंग द्वारा लिखे गए पत्र के जवाब के रूप में दलाई लामा द्वारा स्वीकार किया गया था। 30 तारीख को पक्षों ने सावधानीपूर्वक बातचीत की और त्रिसूत्री प्रस्ताव को चीनी, तिब्बती और नेपाली भाषाओं में पास कर उन पर हस्ताक्षर करने और मुहर लगाने का निर्णय लिया।

सूत्र 1–ल्हासा के दाब्शी और सेलिंग क्षेत्रों में फील्ड गन और मैक्सिम गन समेत जितने भी शस्त्र व साजोसामान चीनियों के कब्जे में हैं, उन सबको दोनों पक्षों एवं साक्षी की उपस्थिति में सीलबंद करके तिब्बत सरकार को सौंप दिया जाएगा। चीनी अधिकारियों एवं सैनिकों के प्रस्थान से पहले, पन्द्रह दिनों के भीतर, सभी हथियार व साजो-सामान याब्शी लांग-दुन मकान में रख दिए जाएँगे, गोलियाँ और बारूद डोरिंग हाउस में इकट्ठी और जमा की जाएँगी। पन्द्रह दिनों की सीमा की समाप्ति पर सभी हथियार डोरिंग हाऊस में रख दिए जाएँगे और साक्षी के रूप में गोरखा दूत वहां की सुरक्षा व्यवस्था करेगा।

सूत्र 2 –पन्द्रह दिनों के भीतर चीनी अधिकारी व सैनिक तिब्बत छोड़ देंगे। तीन किश्तों में प्रस्थान की उनके द्वारा दी गई तिथियों के अनुसार तिब्बती हर टुकड़ी के साथ अपना एक अधिकारी नियुक्त करेंगे और उनके लिए मालवाहक पशुओं तथा सवारी के लिए टट्टुओं की आपूर्ति की व्यवस्था करेंगे। उनसे स्थानीय कीमतों के अनुसार पर्याप्त भुगतान लेकर तिब्बत में पड़ाव स्थलों से सीमा तक चीनियों को राशन जैसे चावल, आटा, त्सम्पा, मांस, मक्खन व चाय की आपूर्ति की जाएगी। मालवाहक पशुओं और सवारी के लिए टट्टुओं की व्यवस्था बिना देरी के की जाएगी। चीनी लोग उन पशुओं को जबर्दस्ती सीमा के पार नहीं ले जाएँगे।

सूत्र 3–दोनों प्रतिनिधि शस्त्रस्त्र रखने के उद्देश्य से कल याब्शी हाउस से समस्त चीनी अधिकारियों एवं सैनिकों को तथा डोरिंग हाउस से तिब्बती सैनिकों को हटा देंगे।

---

* इस दस्तावेज से स्पष्ट है कि 1912 में, अर्थात् संधि के समय, तिब्बत एक स्वतंत्र देश था और चीन को भी यह मान्य था। संधि तो दो देशों के बीच होती है। 13वें दलाई लामा ने यह संधि करके तिब्बत को चीन से पूर्ण स्वतंत्र कराया–सं.

ल्हासा के दाब्सी और सेलिंग क्षेत्र में चीन सरकार के कब्जे में जो भी शस्त्रस्त्र हैं, चीन के निजी व्यापारियों के पास भी जो शस्त्रस्त्र हैं उन्हें अम्बांन लेन व चुंग के द्वारा 6ठे माह के 29वें दिन को लिखे गए पत्र के अनुसार सातवें माह की पहली तिथि को दोनों पक्षों एवं साक्षी के समक्ष एक सूची के साथ पेश किया जाएगा। शस्त्रस्त्रों का कोई भी हिस्सा बेचा, दिया, छिपाया या फेंका नहीं जाएगा। साक्षियों की सलाह के अनुसार अम्बांन लेन और चुंग की अपनी सुरक्षा के लिए साठ राईफल व गोली सिक्का लेकर चलने की अनुमति दी जाएगी। शेष सभी शस्त्रस्त्र डोरिंग व याब्शी हाउसों में रखे जाएंगे जिन्हें दोनों प्रतिनिधियों व साक्षियों द्वारा सीलबंद किया जाएगा। दोनों प्रतिनिधि व साक्षी उपरोक्त वर्णन के अनुसार गार्ड देने की व्यवस्था, करेंगे। सभी शस्त्रस्त्र, फील्ड गन, मैक्सिम गन जिन्हें ल्हासा, दाब्शी, सेलिंग से चीनी सरकार व निजी व्यापारियों से इकट्ठा किया गया है बिना दिए, बेचे, छिपाए या छोड़े हुए जमा किये जायेंगे। निजी चीनी व्यापारियों के पास समस्त शस्त्रों की बाकायदा सूची बनाई जाएगी और उनके वापसी सम्बन्धी तथ्यों पर प्रतिनिधि व साक्षी बातचीत करेंगे।

यदि कोई पक्ष वर्णित प्रावधानों का अतिक्रमण करता है तो दोनों पक्षों एवं साक्षियों द्वारा हस्ताक्षरित व मुहरबद्ध इस संधि को निष्क्रिय माना जाएगा।

· दलाई लामा के संयुक्त प्रतिनिधियों की मुहरः शेरपा थितुल और शेडोन तांग्याल, अम्बांन लेन और चुंग के प्रतिनिधियों की मुहरें, लुचांग क्रांग लुंगरिन, यूलजी लू लांगरिन, यू योन क्रेफू हई क्रु, थुंग क्रिकुंग बुहु हई, क्रेफू वांग चिऊजिन, श्रु फून, लु लु कोन कोन, न्यांन ख्रू, पांच श्रियों के साक्षियों की मुहरें, गोरखा दरबार का प्रतिनिधि, मेजर कैप्टन जीत बहादुर खतरी छेतरी, लेफ्टिनेंट लाल बहादुर बसन्यात छेतरी, दिथ्या कुल प्रसाद उपाध्याय, सूबेदार रत्न गम्भीर सिंह खत्री छेतरी।

जल-मूशक वर्ष के 6ठे महीने का 30 वां दिन (12 अगस्त 1912)।

स्रोत–राम राहुल, 'दि 1912 ऐग्रीमेंट बिट्वीन दि चाइनीज एंड तिब्बतन्स,' तिब्बत रिव्यू (फरवरी 1979) पृष्ठ 20-21। इस संधि का विवरण स्कूल आफ इंटरनेशनल स्टडीज, नई दिल्ली भारत के ग्रंथालय में रखा है। एफ. ओ. 535/16, नं. 258 इंक्लोज़र 4 से तुलना।

परिशिष्ट 2*

केन्द्रीय जनवादी सरकार (चीन) तथा तिब्बत की स्थानीय सरकार के बीच तिब्बत की शान्तिपूर्ण मुक्ति हेतु लिये जाने वाले उपायों पर समझौता

23 मई, 1951

चीनी सीमाओं के भीतर तिब्बती राष्ट्रीयता कई राष्ट्रीयताओं में से एक है जिसका लम्बा इतिहास है। इसने महान् मातृभूमि के निर्माण तथा विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया है। परन्तु पिछले सौ वर्ष से अधिक समय से साम्राज्यवादी शक्तियां चीन में प्रवेश करती रहीं, परिणाम स्वरूप वे तिब्बत में भी घुस आए तथा धोखाधड़ी और भड़काने वाले कृत्य करना आरम्भ कर दिया। पिछली प्रतिक्रियावादी सरकारों की भांति के. एम. टी. प्रतिक्रियावादी सरकार ने राष्ट्रीयताओं के बीच कठोरता और मतभेद बनाए रखने की नीति जारी रखी ताकि तिब्बती लोगों में मतभेद व पृथकता बनी रहे। तिब्बत की स्थानीय सरकार ने साम्राज्यवादी धोखे और भड़काऊ कृत्यों का विरोध नहीं किया परन्तु अपनी मातृभूमि के प्रति बेईमानी का दृष्टिकोण अपनाया। ऐसी परिस्थिति में तिब्बती राष्ट्रीयता और लोग गुलामी और कष्टों के अथाह सागर में डूब गए। सन् 1949 में राष्ट्रीय स्तर पर चीन के जनवादी आक्रमण के परिणामस्वरूप तिब्बत-मुक्ति-आन्दोलन सफल हुआ और सभी राष्ट्रवादियों की आंतरिक शत्रु के.एम.टी. की प्रतिक्रियावादी सरकार को हरा दिया गया; सभी राष्ट्रवादियों के आम विदेशी शत्रुओं, आक्रामक साम्राज्यवादी ताकतों को निकाल बाहर किया गया। इस बुनियाद पर पीपल्स रिपब्लिक ऑफ चाईना एवं सेन्ट्रल पीपुल्स गवर्नमेंट की स्थापना की घोषणा हुई। चीनी जनवादी राजनीतिक सलाहकार परिषद के अनुसार केन्द्रीय जनवादी सरकार ने घोषणा की कि पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाईना की अपनी सीमाओं में सभी राष्ट्र समान हैं और यह कि वे एकता और परस्पर सहयोग

---

* तिब्बत में छम्दो तक चीन की लाल सेना-पिपल्स लिबरेशन आर्मी-ने मार्च कर उसे कब्जे में ले लिया। उनका तत्कालीन हेतु पूरा हुआ चीन के अधिकारी छम्दो के ही अधिकारी को उठा कर चीन ले गये, उन्हें ही 'अधिकृत अधिकारी' कह कर इस 17 सूत्रीय 'समझौते' पर जबरदस्ती दस्तखत करवाये। यही समझौता 'चीन की केन्द्रीय जनवादी सरकार तथा तिब्बत की स्थानीय सरकार के बीच तिब्बत की शांतिपूर्ण मुक्ति हेतु लिये जाने वाले उपायों पर समझौता' कहलवाया गया तथा इसे ही तिब्बत पर अपने प्रभुत्व के प्रमाण के रूप में चीन ने दुनिया भर में प्रचारित किया।-सं.

की स्थापना करेंगे, साम्राज्यवाद एवं अपने सार्वजनिक शत्रुओं का विरोध करेंगे ताकि पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाईना अपने समस्त राष्ट्रवादियों समेत भ्रातृत्व एवं सहयोग से परिपूर्ण एक बृहत राष्ट्रीय परिवार बन सके। चीनी जनवादी गणतन्त्र के इस बड़े परिवार में उन क्षेत्रों को, जहां राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों को अपने लिखित एवं बोलने वाली भाषाओं के विकास की स्वतन्त्रता होगी, अपने रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वासों के संरक्षण एवं सुधार की स्वतन्त्रता होगी और केन्द्रीय जनवादी सरकार राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों को अपने राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक रचनात्मक कार्यों के विकास हेतु सहयोग देगी। तब से तिब्बत और ताईवान के क्षेत्र में रह रहे राष्ट्रवादियों के अलावा सभी ने आज़ादी का उपभोग किया है। चीनी जनवादी सरकार के एकीकृत नेतृत्व के और जनवादी सरकार के ऊंचे स्तर के प्रत्यक्ष नेतृत्व के तहत सभी राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का उपभोग किया है और राष्ट्रीय क्षेत्रवादी स्वायत्तता का उपभोग कर रहे हैं। तिब्बत से आक्रामक साम्राज्यवादी ताकतों को खत्म करने के लिये, क्षेत्र का एकीकरण व चीन के जनवादी गणतंत्र की संप्रभुता की प्राप्ति के लिये राष्ट्रीय सुरक्षा की मजबूती के लिये, अन्य राष्ट्रवादियों की तरह तिब्बतियों को भी आज़ाद किया जा सकता है ताकि वे भी चीनी जनवादी गणतंत्र के बृहत परिवार में राष्ट्रीय समानता के सभी अधिकारों का उपभोग कर सकें और राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व शैक्षणिक कार्यों का विकास कर सकें। केन्द्रीय जनवादी सरकार ने जनवाहिनी सेना को तिब्बत में मार्च करने का आदेश दिया, तिब्बत की स्थानीय सरकार को तिब्बत में शांतिपूर्ण मुक्ति की बहाली हेतु वार्ता करने को प्रतिनिधि भेजने की सूचना दी। अप्रैल 1951 के उत्तरार्द्ध में पूर्ण अधिकार युक्त तिब्बती स्थानीय सरकार के प्रतिनिधि पेकिंग पहुंचे। तिब्बत के इन प्रतिनिधियों से दोस्ताना बातचीत के लिए चीनी जनवादी सरकार ने भी पूर्ण अधिकार युक्त प्रतिनिधि नियुक्त किए। वार्ता का परिणाम है कि दोनों पार्टियां प्रस्ताव की स्थापना, और यह आश्वासन देने हेतु कि उसका क्रियान्वयन होगा, सहमत हुई हैं :

1. तिब्बती लोग एक होंगे और तिब्बत से आक्रामक साम्राज्यवादी ताकतों को खदेड़ेंगे; तिब्बत के लोग मातृभूमि के बृहत परिवार चीनी जनवादी गणतंत्र में लौटेंगे।
2. राष्ट्रीय सुरक्षा की बहाली हेतु तिब्बत में जनमुक्ति वाहिनी के प्रवेश को तिब्बत की स्थानीय सरकार मदद देगी।
3. चीनी लोगों की राजनीतिक सलाहकार समिति की योजना के मुताबिक तिब्बतियों को भी चीन की जनवादी केन्द्रीय सरकार के नेतृत्व में क्षेत्रीय स्वायत्तता के उपभोग का हक होगा।
4. केंद्रीय सत्ता तिब्बत की राजनीतिक व्यवस्था, दलाई लामा की प्रतिष्ठित छवि व कार्यों में फेरबदल नहीं करेगी और विभिन्न पदों पर नियुक्त अधिकार पूर्ववत् कायम रहेंगे।

5. पांचेन लामा की प्रतिष्ठित छवि, अधिकार व कार्यों को बहाल रखा जाएगा।

6. दलाई लामा और पांचेन लामा की प्रतिष्ठित छवि, अधिकार व कार्यों से तात्पर्य तेरहवें दलाई लामा और नवें पांचेन लामा की छवि, अधिकारों व कार्यों से है जब इनके सम्बन्ध दोस्ताना थे।

7. चीनियों की राजनीतिक सलाहकार समिति योजना में जिन धार्मिक विश्वासों की बात कही गई उन्हें संरक्षण दिया जाएगा। केन्द्रीय सत्ता मठों की आमदनी में किसी प्रकार का फेरबदल नहीं करेगी।

8. तिब्बती फौज चीन की जनमुक्ति वाहिनी का अँग समझी जाएगी और राष्ट्रीय सुरक्षा बल के रूप में केन्द्रीय जनवादी सरकार का अंग बनेगी।

9. तिब्बत की वास्तविक परिस्थितियों के अनुसार ही तिब्बत की बोलचाल व लिखाई की भाषा एवं राष्ट्रवाद का विकास होगा।

10. तिब्बती कृषि, संग्रहण, उद्योग व वाणिज्य का क्रमिक विकास होगा और तिब्बत की वास्तविक परिस्थितियों के हिसाब से ही तिब्बतियों की जीविका का विकास होगा।

11. तिब्बत में विभिन्न प्रकार के सुधारों के प्रश्न पर केन्द्रीय सत्ता किसी दबाव का इस्तेमाल नहीं करेगी। तिब्बत की स्थानीय सरकार को अपने हिसाब से सुधार करने चाहिए और जब लोग सुधार के लिए आवाज उठाएँ, तिब्बत के स्तरीय अधिकारियों से संपर्क के द्वारा इसका समाधान होना चाहिए।

12. जब तक जिस प्रकार से पूर्व साम्राज्यवादी एवं प्रो-के.एम.टी. अधिकारी दृढ़ता से साम्राज्यवाद एवं के.एम.टी. से सम्बन्धों को पृथक रखते आए हैं और प्रतिरोध एवं तोड़फोड़ में हिस्सा नहीं लिया है, उन्हें अतीत से बेफिक्र हो उनके पदों पर रहने दिया जाएगा।

13. तिब्बत में प्रवेश करने वाली जनमुक्ति वाहिनी ऊपर वर्णित नीतियों से पृथक रहेगी और हर प्रकार के क्रय-विक्रय में ईमानदार रहेगी और दलाली के रूप में लोगों से सूई या धागे जितना भी कुछ न लेगी।

14. केन्द्रीय जनवादी सरकार तिब्बती क्षेत्र के सभी बाहरी मामलों को संचालित करेगी। पड़ोसी राष्ट्रों से शांतिपूर्ण सद्भाव कायम रखा जाएगा और समानता, पारस्परिक लाभ एवं एक दूसरे के क्षेत्र एवं संप्रभुता के सम्मान को ध्यान में रखकर वाणिज्यिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध कायम किए जाएँगे।

15. प्रस्तावना में वर्णित तथ्यों के क्रियान्वयन की तसल्ली हेतु केन्द्रीय जनवादी सरकार तिब्बत में एक सैनिक व प्रशासकीय समिति का गठन करेगी और मुख्य सैनिक क्षेत्रीय कार्यालय की स्थापना करेगी और केन्द्रीय जनवादी सरकार से अधिकारियों को भेजने

के अलावा कार्य सम्पादन हेतु तिब्बत की स्थानीय सरकार में से भी कुछ अधिकारियों की नियुक्ति करेगी। सैनिक और प्रशासकीय समिति के लिए कार्य करने वाले स्थानीय तिब्बती अधिकारियों में तिब्बत की स्थानीय सरकार के राष्ट्रवादी तत्व, विभिन्न जिलों और प्रमुख मठों के लोग हो सकते हैं; नामों की सूची केन्द्रीय जनवादी सरकार के प्रतिनिधि एवं विभिन्न हेडक्वार्टर्स से बातचीत से ही बनेगी और अनुमोदन हेतु इनको केन्द्रीय जनवादी सरकार के पास भेजा जाएगा।

16. सैनिक और प्रशासकीय समिति, सैनिक क्षेत्र हेडक्वार्टर्स एवं तिब्बत में प्रवेश करने वाली जनमुक्ति वाहिनी के रख-रखाव पर होने वाले खर्च का वहन केन्द्रीय जनवादी सरकार करेगी। जनमुक्ति वाहिनी को भोजन, चारा और दैनिक आवश्यकता की अन्य वस्तुओं की खरीद एवं परिवहन में तिब्बत की स्थानीय सरकार मदद करेगी।

17. यह प्रस्तावना उस पर मुहर और हस्ताक्षर होने के तुरन्त बाद से लागू हो जाएगी। केन्द्रीय जनवादी सरकार के पूर्ण अधिकार प्राप्त प्रतिनिधियों द्वारा हस्ताक्षरित व मुहरबद्ध।

मुख्य प्रतिनिधि–ली वी हान (राष्ट्रवादी मसलों के कमीशन के अध्यक्ष)

प्रतिनिधिगण– चांग चिंग-वू, चांग कुओ हुआ, सुन चिह-युआन तिब्बत की स्थानीय सरकार के पूर्ण अधिकार प्राप्त प्रतिनिधिगण।

मुख्य प्रतिनिधि– कालन न्गाबो न्गावाङ जिग्मे (न्गाबो शापे)

प्रतिनिधिगण– छासाक खेमे सोनम वांग्दी, खेंत्रुंग थुप्तेन, तेन्थर खेनचुंग, थुप्तेन लेक्मुन रिम्शी, सैम्पोजे तेनज़िन ठुन्दुप।

□

स्रोत–यूनियन रिसर्च इनस्टीच्यूट, तिब्बत 1950-1967 (हांगकांग 1968) डॉकुमेंट 6 पृष्ठ 19-23।

परिशिष्ट 3

सरदार वल्लभभाई पटेल का पं. जवाहरलाल नेहरु के नाम पत्र

नई दिल्ली
7 नवंबर, 1950

प्रिय जवाहरलाल,

मैं जिस दिन अहमदाबाद से लौटा, असल में उसी दिन 15 मिनट की सूचना पर मंत्रिमंडल की बैठक में भाग लेना पड़ा। अफसोस है कि मैं सभी कागजात इस वजह से देख नहीं पाया जबकि तिब्बत समस्या के बारे में मैं विशेष रूप से चिन्तित हूँ। ऐसे में उचित यही लगा कि जो विचार मेरे दिमाग में चल रहे हैं, उनसे आपको भी अवगत करा दूं।

2. मैंने उस सारे पत्र-व्यवहार को सावधानी से देखा है जो विदेश मंत्रालय और पेकिंग में हमारे राजदूत के बीच तथा उनके माध्यम से चीन सरकार से हुआ है। मैंने हमारे राजदूत और चीन सरकार के पत्र-व्यवहार को जितना संभव हुआ सहृदयता से समझने की कोशिश की, लेकिन मुझे यह कहते हुए अफसोस होता है कि इस अध्ययन के फलस्वरूप दोनों में से कोई भी मेरे मन पर अच्छा प्रभाव नहीं डाल सका। चीन सरकार ने शांतिपूर्ण नीयत का दिखावा करके हमें बहकाने का प्रयास किया है। मेरा अपना मानना है कि इस गंभीर मौके पर उन्होंने हमारे राजदूत के मन में तिब्बत समस्या का शांतिपूर्ण उपायों से समाधान करने की अपनी तथाकथित इच्छा का झूठा विश्वास भर दिया है। इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि इस पत्र व्यवहार की अवधि के दौरान चीनियों का पूरा ध्यान तिब्बत को हड़पने पर ही केन्द्रित रहा होगा। मेरे विचार से चीन की अंतिम कारवाई विश्वासघात से जरा भी कम नहीं होगी। इसका दु:खद पहलू यह है कि तिब्बतवासियों ने हम पर भरोसा किया है; उन्होंने हमसे मार्गदर्शन चाहा है; और हम उन्हें चीनी कूटनीति तथा चीनी द्वेष के जाल से बाहर निकालने में असमर्थ रहे हैं। ताजा हालात से लगता है कि हम दलाई लामा को नहीं बचा पाएंगे। हमारे राजदूत को चीनी नीति और उनकी कारवाईयों का प्रतिवाद करने में अथवा उसकी सफाई देने में बहुत तकलीफ होती है। जैसी टिप्पणी विदेश मंत्रालय ने अपने एक तार में की है, हमारी ओर से उनके द्वारा चीन सरकार को भेजे गये एक-दो विरोध पत्रों में दृढ़ता की कमी थी और गैर-जरूरी क्षमा याचना का भाव था। तिब्बत में आंग्ल-अमेरीकियों की तथाकथित साजिश से चीन को खतरा होने की बात कोई भी समझदार व्यक्ति मान ले यह कल्पना करना नामुमकिन है। इसलिए, अगर चीनी इस बात में विश्वास करते हैं तो इसका अर्थ है कि उन्होंने हम में इतना भरोसा खो दिया है कि

वे हमें आंग्ल-अमरीकी कूटनीति या रणनीति की कठपुतली अथवा मोहरा समझने की भूल कर रहे हैं। तुम्हारी उनके साथ सीधी पहुंच के बावजूद अगर चीनियों की वाकई यह मान्यता है तो इसका अर्थ है कि हम तो चीन को अपना दोस्त मानते हैं, लेकिन चीनी हमें अपने दोस्त के रूप में नहीं देखते। कम्युनिस्टों की एक मान्यता है; जो भी उनके साथ नहीं है, वह उनके खिलाफ है। यह एक महत्वपूर्ण इशारा है जिसे हमें गंभीरता से समझना है। पिछले कुछ महीनों से रूसी गुट के बाहर असल में अकेले हम ही हैं जो चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश दिलाने का बीड़ा उठाये हुये हैं और अमेरिकियों से फॉर्मोसा के सवाल पर आश्वासन मांग रहे हैं। हमने चीन की आशंकाओं को दूर करने, उसकी भावनाओं को शांत करने और उसके न्यायोचित दावों के समर्थन में अमेरिका तथा ब्रिटेन के साथ पत्र-व्यवहार और विचार-विमर्श के दौरान एवं संयुक्त राष्ट्र संघ में भी जितना कुछ कर सकते थे, किया है। इन सब के बावजूद भी, चीन हमारी निःस्वार्थता के प्रति आश्वस्त नहीं हुआ है और वह हम पर लगातार संदेह कर रहा है। बाहरी तौर पर इस संदेह की पूरी मानसिकता अविश्वास से भरी है और शायद उसमें थोड़ा दुश्मनी का भाव भी है। हमने अपनी सदिच्छा की बाबत चीन को विश्वास दिलाने की जितनी कोशिश की है, उससे ज्यादा शायद हम नहीं कर पाएंगे। पेकिंग में हमारा राजदूत हमारे दोस्ताना विचारों को पेश करने में पूरी तरह सक्षम है। फिर भी, ऐसा लगता है कि वह चीनियों के विचारों को बदलने में नाकामयाब रहा है। उनका हमें भेजा गया पिछला तार घोर अशिष्टता से भरा है। इसमें तिब्बत में चीनी सेना के प्रवेश पर हमारे विरोध को सरसरी तौर पर खारिज ही नहीं कर दिया गया बल्कि उसमें यह बेतुका आरोप लगाया गया है कि हमारा व्यवहार विदेशी प्रभाव से तय किया गया है। यह भाषा किसी दोस्त की नहीं बल्कि संभावित शत्रु की लगती है।

3. इस पृष्ठभूमि में अब हमें उस नई स्थिति का सामना करना है जो तिब्बत के लुप्त होने और चीन का हमारे लगभग दरवाजे तक बढ़ आने पर पेश आएगी। पूरे ऐतिहासिक काल में हमने कभी भी अपनी पूर्वोत्तर सीमा की चिन्ता नहीं की। उत्तर दिशा से किसी भी आक्रमण के खिलाफ हिमालय को हमने अभेद्य किला माना है। यहां हमारा दोस्त तिब्बत था, जिसने कभी कोई परेशानी पैदा नहीं की। चीन विभाजित था। वह अपनी घरेलू समस्याओं में ही फंसा रहा और सीमा पर कभी भी हमसे झंझट नहीं किया। सन् 1914 में हमने तिब्बत के साथ एक करार किया, जिसकी पुष्टि चीन द्वारा नहीं की गई। हमने तिब्बत की स्वायत्तता का सम्मान स्वतंत्र संधि के बढ़ते हुए सम्बन्ध के रूप में किया। लेकिन ऐसा लगता है कि हमें चीनियों के भी दस्तखत कराने चाहिए थे। अधिराज्य * के बारे में चीनियों की परिभाषा अलग प्रकार की है। इसलिए हम यह आसानी से मान सकते हैं कि वे उन करारों को जल्दी ही अमान्य कर देंगे, जो हमने तिब्बत के साथ किये

* सुज़रेनिटी

हैं। इससे तिब्बत के साथ पिछले पचास साल से किये जा रहे और चल रहे हमारे सभी सीमा सम्बन्धी और व्यापारिक समझौते बरतरफ कर दिये जाएंगे। चीन अब विभाजित नहीं है। वह संगठित और मजबूत है। उत्तर में हिमालय के साथ-साथ और पूर्वोत्तर में हमारी सरहद पर ऐसे निवासी हैं, जिनके जातीय संस्कार और संस्कृति तिब्बतियों और मंगोलों से अलग नहीं है। सरहद की गैर-सीमांकित स्थिति और हमारी तरफ ऐसे जनसमुदाय का होना, जिसका तिब्बतियों और चीनियों के साथ साम्य है, ऐसे मुद्दे हैं जिनमें चीन और हमारे बीच मुश्किलें पैदा करने के तत्व मौजूद हैं। हाल ही का तथा पुराना दु:खद इतिहास हमें बताता है कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध कम्युनिस्ट कोई कवच नहीं हैं तथा कम्युनिस्ट भी उतने ही भले अथवा बुरे हैं जितने कि साम्राज्यवादी। इस दिशा में चीन की महत्वाकांक्षा में सिर्फ हमारी तरफ की हिमालय की ढलान ही सीमित नहीं है, बल्कि असम के महत्वपूर्ण इलाके भी उसमें शामिल हैं। उनकी महत्वाकांक्षा बर्मा में भी है। बर्मा की एक और मुश्किल है; वहां कोई मैकमोहन लाइन नहीं है, जिससे किसी समझौते का आभास होता हो। चीन का दूसरे मुल्कों से भूमि हथियाने का सिद्धान्त और कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद, पश्चिमी शक्तियों के विस्तारवाद और साम्राज्यवाद से भिन्न है। चीन ने इसे विचारधारा का मुखौटा पहना रखा है, इसलिए वह दस गुना अधिक खतरनाक है। विचारधारा के विस्तार की आड़ में जातीय, राष्ट्रीय और ऐतिहासिक दावों को छुपा दिया गया है। इस प्रकार उत्तर और पूर्वोत्तर की तरफ से कम्युनिस्ट और साम्राज्यवाद दोनों प्रकार के खतरे हैं।

हालांकि हमारी सुरक्षा के लिए पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी दिशा से भी उतने ही गंभीर खतरे हैं जितने पहले थे, लेकिन उत्तर और पूर्वोत्तर से नया खतरा उत्पन्न हो गया है। इस प्रकार सदियों के बाद पहली मर्तबा भारत को एक साथ अपनी दो सीमाओं की रक्षा पर ध्यान देना होगा। अभी तक हमारे प्रतिरक्षा उपाय पाकिस्तान पर श्रेष्ठता के हिसाब से ही आधारित रहे हैं। सुरक्षा के विषय में हम जो भी लेखा-जोखा लें उस में अब हमें उत्तर और पूर्वोत्तर में कम्युनिस्ट चीन को भी गिनना होगा; उस कम्युनिस्ट चीन को जिसकी निश्चित महत्वाकांक्षा और उद्देश्य हैं, जो किसी भी तरह हमारे साथ दोस्ताना तरीके से तय होते दिखाई नहीं देते।

4. इस संभावित उपद्रवग्रस्त सरहद की राजनैतिक स्थितियों पर भी हमें विचार करना चाहिए। हमारे उत्तर और पूर्वोत्तर में नेपाल, भूटान, सिक्किम, दार्जिलिंग (क्षेत्र) और असम के आदिवासी इलाके हैं। संचार की दृष्टि से ये सब कमजोर स्थान हैं। रक्षा पंक्तियां भी निरंतर नहीं हैं। यहां घुसपैठ की हमेशा अपार संभावना है। पुलिस संरक्षण मात्र कुछ दर्रों तक ही सीमित है। वहां पर भी हमारे नाकों पर पर्याप्त आदमी नहीं हैं। इन इलाकों से हमारा सम्बन्ध किसी भी मायने में करीबी या अंतरंग नहीं है। यहां के लोगों की भारत के प्रति वफादारी स्थापित नहीं है, उनमें भारत के प्रति समर्पण भावना भी नहीं है। यहां

तक कि दार्जिलिंग और कालिम्पोंग इलाके भी मंगोलियाई पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हैं। पिछले तीन साल के दौरान हमने नागा और असम के अन्य पहाड़ी आदिवासियों के साथ कोई प्रशंसनीय सम्पर्क बनाने में भी कामयाबी हासिल नहीं की है। यूरोपीय मिशनरी और अन्य मुलाकातियों ने जरूर उनसे सम्पर्क बना रखा है, लेकिन उनका भी भारत या भारतीयों के प्रति किसी तरह का दोस्ताना अंदाज नहीं है। सिक्किम में कुछ समय पहले राजनैतिक उत्तेजना का माहौल था। यह बिल्कुल संभव है कि वहां असंतोष सुलग रहा हो। भूटान हालांकि अपेक्षाकृत शांत है, लेकिन तिब्बतियों के साथ उसका रागात्मक रिश्ता एक मजबूरी है। नेपाल में कमजोर कुलीनतंत्र व्यवस्था है और लगभग ताकत के बल पर ही टिकी है, तथा वहां प्रजा में विद्यमान अशांत तत्वों तथा आधुनिक जमाने के विचारों के साथ उसकी भी टकराहट है। इन हालात में लोगों को नये खतरे के बारे में अवगत कराना या उन्हें रक्षात्मक रूप में मजबूत बनाना बहुत मुश्किल काम है। इस मुश्किल पर विचारशील दृढ़ता-शक्ति और स्पष्ट नीति से ही विजय पाई जा सकती है। मुझे पक्का विश्वास है कि चीन और उसका प्रेरणा-स्रोत सोवियत रूस, कुछ तो अपनी विचारधारा के समर्थन में और कुछ अपनी महत्वाकांक्षाओं के समर्थन में, इन कमजोर स्थानों पर चोट करने का और उनसे फायदा उठाने का कोई मौका नहीं गवाएंगे। मेरी राय में स्थिति ऐसी है जिसमें हम आत्म-तुष्ट होने और अनिश्चित रवैया अपनाने का जोखिम नहीं उठा सकते। हम जो हासिल करना चाहते हैं उसका स्पष्ट विचार हमारे पास होना चाहिए और उसे हासिल करने के तरीकों के विषय में भी स्पष्टता होनी चाहिए। अपने लक्ष्यों को निर्धारित करने में अथवा उन लक्ष्यों को प्राप्त करने की नीति का पालन करते हुए अगर हम हिचकिचाएंगे अथवा अनिर्णय की स्थिति में रहेंगे तो यह हमारी कमजोरी होगी और वे सारे खतरे बढ़ जायेंगे जो इतने स्पष्ट रूप से हमारे सामने दिखाई दे रहे हैं।

5. इन खतरों के साथ-साथ अब हमें गंभीर अंदरूनी समस्याओं का भी सामना करना होगा। मैंने आयंगर (एच.वी.आर.) से इन मामलों की बाबत गुप्तचर ब्यूरो से मिली सूचनाओं की एक कापी विदेश मंत्रलय को भेजने के लिए कहा है। अब तक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को विदेशी कम्युनिस्टों के साथ सम्पर्क साधने अथवा उनसे हथियार, साहित्य आदि हासिल करने में मुश्किलें थीं। वे पूर्व में बर्मा और पाकिस्तान की दुर्गम सरहदों अथवा लंबे समुद्री मार्ग से काम चलाते थे। लेकिन अब चीनी कम्युनिस्टों के साथ सम्पर्क साधने के लिए उनके पास अपेक्षाकृत सरल साधन होंगे और उनकी मार्फत वे अन्य विदेशी कम्युनिस्टों तक पंहुच बना लेंगे। जासूसों, दुश्मन के हमदर्दों (फिफ्थ कोलमिस्ट) और कम्युनिस्टों की घुसपैठ अब ज्यादा आसान होगी। हमें तेलंगाना और वारंगल में कम्युनिस्टों की एकांत में बसी छोटी-छोटी जमातों की अपेक्षा उत्तरी और पूर्वोत्तर सरहदों पर हमारी सुरक्षा के बढ़ते कम्युनिस्ट खतरों की तरफ ज्यादा ध्यान देना होगा। अब वे

गोला बारूद हासिल करने के लिए चीन के कम्युनिस्ट असले पर सहजता से भरोसा कर सकेंगे। इस सारी स्थिति से कई समस्याएं खड़ी होती हैं, जिसके लिए हमें जल्द ही कुछ फैसले लेने होंगे ताकि, जैसा मैंने पहले कहा है, हम अपनी नीति के लक्ष्य निर्धारित कर सकें और उन तरीकों का चुनाव कर सकें जिनके जरिए ये लक्ष्य हासिल करने होंगे। यह भी साफ है कि कारवाई एकदम संपूर्ण होगी, जिसमें न केवल हमारी प्रतिरक्षा रणनीति और तैयारियों की स्थिति शामिल होगी, अपितु आंतरिक सुरक्षा की समस्याओं से निपटना भी शामिल होगा। इसके लिए हमें एक भी पल बर्बाद नहीं करना है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, हमें सरहद से लगते हुए इलाके के कमजोर स्थानों पर प्रशासनिक और राजनैतिक समस्याओं से भी जूझना है।

6. इन सारी समस्याओं का विस्तृत विवरण देना मेरे लिए वास्तव में असंभव है। फिर भी, मैं कुछ समस्याओं का नीचे जिक्र कर रहा हूं, जिनका समाधान तात्कालिक रूप से होना जरूरी है और जिनको केन्द्र में रख कर हमें अपनी प्रशासनिक या सैनिक नीतियां बनानी हैं तथा उन्हें लागू करने के उपाय करने हैं।

(क) भारत की सरहद तथा आंतरिक सुरक्षा–दोनों पर चीनी खतरे के प्रति मिलिटरी तथा इन्टेलिजेन्स की दृष्टि से सावधान होना।

(ख) हमारी सेना की तैनातियों की जांच और जरूरत के अनुसार, खासकर उन महत्वपूर्ण मार्गों या इलाकों की रक्षा के मद्देनजर उसकी नई तैनाती, जहां कि मतभेद की संभावना हो सकती है।

(ग) हमारी सैन्य शक्ति की समीक्षा और नये खतरों को देखते हुए जरूरी हो तो सेना में छंटनी की योजना पर पुन: विचार।

(घ) हमारी रक्षा आवश्यकताओं के बारे में दीर्घ–दृष्टि पूर्ण आकलन। मेरा अपना विचार है कि जब तक हम सीमा पर हथियार, गोला–बारूद और बख्तरबंद गाड़ियों की सप्लाई सुनिश्चित नहीं करते, हम अपनी रक्षा स्थिति को निरंतर कमजोर बनाए रखेंगे और पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर एवं उत्तर तथा पूर्वोत्तर में दुहरे खतरे की कठिनाइयों का मुकाबला नहीं कर सकेंगे।

(ङ) संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन की सदस्यता का सवाल। जिस तरह की झिड़की चीन ने हमें दी है और तिब्बत के साथ व्यवहार करने में जिन तरीकों का इस्तेमाल कर रहा है, उसके मद्देनजर, मुझे संदेह है कि हम उसके दावे की अब वकालत कर पाएंगे। कोरिया युद्ध में चीन के सीधे शामिल होने के कारण शायद उसे संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा बहिष्कृत करने की बात हो सकती है। हमें इस सवाल पर भी अपना रुख अवश्य ही निश्चित करना चाहिए।

(च) उत्तरी और पूर्वोत्तर सरहदों को सुरक्षित बनाने के लिए जिन आवश्यक राजनैतिक

और प्रशासनिक कदमों को हमें उठाना है उसमें नेपाल, बर्मा, भूटान, सिक्किम और दार्जिलिंग से लगती पूरी सीमा तथा असम के आदिवासी इलाके शामिल हैं।

(छ) सीमावर्ती इलाकों तथा उनसे लगने वाले राज्यों जैसे उ. प्र., बिहार, बंगाल और असम में आंतरिक सुरक्षा के उपाय।

(ज) इन इलाकों और सरहद पर हमारी नाका चौकियों के साथ संचार, सड़क, रेल, विमान और वायरलैस की स्थिति में सुधार।

(झ) ल्हासा में हमारे मिशन तथा ग्यांगसे और यातुंग में हमारी व्यापार चौकियों और तिब्बत में व्यापारिक मार्गों की रक्षा में लगी हमारी सेना का भविष्य।

(ञ) मैकमोहन लाइन के सम्बन्ध में हमारी नीति।

7. ये कुछ ऐसे सवाल हैं जो मेरे मन में उठ खड़े हुए हैं। संभव है कि इन पर गौर करने के बाद चीन, रूस, अमरीका, ब्रिटेन और बर्मा के साथ अपने सम्बन्धों के बारे में और बड़े सवाल हमारे सामने आएं। हालांकि कुछ तो सामान्य प्रकार के हैं, लेकिन कुछ बहुत महत्वपूर्ण हैं। जैसे, उदाहरण के लिए–क्या हमें बर्मा के साथ गहरे सम्बन्ध कायम नहीं करने चाहिए, ताकि चीन से व्यवहार करने में वह लड़खड़ा न जाय, मजबूत रहे। मुझे इस संभावना से इंकार नहीं है कि चीन हम पर दबाव बढ़ाने से पहले बर्मा पर इसका इस्तेमाल करेगा। बर्मा के साथ उसकी सरहद का सीमांकन नहीं हुआ है और चीन के जमीनी दावे ज्यादा वजनदार हैं। अपनी वर्तमान स्थिति में बर्मा चीन के लिए आसान-सी समस्या है जिसके कारण पहले चीन का ध्यान उधर जाएगा।

8. मेरा सुझाव है कि इन समस्याओं पर विस्तृत विचार-विमर्श करने, तत्काल जरूरी समझे जाने वाले कदमों पर फैसला लेने तथा उनके साथ आगे व्यवहार के लिए उपाय करने के मद्देनजर अन्य समस्याओं की शीघ्र समीक्षा के लिए हमें जल्दी ही मुलाकात करनी चाहिए।

आपका

हस्ताक्षर/वल्लभभाई पटेल

मान्यवर श्री जवाहरलाल नेहरु

नई दिल्ली

□

स्रोत: 'सरदार पटेलस् कोरेसपोण्डेन्स 1945-50', खण्ड 10; पृ. 335.41 सं. दुर्गादास, नव जीवन प्रकाशन अहमदाबाद, 1974.

विशेष सम्पादन सहयोग

शंकर शरण	प्रेस सूचना अधिकारी, तिबेटन पार्लियामेन्टरी पोलिसी रीसर्च सेन्टर, नई दिल्ली।
डा. नीरू वोरा	चीन विशेषज्ञ; मंत्री, स्वराज पीठ, नई दिल्ली।

लेखक परिचय

1. सरदार वल्लभभाई पटेल	भारत के ऐसे राष्ट्र नायक जिन्होंने गांधीजी के बाद हिन्दुस्तान को बिखरने से बचाने में सबसे बड़ा योगदान दिया। 500 से अधिक राज्यों को जोड़कर नया भारत हमें दिया। भारत के लौह पुरुष।
2. परमपावन दलाई लामा	बौद्धधर्म के सर्वोच्च धर्म-पुरुष, तिब्बत की निर्वासित सरकार के राज्याध्यक्ष, विश्व शान्ति के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित।
3. डा. राममनोहर लोहिया	समाजवादी आंदोलन के प्रखर बौद्धिक और जुझारू नेता, चिन्तक एवं भारतीय संस्कृति के अनुकूल समाजवादी चिन्तन को ढ़ालने में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।
4. अटल बिहारी वाजपेयी	प्रधानमंत्री, भारत सरकार; 1998-
5. रवीन्द्र वर्मा	अध्यक्ष, गांधी शांति प्रतिष्ठान।
6. प्रो. सामदोंग रिंपोछे	तिब्बत की निर्वासित सरकार की जन प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष तथा निदेशक, इन्स्टीच्यूट ऑफ हायर तिबेटन स्टडीज, सारनाथ, वाराणसी।
7. निर्मल वर्मा	प्रतिष्ठित हिन्दी साहित्यकार, चिन्तक।
8. जार्ज फर्नांडीस	रक्षा मंत्री, भारत सरकार, 1998-
9. रामस्वरूप	दार्शनिक।
10. प्रो. आनन्द कुमार	समाज शास्त्री, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय; मंत्री, भारत-तिब्बत मैत्री संघ।
11. प्रो. कृष्णनाथ	बौद्धधर्म के अध्येता एवं समाज शास्त्री।
12. गिरिलाल जैन	टाईम्स ऑफ इंडिया के भूतपूर्व प्रधान सम्पादक।
13. आचार्य रजनीश	दार्शनिक, जो बाद में 'ओशो' के नाम से जाने गये।

□

पड़ोसी-धर्म

मैंने तिब्बत के मुद्दे को इतनी तीव्रता से क्यों उठाया है, ऐसा प्रश्न बहुतों का हो सकता है। प्रथम तो, मैं मानवीय स्वाधीनता के प्रति आस्थावान हूँ तथा सभी मानव समाजों की स्वाधीनता में विश्वास रखता हूँ।... दूसरे, मैं अन्तर्राष्ट्रीय शांति में विश्वास रखता हूँ और मानता हूँ कि अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के बिना अन्तर्राष्ट्रीय शांति असंभव है। तीसरे, तिब्बत हमारा पड़ोसी है और हमारे पड़ोसी-धर्म का तकाजा है कि हम उसकी मदद करें। चौथा कारण, हिन्दू होने के नाते मैं भगवान बुद्ध को गहराई से मानता हूँ तथा सभी बौद्धों के साथ आध्यात्मिक स्तर पर खुद को जुड़ा हुआ पाता हूँ। पांचवां कारण परमपावन दलाई लामा के परिचय में जब से आया हूँ तभी से उनके प्रति मेरे मन में गहरे प्रेम और सम्मान का भाव बैठ गया है। और अन्तिम कारण यह कि मैं भी इतिहास के उन मूर्खों में से हूँ जो निरन्तर उन आदर्शों के लिए लड़ते रहते हैं, जिन्हें दुनिया के समझदार, व्यावहारिक लोग हारी हुई लड़ाई मानते हैं।

जयप्रकाश नारायण

नई दिल्ली, 10 जुलाई, 1959